Notes

BA (Multidisciplinary)

Political Science (Major Course)

SEMESTER - Ist

Indian Constitution

Course Code- 24POLM401DS01

Syllabus

BA(Multidisciplinary)

Political Science (Major Course)

Semester - Ist

Indian Constitution

Unit 1

Indian Constitution – Sources and Features, Preamble, Fundamental Rights, Fundamental Duties and Directive Principles of State Policy.

Unit 2

Union and State Executive – President, Prime Minister, Council of Ministers; State Executive – Governor, Chief Minister and Council of Ministers.

Unit 3

Union and State Legislature – Parliament-Composition and Functions; Speaker of Lok Sabha, Amendment Process; State Legislature-Vidhan Sabha; Panchayati Raj

Unit 4

Judiciary – Supreme Court, High Courts, Judicial Review

UNIT-Ist

भारतीय संविधान के स्रोत

विश्व का कोई भी संविधान पूर्ण रूप से मौलिक नहीं होता है क्योंकि संविधान निर्माता अन्य देशों की शान प्रणालियों का अध्ययन करने के बाद अच्छे तथा उपयुक्त तत्वों को प्रस्तावित संविधान में शामिल कर लेते हैं। भारतीय संविधान भी इसका अपवाद नहीं है। भारतीय संविधान के विभिन्न प्रावधान विभिन्न स्रोतों से लिए गए हैं। भारतीय संविधान के स्रोतों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है- **(A) जन्म संबंधित स्त्रोत (B) विकासवादी स्त्रोत**

(A) जन्म संबंधित स्त्रोत — जन्म संबंधित स्रोतों से हमारा अभिप्राय उन स्तोत्र से हैं जिन्होंने संविधान निर्माण के कार्य को प्रभावित किया था जींस संविधान निर्माता प्रभावित हुए थे और उनके अनेक उपबंधों को भारतीय संविधान में शामिल किया था। ये कुछ इस प्रकार है—

1. 1928 की नेहरू रिपोर्ट (Nehru Report of 1928)— 28 फरवरी 1928 को दिल्ली में सभी राजनीतिक दलों का एक संयुक्त अधिवेशन हुआ था। इस अधिवेशन का उद्देश्य देश के लिए एक ऐसे करना था. जो सभी राजनीतिक दलों एवं वर्गों को स्वीकार्य हो। इस सम्मेलन में संविधान निर्माण के उद्देश्य से एक आठ सदस्यीय समिति का गठन किया था। इस समिति का अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू को बनाया गया था। इस समिति ने जो रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, उसे 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से जाना जाता है। इस रिपोर्ट में शामिल अनेक सिफारिशें वर्तमान संविधान की विशेषताएं बनकर उभरी हैं; जैसे-

(i) देश में संघात्मक व्यवस्था लागू की जाए, किन्तु केन्द्र को शक्तिशाली बनाया जाए। साथ ही, अवशेष शक्तियां भी केन्द्र को दी जाएँ।

(ii) साम्प्रदायिक (पृथक) निर्वाचन प्रणाली को समाप्त करके इसके स्थान पर संयुक्त निर्वाचन प्रणाली लागू की जाए।

(iii) केन्द्र में द्वि-सदनीय विधानपालिका की स्थापना की जाए। इसके निम्न सदन का चुनाव सीधे जनता द्वारा और उच्च सदन का चुनाव प्रान्तों की विधानपालिकाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जाए।

(iv) केन्द्रीय विधानपालिका के निम्न सदन एवं प्रान्तीय विधानपालिकाओं के सदस्यों के निर्वाचन हेतु वयस्क मताधिकार व्यवस्था लागू की जाए और मताधिकार के लिए न्यूनतम आयु 21 वर्ष निर्धारित की जाए।

(v) देश में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की जाए और उसे संविधान की व्याख्या करने और केन्द्र एवं प्रान्तों के मध्य उत्पन्न विवादों का समाधान करने की शक्ति दी जाए।

(vi) भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया जाए।

2. भारत सरकार अधिनियम, 1935 (Government of India Act, 1935) - भारत सरकार अधिनियम, 1935 भारतीय संविधान का एक प्रमुख स्रोत माना जाता है। इसका निर्माण ब्रिटिश सरकार द्वारा किया गया था, किन्तु इसमें कुछ ऐसे प्रावधान थे, जो स्वतंत्र भारत के लिए लाभकारी थे। अतः संविधान निर्माताओं ने इस अधिनियम के अनेक उपबंधअथवा प्रावधान भारतीय संविधान में शामिल कर डाले। ऐसा समझा जाता है कि भारतीय संविधान का 75 प्रतिशत भाग इस अधिनियम से लिया गया है। इस संबंध में रॉबर्ट एल. हार्डग्रेव लिखते हैं "भारतीय संविधान के 395 अनुच्छेदों में से लगभग 250 अनुच्छेद ऐसे हैं, जो 1935 के अधिनियम से या तो शब्दशः लिए गए हैं या फिर उनमें थोड़ा-बहुर परिवर्तन किया गया है।"

निःसन्देह, भारतीय संविधान हेतु 1935 के भारत सरकार अधिनियम से बहुत सारे प्रावधान लिए गए हैं, इस तथ्य की पुष्टि निम्नलिखित बातों से होती है-

(i) **संविधान की संघीय व्यवस्था** 1935 के इस अधिनियम पर आधारित है। ब्रिटिश प्रांतों एवं देशी रियासतों को मिलाकर भारत संघ बनाने का सुझाव इस अधिनियम में दिया गया था।

(ii) भारतीय संविधान में केन्द्र एवं राज्यों के मध्य शक्तियों के विभाजन के विषय में तीन सूचियों— संघ सूची, राज सूची एवं समवर्ती सूची की व्यवस्था भारत सरकार अधिनियम, 1935 पर आधारित है, क्योंकि इस अधिनिय में भी तीन सूचियों का उल्लेख किया गया था। 1935 के भारत सरकार अधिनियम की तरह, भारतीय संविधार में केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है।

(iii) द्विसदनीय विधानपालिका —वर्तमान संविधान के अन्तर्गत केन्द्र एवं राज्य स्तरों पर द्वि-सदनीय विधानपालिका की व्यवस्था की गयी है। केन्द्रीय विधानपालिका अर्थात् संसद के दो सदन लोक सभा एवं राज्य सभा हैं और राज्य विधानपालिकाओं के दोनों सदनों के नाम विधान सभा एवं विधान परिषद हैं। भारत सरकार अधिनियम 1935 के अंतर्गत केन्द्र में और 11 में से छः प्रांतों में द्वि-सदनीय व्यवस्था लागू थी।

(iv) वर्तमान **संविधान का अनुच्छेद 352**, जिसके तहत राष्ट्रपति देश में राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा कर सकत है, भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 102 की कॉपी है।

(v) वर्तमान **संविधान के अनुच्छेद 356** के अन्तर्गत राज्य सरकार को भंग करके राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किय जा सकता है। यह व्यवस्था भारतीय सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 93 से मिलती-जुलती है।

(vi) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 256 में यह व्यवस्था की गयी है कि राज्य सरकार अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार से करेगी, जिससे कि संसद द्वारा निर्मित कानूनों के पालन में कोई अडचन न आए। ऐसे ही व्यवस्था भारत सरकार अधिनियम 1935 की धारा 126 में की गयी थी।

(vii) वर्तमान देश के केंद्रीय बैंक रिजर्व बैंक ऑफ़ इंडिया की स्थापना इसी एक्ट के माध्यम से की गई थी।

3. विभिन्न समितियों की रिपोर्ट (Reports of Various Committees)- मसौदा समिति की स्थापना से पूर्व संविधान सभा द्वारा विभिन्न विषयों पर कई समितियों का गठन किया था; जैसे-

(i) संघीय शक्तियों की समिति (Union Powers Committee)

(ii) संघीय संविधान समिति (Union Constitution Committee)

(iii) प्रान्तीय संविधान समिति (Provincial Constitution Committee)

(iv) संघ एवं राज्यों के वित्तीय संबंधों की समिति (Committee on Financial Relations between Union and States)

(v) अल्पसंख्यकों एवं मौलिक अधिकारों से संबंधित परामर्शदात्री समिति (Advisory Committee on Minorities and Fundamental Rights)

काफी विचार-विमर्श के बाद इन समितियों ने अपनी रिपोर्ट तैयार करके सविधान सभा को सौंपी थी, इन समितियों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट भारतीय संविधान के अनेक उपबन्धों का आधार हैं।

4. मसौदा संविधान (Draft Constitution)-डॉ. बी. आर. अम्बेडकर की अध्यक्षता वाली सात सदस्यीय मसौदा समिति को विभिन्न समितियों की रिपोर्टों के आधार पर संविधान का मसौदा तैयार करने का कार्य सौंपा गया था। मसौदा समिति ने संविधान का मसौदा तैयार करके इसे 27 फरवरी, 1948 को संविधान सभा के अध्यक्ष को सौंपा। मसौदा संविधान में 315 अनुच्छेद एवं 8 अनुसूचियां शामिल थीं। 4 नवम्बर, 1948 को प्रारम्भ हुए संविधान सभा के अधिवेशन में मसौदा संविधान की एक-एक धारा पर जमकर वाद-विवाद हुआ। इस दौरान इसमें 6635 संशोधन प्रस्तुत किए गए, जिनमें 2473 संशोधनों पर विचार-विमर्श किया गया और इनमें से अनेक संशोधनों को स्वीकार कर लिया गया। अन्ततः जो नवीन संविधान तैयार हुआ.

उसमें 395 अनुच्छेद एवं 8 अनुसूचियां शामिल थीं। इस प्रकार मसौदा-संविधान वर्तमान संविधान का एक प्रमुख स्रोत बनकर सामने आया।

5. संविधान सभा में वाद-विवाद (Debates in the Constituent Assembly)- संविधान सभा में जो मसौदा संविधान प्रस्तुत किया गया था. उसकी एक-एक धारा पर सदस्यों ने वाद-विवाद किया था। मसौदा संविधान पर वाद-विवाद करने वाले व्यक्ति साधारण सदस्य नहीं, बल्कि उच्च कोटि के विद्वान थे। इन सदस्यों में प्रमुख कानूनविद् भी शामिल थे। ए,के, गोपालन बनाम मद्रास राज्य के मुकदमे की सुनवाई के समय सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान सभा के वाद-विवादों का संज्ञान लिया था।

6. विदेशी संविधान (Foreign Constitutions)- संविधान निर्माताओं ने अनेक देशों के संविधानों का गहन अध्ययन किया था और उन संविधानों से अपने संविधान के लिए वे बातें अपनायी थी, जो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल थीं। जिन संविधानों का भारतीय संविधान के निर्माण में सर्वाधिक योगदान रहा, उनमें निम्नलिखित संविधानों का उल्लेख किया जा सकता है—

(i) ब्रिटिश संविधान (British Constitution)- भारत लम्बे समय तक ब्रिटिश साम्राज्य का अंग रहा था। इस दौरान भारतीयों को ब्रिटिश राजनीतिक संस्थाओं की कार्य प्रणाली का काफी अनुभव हो गया था। अतः संविधान निर्माताओं ने ब्रिटिश संविधान से अनेक बातें ग्रहण कीं; जैसे-

(क) ब्रिटेन की तरह, संविधान द्वारा भारत में कानून का शासन स्थापित किया गया है। यहाँ सभी व्यक्ति कानून के समक्ष समान हैं।

(ख) भारत की संसदीय शासन प्रणाली ब्रिटेन की संसदीय शासन प्रणाली जैसी है। इसीलिए भारतीय संविधान में दोहरी कार्यपालिका की व्यवस्था की गयी है। ब्रिटेन के सम्राट की तरह भारत में राष्ट्रपति को नाममात्र की शक्तियां और प्रधान मंत्री को वास्तविक शक्तियां प्रदान की गयी हैं। ब्रिटेन की तरह, भारत में कार्यपालिका संसद के प्रति उत्तरदायी है।

(ग) ब्रिटेन की तरह भारत में द्वि-सदनीय विधानपालिका है। यहाँ ब्रिटिश कॉमन सभा की तरह लोक सभा के सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं और लॉर्ड सभा की तरह राज्य सभा एक स्थायी सदन है। भारत में राज्य स्तर पर भी द्वि-सदनीय व्यवस्था लागू की गयी है। इतना ही नहीं यहाँ ब्रिटिश संसद की तरह, राज्य सभा की तुलना में लोक सभा को अधिक शक्तियां प्रदान की गयी हैं।

(ii) अमेरिकी संविधान (American Constitution) — अमेरिकी सविधान से अनेक बातें ग्रहण की गयी हैं; जैसे-

(क) भारतीय संविधान की प्रस्तावना में प्रयुक्त 'हम भारत के लोग' शब्दावली अमेरिकी सविधान की प्रस्तावना से ली गयी है।

(ख) भारतीय संविधान में शामिल नागरिकों के मौलिक अधिकार अमेरिका के अधिकार-पत्र (Bill of Rights) से मिलते हैं।

(ग) अमेरिका की तरह भारत में संघात्मक व्यवस्था लागू की गयी है। अमेरिका की तरह भारत भी राज्यों का संघ है।

(घ) अमेरिका की तरह, भारत में सर्वोच्च न्यायालय को शक्तिशाली बनाया गया है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय संसद एवं राज्य विधानमंडलों द्वारा निर्मित कानूनों की संवैधानिकता की जांच कर सकता है।

(ङ) अमेरिका की तरह भारत में उप-राष्ट्रपति के पद की व्यवस्था की गयी है।

(iii) कनेडियन संविधान (Canadian Constitution) - भारतीय संविधान में कनाडा के संविधान से भी कुछ बातें ली गयी हैं; जैसे-

(क) कनाडा के संविधान की तरह, भारत के संविधान में 'फेडरेशन' (Federation) शब्द का प्रयोग न करके 'यूनियन' (Union) शब्द का प्रयोग किया गया है। भारतीय संविधान के प्रथम अनुच्छेद में भारत को 'राज्यों के संघ' (Union of States) की संज्ञा दी गयी है।

(ख) कनाडा की तरह, भारत में राज्यों की अपेक्षा केन्द्र को शक्तिशाली बनाया गया है। कनाडा की तरह भारत में अवशेष शक्तियां (Residuary Powers) केन्द्र को सौंपी गयी हैं।

(iv) आयरिश संविधान (Irish Constitution)- भारतीय संविधान में आयरिश संविधान से भी कई बातें ग्रहण गयी हैं; जैसे संविधान में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों (DPSP)का समावेश, राष्ट्रपति के चुनाव हेतु निर्वाचक मंडल की व्यवस्था, जिसमें संसद एवं राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होते हैं; और राष्ट्रपति द्वारा राज्य सभा के कुछ सदस्यों का मनोनयन (Nomination)।

(v) आस्ट्रेलियन संविधान (Australian Constitution) — भारतीय संविधान में समवर्ती सूची आस्ट्रेलिया के संविधान से ली गयी है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 251 में केन्द्र एवं राज्यों के मध्य विवादों के समाधान की जो व्यवस्था की गयी है, उस पर आस्ट्रेलिया के संविधान की छाप है।

(vi) जर्मन संविधान (German Constitution) — भारत में संकटकाल का सामना करने के लिए राष्ट्रपति को अनुच्छेद 352 , 356 एवं 360 के द्वारा जो शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं, वे जर्मनी के वाइमर संविधान से ली गयी है।

(vii) जापानी संविधान (Japanese Constitution)- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में 'कानून द्वारा स्थापित विधि' (Procedure established by Law) की जिस शब्दावली का प्रयोग किया गया है, वह जापान के संविधान से ली गयी है।

विकासवादी स्त्रोत (Evolutionary Sources)

विकासवादी स्रोतों से हमारा तात्पर्य उन स्रोतों से है, जिन्होंने भारतीय संविधान के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया है। आज हमें भारतीय संविधान का वह रूप देखने को नहीं मिलता है, जो रूप 26 जनवरी 1950 को इसके लागू होने के समय मौजूद था। वस्तुतः भारतीय संविधान के रूप में धीरे-धीरे परिवर्तन आया है और संविधान को विकसित व परिवर्तित करने में निम्नलिखित कारक- तत्वों की मुख्य भूमिका रही है।

1. संसद द्वारा निर्मित अधिनियम (Acts Enacted by the Parliament) — भारतीय संविधान में अनेक ऐसे उपबन्ध हैं, जिनकी संविधान में विस्तृत व्याख्या नहीं की गयी है; बल्कि यह कार्य संसद के लिए छोड़ दिया गया है। संसद ने समय-समय पर विशेष अधिनियमों का निर्माण करके इस कार्य को पूरा किया है। कुछ प्रमुख अधिनियम इस प्रकार हैं-

(i) जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (ii) राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति निर्वाचन अधिनियम, 1951

(iii) भारतीय नागरिकता अधिनियम, 1955 (iv) राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956

(v) राष्ट्रीय भाषा अधिनियम, 1963 (vi) पंजाब पुनर्गठन अधिनियम 1966

(vii) विशेष न्यायालय अधिनियम, 1979 (viii) राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम 1980

(ix) राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र अधिनियम, 1992, ऐसे और भी अधिनियम हैं।

2. संविधान संशोधन अधिनियम (Constitutional Amendment Acts)— संविधान के प्रावधानों में परिवर्तन करने के लिए संविधान संशोधन अधिनियम संसद द्वारा पारित किए जाते हैं। संविधान लागू होने की तिथि से लेकर 2023 तक इसमें 106 संशोधन किए जा चुके हैं। 2023 में संविधान में आखिरी संशोधन— महिला आरक्षण अधिनियम 2023 किया गया है।

इन संशोधनों द्वारा संविधान से अनेक बातें निकाली अथवा जोड़ी गयी हैं। इस नाते इन संशोधनों ने संविधान को विकसित करने का कार्य किया है। वैसे तो प्रत्येक संविधान संशोधन अधिनियम ने संविधान को बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप ढालने का काम किया है, किन्तु पहले चौथे, सातवें 19वें, 24वें 31वें. 42वें 44वें 52वें 61वें , 73वें, 74वें एवं 91वें संशोधन अधिनियमों ने संविधान में विशेष परिवर्तन किए हैं।

उदाहरण के लिए 24वें संशोधन अधिनियम (1971) द्वारा संसद को मौलिक अधिकारों वाले भाग सहित संविधान के - किसी भी भाग में संशोधन करने की शक्ति प्रदान की गयी थी। 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा संविधान में व्यापक - पैमाने पर फेर-बदल की गयी थी; जैसे संविधान की प्रस्तावना में 'समाजवाद' एवं 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द जोड़ना, राष्ट्रपति के लिए मंत्रि-परिषद की सलाह की बाध्यता, मौलिक अधिकारों की तुलना में नीति-निर्देशक सिद्धांतों को महत्व और संविधान में मौलिक कर्तव्यों का समावेश किया गया था।

3. न्यायिक निर्णय (Judicial Decision)- भारतीय संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने एवं इसकी रक्षा करने का दायित्व सौंपा गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने इस दायित्व को पूरा करते हुए सैकड़ों निर्णय दिए हैं। समय-समय पर इसके सामने जो संवैधानिक विवाद आए हैं, अपने निर्णयों द्वारा इसने उनका समाधान किया है। इन निर्णयों ने संविधान की व्याख्या एवं रक्षा ही नहीं की है, बल्कि संविधान को विकसित करने का कार्य भी किया है। *

उदाहरण के लिए केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य (1973) के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1967) के मुकदमे में दिए अपने निर्णय को पलटते हुए स्पष्ट किया था कि संसद मौलिक अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है, किन्तु यह 'संविधान के मूलभूत ढांचे' में संशोधन नहीं कर सकती है। इसी तरह इन्दिरा साहनी बनाम भारत संघ (1992) मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत सीटों के आरक्षण की भारत सरकार की घोषणा को सही ठहराते हुए यह निर्णय दिया कि सरकारी नौकरियों में 50 प्रतिशत से अधिक सीटें आरक्षित नहीं की जा सकती हैं।

4. संवैधानिक विशेषज्ञों के विचार (Views of Constitutional Experts)- संवैधानिक मामलों के विशेषज्ञों के विचारों की भी भारतीय संविधान के विकासवादी स्रोतों में गिनती की जाती है। इन विशेषज्ञों ने भारतीय संविधान पर जिन ग्रंथों की रचना की है वे भारतीय संविधान का एक स्रोत बनकर उभरे हैं। ऐसे विशेषज्ञों और उनके द्वारा रचित ग्रंथों में निम्नलिखित विशेषज्ञों और उनकी रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है-

(1) Granville Austin: The Indian Constitution

(ii) Sir Ivor Jennigs: Some Characteristics of the Constitution of India

(iii) C.H. Alexandrowich: Constitutional Democracy of India

(iv) K.V. Rao: Parliamentary Democracy in India

(vi) M.C. Sitelwad: The Indian Constitution

(vii) A.B. Lal: Indian Parliament

(xiii) D.D. Basu: Commentries on the Constitution of India

5. परम्पराएँ (Conventions) - परम्पराएं संविधान का अलिखित भाग होती हैं, जो समय एवं परिस्थितियों के अनुसार विकसित होती जाती है। ये परम्पराएं संविधान में परिवर्तन लाने का साधन बन जाती हैं। भारत का संविधान लिखित ही नहीं है बल्कि विश्व का सर्वाधिक विशाल संविधान भी है, फिर भी यहाँ कुछ परम्पराओं का जन्म हुआ है, जिन्होंने शासन संचालन के कार्य में उल्लेखनीय योगदान दिया है। ऐसी कुछ परम्पराएं हैं-

(i) 'मंत्रिमंडल' (Cabinet) की संस्था परम्परा के रूप में विकसित हुई है. क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 74 मंत्रि-परिषद (Council of Ministers) का उल्लेख किया गया था; मंत्रिमंडल का नहीं।

(ii) किसी व्यक्ति को अपने ही राज्य में राज्यपाल के पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता है। भारत सरकार द्वा इस परम्परा का पालन 1960 के दशक के मध्य से किया जा रहा है।

(iii) लोक सभा उपाध्यक्ष के पद पर विपक्षी दल के किसी नेता का चयन किया जाता है। अक्सर लोक सभा ने इस परम्परा का पालन किया है।

(iv) त्रिशकु संसद (Hung Parliament) की स्थिति में पहले लोक सभा या राज्य विधान सभाओं में सर्वाधिक सीटें प्राप्त करने वाले दल को सरकार बनाने का अवसर दिया जाता है।

(v) सबसे वरिष्ठ सदस्य को प्रोटेम स्पीकर नियुक्त करने के परंपरा।

क्या भारतीय संविधान उधार लिए गए सिद्धांतों का समूह है?

(Is Constitution of India a Bag of Borrowings)

किसी देश का संविधान एक जीवित सावयव की तरह होता है। संविधान के बनाने का मुख्य उद्देश्य देशवासियों की आशाओं एवं आकांक्षाओं को पूरा करना होता है, अतः इसको बनाते समय में देश की सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक भौगोलिक परिस्थितियों एवं देश के इतिहास की अवहेलना नहीं की जा सकती है। भारत का संविधान बनाते समय इन सब बातों का ध्यान रखा गया। भारत एक विशाल देश है। यहाँ पर भिन्न-भिन्न धर्मों एवं जातितयों के लोग रहते हैं और अनेक भाषाएं बोली जाती हैं। यहाँ के लोगों की पोशाक, रहन-सहन, खाना-पीना भी अलग-अलग है, फिर भी यहाँ विविधता एकता पायी जाती है।

भारतीय संविधान के स्रोतों के संदर्भ में कहा जा सकता है कि संविधान निर्माताओं का मुख्य उद्देश्य एक व्यावहारिक संविधान का निर्माण करना था। अतः उन्होंने विश्व के सभी प्रमुख सविधानों का गहन अध्ययन किया और उनमें से उपयो उपबन्धों या तत्त्वों को जो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल थे, बिना संकोच ले लिया। इस प्रकार भारत का संविधा विश्व के संविधानों का सम्मिश्रण बन गया। जहाँ तक भारतीय संविधान को 'उधार लिए गए थैले' की संज्ञा देने का प्रश्न है, निःसन्देह यह कथन कुछ सीमा तक सही है क्योंकि भारतीय संविधान में अनेक बातें विश्व के विभिन्न संविधानों से ली गयी हैं; जैसे-

(i) ब्रिट्रेन के संविधान से संसदात्मक शासन प्रणाली, मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व, कानून का शासन, द्वि-सदनों विधानपालिका. (जिसमें निम्न सदन को अधिक शक्तियां दी गयी हैं) एकीकृत न्यायपालिका एकीकृत नौकरशा एवं इकहरी नागरिकता।

(ii) अमेरिका के संविधान से संघात्मक व्यवस्था मौलिक अधिकार, प्रस्तावना में प्रयुक्त 'हम भारत के ती शब्दावली, उप-राष्ट्रपति का पद, संविधान की सर्वोच्चता, न्यायिक पुनर्निरीक्षण एवं संवधिान में संशोधन लिए राज्य विधानमण्डलों का अनुमोदन।

(iii) आयरलैण्ड के संविधान से राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त एवं राज्य सभा के लिए 12 सदस्यों का मनोनयन।

(iv) कनाड़ा के सविधान से 'राज्यों का संघ' (Union of States) शब्दावली राज्यों की तुलना में केन्द्र को अधिक शक्तियां देना, अवशेष शक्तियां कंन्द्र को सौंपना एवं राज्यपालों की नियुक्ति की विधि।

(v) आस्ट्रेलिया के संविधान से शक्तियों के विभाजन-सम्बन्धी समवर्ती सूची और केन्द्र एवं राज्यों के मध्य विवादों के समाधान का तरीका।

(vi) जर्मन के वाइमर संविधान से राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियां।

(vii) जापान के संविधान से अनुच्छेद 21 में प्रयुक्त 'कानून द्वारा स्थापित विधि'।

(viii) दक्षिण अफ्रीका के संविधान से राज्य सभा के सदस्यों के निर्वाचन का तरीका और संविधान संशोधन की विशेष बहुमत वाली विधि।

(ix) साम्यवादी देशों के संविधानों से मौलिक कर्तव्य।

(x) भारतीय सरकार अधिनियम 1935 से सैकड़ों धाराएं।

उपर्युक्त बातों से पता चलता है कि भारत के संविधान की अनेक व्यवस्थाएं ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया आयरलैण्ड, जर्मनी दक्षिण अफ्रीका आदि देशों के संविधानों से ली गयी हैं।

फिर भी भारत के संविधान को 'उधार का थैला' कहना सही नहीं है। इस मान्यता के समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं-

(i) विश्व में कोई भी ऐसा संविधान नहीं है, जो उसके निर्माताओं का स्वयं का हो।

(ii) संविधान निर्माताओं ने अन्य देशों के संविधानों के सिद्धांतों को ज्यों-का-त्यों नहीं अपनाया है, बल्कि उनको देश की परिस्थितियों के अनुसार ढाला है और विदेशी सविधानों की प्रत्येक अच्छी विशेषता को ग्रहण करते हुए अनावश्यक विशेषताओं को छोड़ दिया है। जैसे संविधान निर्माताओं ने ब्रिटेन के सविधान से संसदीय शासन- प्रणाली तो ली है किन्तु उसकी एकात्मक व्यवस्था को नहीं अपनाया है। इसी प्रकार संविधान निर्माताओं ने अमेरिकी संविधान की संघीय व्यवस्था को तो अपनाया है, किन्तु उसकी अध्यक्षत्मक शासन प्रणाली को छोड़ दिया है।

(iii) भारत में न्यायाधीशों को नियुक्त करने का तरीका, पर्याप्त सीमा तक, ब्रिटिश संविधान से लिया है, किन्तु ब्रिटिश शासन-प्रणाली के विपरीत, सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review) का अधिकार दिया है।

(iv) इस विषय में डॉ. बी, आर. अम्बेडकर ने सविधान सभा में कहा था "सिद्धांत उधार लेने में संकोच की कोई बात नहीं है। यह साहित्यिक चोरी नहीं है, क्योंकि संविधान संबंधी मौलिक विचारों पर किसी को भी मालिकाना हक नहीं होता हैं।"

निष्कर्ष (Conclusion)- इस विषय के दोनों पक्षों का अध्ययन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि भारत के संविधान-निर्माताओं ने विभिन्न देशों के संविधानों से बहुत कुछ ग्रहण किया है फिर भी भारत के संविधान को 'उधार लिए गए सिद्धांतों का समूह' नहीं कहा जा सकता है। वस्तुतः अन्य देशों से उपयोगी संवैधानिक सिद्धांत लेने से भारत का संविधान 'उधार लिए गए सिद्धांतों का समूह' नहीं बन जाता है, क्योंकि विश्व में कोई भी संविधान अपने निर्माताओं की मौलिक रचना होने का दावा नहीं कर सकता है। संविधान किसी लेखक द्वारा रचित साहित्यिक ग्रंथ नहीं होता है. जिसमें मौलिकता का होना आवश्यक हो बल्कि यह सैकड़ों सदस्यों द्वारा तैयार किया गया एक कानूनी दस्तावेज होता है. जिसमें जीवश्यकता के अनुसार विभिन्न देशों के संविधानों से विभिन्न बातें ग्रहण की जा सकती है। इस दृष्टि से भारत के संविधान को 'उधार लिए गए सिद्धांतों का समूह' कहना उचित नहीं है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. "भारतीय संविधान उधार ली गयी वस्तुओं का एक थैला है।" टिप्पणी कीजिए। ("Indian Constitution is a bag of borrowings." Comment.)

2. "भारतीय संविधान उधार ली गयी वस्तुओं का थैला है।" इस कथन के संदर्भ में भारतीय संविधान के स्त्रोतो

का वर्णन करें।

(In the context of "The Constitution of India is a bag of borrowings", discuss the various sources of Indian Constitution.)

3. भारतीय संविधान के मुख्य स्त्रोतों का वर्णन करें।

(Describe the main sources of the Constitution of India.)

5. "भारतीय संविधान उधार लिए गए सिद्धांतों का समूह है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? व्याख्या करें। ("Indian Constitution is a bag of borrowings." Do you agree with this statement? Explain.)

6. "भारतीय संविधान उधार लिए गए सिद्धान्तों का थैला है।" व्याख्या करो।

("The Constitution of India is a bag of borrowings." Discuss.)

प्रस्तावना [Preamble]

प्रस्तावना से हमारा अभिप्रायः उस कथन से होता है. जिसे संविधान के प्रावधानों के आरम्भ होने से पूर्व अंकित किया जाता है। प्रस्तावना एक ऐसा कथन होता है जिसमें संविधान के मुख्य उद्देश्यों, मौलिक सिद्धांतों एवं आदर्शों का समावेश होता है। प्रस्तावना में राज्य के संवैधानिक ढाँचे का चित्र दिया होता है. जिससे हमें आभास मिल जाता है कि राज्य की शासन प्रणाली किस प्रकार की है। **के. एम. मुंशी** के शब्दों में, "भारतीय संविधान की प्रस्तावना संविधान निर्माताओं के मनों को जानने की कुंजी है।"

संयुक्त राज्य अमेरिका ऐसा पहला देश है, जिसने 1787 में निर्मित अपने देश के संविधान में प्रस्तावना को शामिल किया था। इसके बाद विश्व में जिन संविधानों का निर्माण किया गया, उनमें से अधिकतर संविधानों का प्रारम्भ प्रस्तावना से होता है। भारतीय संविधान को प्रस्तावना जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत 'उद्देश्य प्रस्ताव' पर आधारित है। पण्डित नेहरू ने उद्देश्य प्रस्ताव 13 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया था। संविधान सभा ने 13 से 19 दिसम्बर तक इस पर विचार किया था और 22 जनवरी 1947 को इसे स्वीकार किया था।

संविधान की प्रस्तावना को **42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा** संशोधित किया गया। इस संशोधन अधिनियम द्वारा इसमें 'समाजवाद' 'धर्मनिरपेक्ष एवं 'अखंडता' शब्द जोड़े गए।

प्रस्तावना का पाठ (Text of the Preamble), "हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए और इसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय विचार अभिव्यक्ति, धर्म, विश्वास एवं उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा एवं अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए और उन सभी में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता एवं अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्पित होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनांक 26 नवंबर, 1949 को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित एवं आत्म-अर्पित करते हैं।"

भारतीय संविधान की प्रस्तावना के विश्लेषण से स्पष्ट है कि यह मुख्य रूप से निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डालती है-

1. भारतीय संविधान के निर्माता कौन है?

2. भारतीय शासन प्रणाली का रूप कैसा है?

3. भारतीय संविधान के उद्देश्य क्या है?

यहाँ इन तीनों बातों की व्याख्या प्रस्तुत है।

1. संविधान के निर्माता (Framers of the Constitution)

भारतीय संविधान की प्रस्तावना के पाठ का प्रारम्भ, 'हम भारत के लोग' और अन्त 'इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित एवं आत्म अर्पित करते हैं', शब्दावली से होता है। इन शब्दावलियों से स्पष्ट हो जाता है कि इस संविधार की निर्माता भारत की जनता है। इसका निहितार्थ यह है कि यह संविधान स्वयं भारत की जनता द्वारा बनाया गया है; किसी बाह्य सत्ता द्वारा भारत की जनता पर नहीं थोपा गया है। इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए **डॉ. बी. आर. अम्बेडकर** लिखते हैं, "प्रस्तावना स्पष्ट करती है कि इस सदन (संविधान सभा) के प्रत्येक सदस्य की क्या इच्छा है; यह संविधान अपनी सत्ता एवं सम्प्रभुता जनता से प्राप्त करता है।

2. शासन-प्रणाली का रूप (Form of the Government) — संविधान की प्रस्तावना में प्रयुक्त शब्द 'सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणराज्य', देश की शासन प्रणाली पर प्रकाश डालते हैं। यहाँ इन शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत है।

(i) संप्रभु (Sovereign) - संप्रभु शब्द का आशय यह है कि भारत न तो किसी अन्य देश पर निर्भर है और न ही यह किसी अन्य देश का डोमिनियन है। भारत स्वयं का प्रभु है। इसके ऊपर कोई शक्ति नहीं है, अतः यह अपने आंतरिक एवं बाहरी मामलों में स्वतंत्र है। यद्यपि 1949 में भारत ने राष्ट्रमंडल (Commonwealth of Nations) की सदस्यता स्वीकार करते हुए ब्रिटेन को इसका प्रमुख माना था, किन्तु सरकार का यह निर्णय किसी भी तरह से भारत की संप्रभुता को प्रभावित नहीं करता है। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता भारत की संप्रभुता को किसी भी मायने में सीमित नहीं करती है। एक संप्रभु राज्य होने के नाते भारत किसी देश के पक्ष में अपनी सीमा के भीतर के किसी हिस्से पर से अपना दावा नहीं छोड़ सकता है।

(ii) समाजवादी (Socialist)— 42वें संशोधन अधिनियम (1976) से पहले भी भारत के संविधान में नीति-निर्देशक सिद्धांतों के रूप में समाजवादी तत्व मौजूद थे। दूसरे शब्दों में, जो बात पहले संविधान में अंतर्निहित थी, उसे 42वें संशोधक अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से इसमें जोड़ दिया गया। उल्लेखनीय है कि भारतीय समाजवाद 'लोकतांत्रिक समाजवाद' है; न कि "साम्यवादी समाजवाद', जिसमें उत्पादन एवं वितरण के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण और निजी संपत्ति का उन्मूलन शामिल होता है। लोकतांत्रिक समाजवाद मिश्रित अर्थव्यवस्था में आस्था रखता है।

(iii) धर्मनिरपेक्ष (Secular) - 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द को भी 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया। यद्यपि 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द का भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया था. फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि संविधान-निर्माता देश में धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करना चाहते थे। इसीलिए सविधान में धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से 28) शामिल किया गया था। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता की सभी विशेषताएं विद्यमान है अर्थात् इसमें सभी धर्मों को समान माना गया है और किसी भी धर्म को राजकीय धर्म घोषित नहीं किया गया है।

(iv) लोकतांत्रिक (Democratic)- संविधान की प्रस्तावना में देश में लोकतांत्रिक शासन की स्थापना की बात कही गयी है। लोकतन्त्र लोक संप्रभुता के सिद्धान्त पर आधारित होता है अर्थात् लोकतंत्र में सर्वोच्च शक्ति जनता में निहित होती है। लोकतंत्र दो प्रकार का होता है-प्रत्यक्ष लोकतन्त्र एवं अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र। प्रत्यक्ष लोकतंत्र में व्यक्ति अपनी शक्ति का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से करते हैं; जैसे स्विट्जरलैंड में। इसके विपरीत, अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि सर्वोच्च शक्ति का प्रयोग करते हुए कानूनों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार के लोकतंत्र को प्रतिनिधिक लोकतंत्र भी कहा जाता है। प्रतिनिधिक लोकतंत्र भी दो प्रकार का होता है संसदीय लोकतन्त्र एवं अध्यक्षीय लोकतन्त्र।

संविधान द्वारा भारत में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गयी है। यहाँ कार्यपालिका अपनी सभी नीतियों और कार्यों के लिए विधानपालिका के प्रति जवाबदेह है। वयस्क मताधिकार, समयबद्ध चुनाव कानून की सर्वोच्चता न्यायपालिका की स्वतन्वता एवं भेदभाव का अभाव भारतीय लोकतन्त्र के प्रमुख लक्षण है। संविधान की प्रस्तावना में 'लोकतान्त्रिक' शब्द का प्रयोग व्यापक रूप में किया है। इसमें न केवल राजनीतिक लोकतन्त्र, बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक लोकतन्त्र भी शामिल हैं।

(v) गणतंत्र (Republic)- विश्व में मौजूद लोकतांत्रिक शासनों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है-राजतन्त्र एवं गणतन्त्र। राजतन्त्र में राज्य के प्रमुख का चयन वंशानुगत आधार पर किया जाता है; जैसा कि ब्रिटेन में जब कि गणतन्त्र में राज्य का प्रमुख जनता द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में निश्चित समय के लिए चुना जाता है; जैसा कि अमेरिका में। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में गणतंत्र का अर्थ यह है कि राज्य प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति चुनाव के माध्यम से सत्ता में आता है। उसका चुनाव पांच वर्ष के लिए किया जाता है। गणतंत्र के अर्थ में दो और बातें भी शामिल है-प्रथम, सत्ता किसी एक व्यक्ति के हाथों में नहीं होती है और द्वितीय, इसमें कोई भी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग मौजूद नहीं होता है, बल्कि, बिना किसी भेदभाव के सार्वजनिक पद, सभी नागरिकों के लिए खुले होते हैं।

संविधान के उद्देश्य (Objectives of the Constitution)

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में संविधान के निम्नलिखित उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है-

1. न्याय (Justice)- संविधान की प्रस्तावना में न्याय के तीन रूपों समाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक को शामिल किया गया है और इसकी सुरक्षा मौलिक अधिकारों एवं नीति-निदेशक सिद्धांतों के विभिन्न उपबंधों के द्वारा की गयी है। सामाजिक न्याय का अर्थ है व्यक्तियों के साथ धर्म, नस्ल जाति या लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए । इसका अर्थ है-समाज में किसी विशेषाधिकारों प्राप्त वर्ग की अनुपस्थिति और अनसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों पिछड़े वर्गों एवं महिलाओं की स्थिति में सुधार। आर्थिक न्याय का अर्थ है-आर्थिक रूप से किसी व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति द्वारा शोषण नहीं किया जाना। इसमें संपदा आय एवं संपत्ति की असमानता को दूर करना भी शामिल है। राजनीतिक न्याय का अर्थ है- सभी व्यक्तियों की शासन में भागीदारी अर्थात् राजनीतिक पद किसी वर्ग विशेष के लिए आरक्षित न होना।

2. स्वतन्त्रता (Liberty) - स्वतन्त्रता का अर्थ है-व्यक्तियों की गतिविधियों पर किसी प्रकार के बन्धन की अनुपस्थिति के साथ ही व्यक्ति को विकास के लिए अवसर प्रदान करना। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में नागरिकों को विचार अभिव्यकि विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। इनके हनन की स्थिति में पीड़ित व्यक्ति द्वारा सर्वोच्च न्यायाल या संबंधित उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जा सकता है। प्रस्तावना में कहा गया है कि लोकतांत्रिक शासन के सप संचालन के लिए स्वतन्त्रता नितान्त आवश्यक है। किन्तु स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह नहीं कि व्यक्ति को कुछ भी करने लाइसेंस मिल गया है। व्यक्ति द्वारा स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग संविधान में वर्णित सीमाओं के तहत ही किया जा सकता।

3. समानता (Equality)- समानता का अर्थ है-समाज के किसी भी वर्ग के लिए विशेषाधिकारों का न होना क बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक व्यक्ति को विकास के समान अवसर उपलब्ध होना। भारतीय संविधान की प्रस्तावना नागरिकों को प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता प्रदान करती है। इस उपबंध में समानता के तीन आयाम शामिल हैं-नागरिक समानता, राजनीतिक समानता एवं आर्थिक समानता।

4. बंधुत्व (Fraternity)— बंधुत्व का अर्थ है- भाईचारे की भावना। भारतीय संविधान एकल नागरिकता के माध्यम से भाइचारे की भावना को प्रोत्साहित करता है। मौलिक कर्तव्य (अनुच्छेद 51 क) इस बात पर बल देते हैं कि हर नागरिक धार्मिक भाषायी, क्षेत्रीय अथवा वर्गीय विविधताओं से ऊपर उठकर सौहार्द एवं आपसी भाइचारे की भावना को प्रोत्साहित करे। संविधान की प्रस्तावना के अनुसार बंधुत्व के लिए दो बातों को सुनिश्चित करना जरूरी है-प्रथम, व्यक्ति का गौरव द्वितीय, देश की एकता एवं अखंडता। 'अखंडता' शब्द को 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया है।

प्रस्तावना की आलोचना (Criticism of the Preamble)

भारतीय संविधान की प्रस्तावना विश्व के अन्य संविधानों की प्रस्तावनाओं की तुलना में श्रेष्ठ है। यह विचार, आदर्श एवं अभिव्यक्ति को दृष्टि से अनूठी है. फिर भी विद्वानों द्वारा इसकी निम्नलिखित आलोचनाएँ की गयी हैं-

1. 'हम भारत के लोग' की शब्दावली (Phrase of The People of India')- कुछ विद्वानों का मत है कि प्रस्तावना में जिस 'हम भारत के लोग' शब्दावली का प्रयोग किया गया है, वह उपयुक्त नहीं है, क्योंकि संविधान का निर्माण करने वाली सविधान

सभा के सदस्यों का चुनाव भारत की जनता द्वारा नहीं, बल्कि प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों द्वा किया गया था। ये लोग यह भी कहते हैं कि 1935 के जिस भारतीय शासन अधिनियम के तहत प्रान्तीय विधान सभाओं को गठन किया गया था उसके तहत केवल अल्पसंख्यक धनी वर्ग को ही मताधिकार प्राप्त था। सभी वयस्क लोगों को नहीं ।

2. न्यायिक शक्ति नहीं (not Judicial Sanction)- आलोचकों का यह भी कहना है कि प्रस्तावना में अंकित सिद्धांत पवित्र घोषणा के अतिरिक्त कुछ नहीं है, क्योंकि इन्हें लागू कराने के लिए न्यायालय का सहारा नहीं लिया जा सकता है। न्यायिक शक्ति के अभाव में सरकार इन सिद्धान्तों को लागू करने के लिए बाध्य नहीं है।

3. 'समाजवाद' एवं 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द (Socialist and Secular Words)- आलोचकों का यह भी कहना है कि 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा प्रस्तावना में 'समाजवाद' एवं 'धर्मनिरपेक्ष' नामक जो दो शब्द जोड़े गए हैं, उनका अर्थ स्पष्ट नहीं किया गया है। ऐसी स्थिति में राजनीतिक दल एवं संगठन इनकी अपने-अपने तरीके से व्याख्या करके इनका दुरुपयोग कर सकते हैं।

प्रस्तावना का महत्त्व (Significance of the Preamble)

प्रस्तावना में उस आधारभूत दर्शन और राजनीतिक, धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों का उल्लेख है, जो हमारे संविधान के आधार हैं। इसके अलावा यह संविधान की नींव रखने वालों के सपनों एवं इच्छों को दर्शाती है। संविधान निर्माण में महत्त्वूपर्ण भूमिका निभाने वाले सदस्य सर अलादी कृष्णास्वामी अय्यर के शब्दों में, "संविधान की प्रस्तावना हमारे दीर्घकालिक सपनों का विचार है।" संविधान सभा की प्रारूप समिति के सदस्य के. एम. मुशी के अनुसार, "प्रस्तावना संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य का भविष्यफल है।" संविधान सभा के एक अन्य सदस्य पंडित ठाकुर दास भार्गव संविधान की प्रस्तावना के संबंध में कहते हैं, "प्रस्तावना संविधान का सबसे कीमती भाग है। यह संविधान की आत्मा है... यह संविधान की कुंजी है। यह संविधान का आभूषण है। यह सुन्दर गद्य-काव्य है। यह स्वयं में एक आदर्श है। सुप्रसिद्ध अंग्रेज राजनीति शास्त्री सर अर्नेस्ट बार्कर संविधान की प्रस्तावना लिखने वालों को राजनीतिक पण्डित कहकर सम्बोधित करते हैं। वे प्रस्तावना की 'संविधान की कुंजी' कहते हैं।

क्या प्रस्तावना संविधान का एक भाग है? (Is Preamble a Part of the Constitution?)

प्रस्तावना को लेकर एक विवाद यह है कि यह संविधान का एक भाग है या नहीं। बेरूबाड़ी मुकदमे (1960) में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि प्रस्तावना संविधान में निहित सामान्य प्रयोजनों को दर्शाती है और इसलिए संविधान-निर्माताओं के मस्तिष्क की एक कुंजी है। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद में प्रयोग की गयी व्यवस्थाओं के अनेक अर्थ निकलते हैं। इन अर्थों को स्पष्ट करने के लिए प्रस्तावना को संविधान में जोड़ा गया है। प्रस्तावना की विशेषता को स्वीकारते हुए भी सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि प्रस्तावना संविधान का भाग नहीं है, किन्तु केशवानंद भारती मुक़दमे (1973) में सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी पहली व्याख्या को अस्वीकार कर दिया और यह व्यवस्था दी कि प्रस्तावना संविधान का एक भाग है। यह महसूस किया गया कि प्रस्तावना संविधान का अति महत्त्वपूर्ण भाग है, इसीलिए इसमें वर्णित विचारों को ध्यान में रखकर संविधान का अध्ययन किया जाना चाहिए। भारतीय जीवन बीमा निगम मुक़दमे (1995) में पुनः सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि प्रस्तावना संविधान का भाग है।

क्या प्रस्तावना में संशोधन किया जा सकता है? (Can Preamble Be Amended?)

क्या प्रस्तावना में संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन किया जा सकता है? यह प्रश्न पहली बार केशवानंद भारती मामला (1973) में उठा। सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख यह विचार रखा गया कि इसमें संशोधन नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह संविधान का भाग नहीं है। याचिकाकर्ता ने कहा कि अनुच्छेद 368 के द्वारा संविधान के मूल तत्त्व एवं मूल विशेषताएँ, जो प्रस्तावना में उल्लेखित हैं, को ध्वस्त करने वाला संशोधन नहीं किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि प्रस्तावना संविधान का भाग है और इस नाते प्रस्तावना को संशोधित किया जा सकता है, किन्तु इसमें वर्णित 'संविधान के मूलभूत ढाँचे' में सशोधन नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि प्रस्तावना में निहित संविधान की मूलभूत विशेषताओं को अनुच्छेद 368 के तहत संशोधित नहीं किया जा सकता है। अब तक संविधान की

प्रस्तावना को केवल एक बार अर्थात 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा संशोधित किया गया है। इसके द्वारा इसमें तीन नए शब्दों 'समाजवादी' 'धर्मनिरपेक्ष' एवं 'अखण्डता' को जोड़ा गया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस संशोधन को अवैध नहीं बताना यह सिद्ध करता है कि संविधान की प्रस्तावना में संशोधन किया जा सकता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. भारतीय संविधान की प्रस्तावना पर एक निबन्ध लिखिए। (Write an essay on the Preamble of Indian Constitution.)

2. "भारत एक सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणतन्त्र है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। ("India is a Sovereign, Socialist, Secular, Democratic Republic." Explain this statement.)

3. भारतीय संविधान की प्रस्तावना की व्याख्या कीजिए।

(Explain the Preamble of Indian Constitution.)

4. "भारतीय संविधान के लिए प्रस्तावना नींव का एक पत्थर है।" इस कथन के प्रकाश में प्रस्तावना के महत्व पर प्रकाश डालिए।

("The Preamble to the Indian Constitution is a foundation stone." In the light of this statement, explain the importance of the preamble.)

5. "भारतीय संविधान की प्रस्तावना संविधान निर्माताओं के मनों को जानने की कुंजी है।" के. एम. मुंशी के इस कथन की व्याख्या कीजिए।

("Preamble to Indian Constitution is a key to open the minds of framers of the Constitution" Explain this statement of K.M. Munshi.)

6. भारतीय संविधान की प्रस्तावना की मुख्य विशेषताओं की विस्तृत व्याख्या करें।

(Explain in detail the main features of the Preamble of the Indian Constitution.)

----

3. भारतीय संविधान की मूल विशेषताएँ

[Salient Features of the Indian Constitution]

भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. विशाल संविधान (Bulky Constitution)- भारतीय संविधान विश्व का सबसे विशाल संविधान है। इसमे 22 भागों में विभक्त 395 अनुच्छेदों के अतिरिक्त 12 अनुसूचियां भी है। इसमें प्रारम्भ में आठ अनुसूचियां ही शामिल थीं। इसमें नौवी अनुसूची प्रथम संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ी गयी, जब कि 10वीं अनुसूची 52वें संशोधन अधिनियम द्वारा 11वी अनुसूची 73वें संशोधन अधिनियम द्वारा और 12वीं अनुसूची 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ी गयी है। इसी प्रकार संविधान में अनेक नए अनुच्छेद भी जोड़े गए हैं, किन्तु इनकी संख्या 395 ही रखी गयी है। विश्व में किसी भी देश का संविधान इतना

विशाल नहीं है, जितना कि भारत का। उदाहरण के लिए अमेरिका के संविधान में सात अनुच्छेद, ऑस्ट्रेलिया के संविधान में 128 अनुच्छेद, चीन के नवीन संविधान में 138 अनुच्छेद और कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद हैं। सर आइवर जैनिंग्स के शब्दों में, "भारतीय संविधान विश्व में सर्वाधिक विशाल संविधान है।

2. लचीलेपन एवं कठोरता का मिश्रण (Mixture of Flexibility and Rigidity) — भारतीय संविधान लचीलेपन एवं कठोरता का अद्भुत मिश्रण है। यह न तो ब्रिटिश संविधान के समान लचीला है और न ही अमेरिका के संविधान के समान कठोर, बल्कि इसमें दोनों के बीच का रास्ता अपनाया गया है। भारतीय संविधान में तीन प्रकार से संशोधन किया जा सकता है। संविधान के कुछ अनुच्छेदों, जैसे संघ में नए राज्यों का प्रवेश, वर्तमान राज्यों का पुनर्गठन आदि से सम्बन्धित अनुच्छेदों में संशोधन संसद के दोनों सदनों के साधारण बहुमत से हो जाता है। कुछ अनुच्छेदों में संशोधन संसद के दोनों सदनों के विशेष बहुमत अर्थात कुल सदस्य संख्या के पूर्ण बहुमत और उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से होता है। इन अनुच्छेदों का संबंध संविधान के तीसरे एवं चौथे भाग से होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, कुछ अन्य अनुच्छेदों; जैसे राष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित अनुच्छेद 54 एवं 55, केन्द्र एवं राज्यों की कार्यपालिका से संबंधित अनुच्छेद 73 एवं 152 और ससद की संशोधन संबंधी शक्तियों से संबंधित अनुच्छेद 368 में संशोधन के लिए न केवल संसद के दोनों सदनों के विशेष बहुमत बल्कि आधे-से-अधिक राज्य विधानमंडलों के अनुमोदन की भी आवश्यकता होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत का संविधान लचीलेपन एवं कठोरता का अनुपम मिश्रण है।

3. मूलतः लिखित एवं निर्मित संविधान (Basically Written and Enacted Constitution) - भारतीय संविधान मूलतः लिखित एवं निर्मित संविधान है। शासन से संबंधित मौलिक नियमों को संविधान सभा द्वारा एक प्रलेख के रूप में तैयार किया गया है जिसमें वर्तमान समय में 395 अनुच्छेद एवं 12 अनुसूचियां शामिल हैं। भारत में संविधान के निर्माण के लिए कैबिनेट मिशन योजना (1946) के अन्तर्गत संविधान सभा का गठन किया गया था जिसने 9 दिसम्बर 1946 को अपना काम प्रारम्भ किया था और 26 नवम्बर, 1949 को अपना काम समाप्त करके देश को नया संविधान प्रदान किया था। इस प्रकार संविधान सभा को संविधान तैयार करने में 2 वर्ष 11 महीने एवं 18 दिन लगे थे।

4. सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतान्त्रिक गणतन्त्र (Sovereign, Socialist, Secular, Democratic Republic)- संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि भारत एक 'सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतान्त्रिक गणतन्त्र है। यह शब्दावली भारतीय शासन प्रणाली के स्वरूप को दर्शाती है। **सम्प्रभुता** का अर्थ यह है कि भारत पूर्णरूप से स्वतंत्र है और इस पर किसी विदेशी सत्ता का कोई नियन्त्रण नहीं है। भारत अन्य राज्यों के कानूनी नियंत्रण से पूर्णतः स्वतंत्र है और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अन्य राज्यों का आदेश मानने के लिए बाध्य नहीं है। भारत संयुक्त राष्ट्र (United Nations) एवं राष्ट्रमंडल (Commomeealth of Nations) दोनों का सदस्य है। हालांकि इनकी सदस्यता भारत की संप्रभुता पर कोई प्रभाव नहीं डालती है।

सभारतीय संविधान किसी विशेष आर्थिक व्यवस्था के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है। राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के अनुसार राज्य को यह परामर्श दिया गया है कि वह उत्पादन के साधनों और सम्पत्ति के स्वामित्व का इस प्रकार नियंत्रण करे कि अधिक से अधिक जन कल्याण हो और यह भी ध्यान रखे कि "आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे कि धन एवं उत्पादन के साधनों का एकत्रीकरण न हो।" 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा 'समाजवाद' शब्द की प्रस्तावना में शामिल करके लोकतांत्रिक समाजवाद को राष्ट्र का लक्ष्य घोषित किया गया। जनता पार्टी ने भी 1977 में लोकतांत्रिक समाजवाद को अपना आदर्श घोषित किया था, हालांकि 1991 में भारत द्वारा उदारीकरण एवं निजीकरण को अपना लिया गया।

पहले '**धर्मनिरपेक्ष' शब्द** भारतीय संविधान में नहीं था, किन्तु संविधान का उद्देश्य धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करना ही था। यह बात तब कही जाती थी जब संविधान में 42वां संशोधन नहीं हुआ था। इस संशोधन ने सविधान की प्रस्तावना में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द जोड़कर संविधान के उद्देश्यों को और अधिक स्पष्ट कर दिया। धर्मनिरपेक्ष राज्य वह होता है, जिसका अपना कोई धर्म नहीं होता और जो धार्मिक विश्वास के मामलों में तटस्थता की नीति का पालन करता है। ऐसा राज्य धर्म के आधार पर नागरिकों के साथ भेदभाव नहीं करता है।

भारत एक **लोकतान्त्रिक राज्य** है। इसका शासन स्वयं जनता द्वारा अथवा उसके द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा संचालित होता है। यहाँ सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों का अन्तिम निर्णय जनता की इच्छानुसार होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि जनता यह समझे कि उसके चुने हुए प्रतिनिधि ठीक से कार्य नहीं कर रहे हैं, तो वह अगले चुनावों में उनको हटाकर उनके स्थान पर नए प्रतिनिधि चुन सकती है।

संविधान में भारत को '**गणतन्त्र**' कहा गया है। 'गणतन्त्र' शब्द का प्रयोग एक विशेष अर्थ में किया जाता है। लोकतान्त्रिक राज्य का प्रधान वंशानुगत राजा भी हो सकता है और जनता द्वारा निर्वाचित व्यक्ति भी किंतु लोकतान्त्रिक गणतन्त्र का प्रधान जनता द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित व्यक्ति ही हो सकता है। ब्रिटेन लोकतंत्र होते हुए भी गणतंत्र नहीं है, क्योंकि वहाँ राज्य का अध्यक्ष सम्राट है जब कि भारत में राज्य का अध्यक्ष राष्ट्रपति है, जो पाँच वर्ष के लिए चुना जाता है।

5. मौलिक अधिकार (Fundamental Rights)- मौलिक अधिकार लोकतांत्रिक संविधान की मुख्य विशेषता होते हैं। भारतीय संविधान में नागरिकों के ऐसे मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है, जिनका हनन न्यायालयों द्वारा दण्डनीय है। संविधान के तीसरे भाग में अनुच्छेद 12 से लेकर 35 तक छः मौलिक अधिकारों समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, सांस्कृतिक एवं शिक्षा संबंधी अधिकार और संवैधानिक उपचारों का अधिकार का उल्लेख किया गया है। पहले सम्पत्ति का अधिकार नागरिकों का एक मौलिक अधिकार था, किन्तु 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा इसे मौलिक अधिकारों की श्रेणी से निकालकर कानूनी अधिकार का दर्जा दे दिया गया। न्यायपालिका को इन अधिकारों का संरक्षक बनाया गया है, किन्तु ये अधिकार पूर्णतः असीमित या अनियंत्रित नहीं है, क्योंकि स्वयं संविधान द्वारा इन पर अनेक प्रतिबन्ध लगाए गए है।

6. मौलिक कर्त्तव्य (Fundamental Duties)- भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के साथ-साथ मौलिक कर्तव्यों का वर्णन भी गया है। हालांकि मूल सविधान में इन कर्तव्यों का समावेश नहीं था, किन्तु 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा संविधान के चौथे भाग में 4A खण्ड जोड़ा गया, जिसमें वर्तमान में नागरिकों के 11 मूल कर्त्तव्यों को शामिल किया गया। इन मूल कर्तव्यों में संविधान का पालन करना और उसके आदर्शों एवं संस्थाओं, राष्ट्रीय ध्वज एवं राष्ट्रीय गान का आदर करना, भारत की एकता एवं अखण्डता को पुष्ट करना और उसकी रक्षा करना, आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करना, सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करना, हिंसा का परित्याग करना, बच्चों को शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाना आदि शामिल है।

7. राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy) — भारतीय संविधान के चौथे भाग में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है। नीति-निर्देशक सिद्धांतों की व्यवस्था भारतीय संविधान की एक अनोखी विशेषता है, क्योंकि आयरलैंड के संविधान को छोड़कर विश्व के किसी भी संविधान में इस प्रकार की व्यवस्था देखने को नहीं मिलती है। ये सिद्धांत भारतीय संविधान का मूलभूत तत्व हैं। इन सिद्धांतों को लागू करना केन्द्र एवं राज्य सरकारों का कर्तव्य है। इन सिद्धांतों के द्वारा संविधान उस सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को लागू करने का प्रयास करता है, जिसे संविधान निर्माता स्थापित करना चाहते थे। इनका उद्देश्य भारत में कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है।

8. सुदृढ़ केन्द्र-युक्त संघात्मक राज्य (Federal System with Strong Centre) - भारतीय संविधान संयुक्त गा अमेरिका के संविधान की भांति संघात्मक है। यद्यपि भारतीय संविधान में 'संघ' (Federation) शब्द के स्थान पर 'राज्यों का संघ' (Union of States) शब्दावली का प्रयोग किया गया है किन्तु इसमें संघात्मक शासन के समस्त लक्षण विधमान हैं।

वास्तव में संविधान निर्माता केन्द्र सरकार को इतना मजबूत बना देना चाहते थे कि शासन प्रणाली के द्वैध होते हुए भी आवश्यकता के समय तथा आपातकालीन परिस्थितियों में देश की एकता को कोई खतरा पैदा ना हो। यही नहीं, केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से संविधान में कुछ ऐसे उपबंधों को स्थान दिया गया है, जो साधारणतः एकात्मक व्यवस्था की विशेषताए हैं; जैसे-केन्द्र द्वारा राज्य प्रशासन में हस्तक्षेप, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति, अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था, एकीकृत्त न्यायपालिका , सम्पूर्ण देश के लिए निर्वाचन आयोग की व्यवस्था, संविधान में संशोधन के मामले में राज्यों की नाममात्र की भूमिका, राज्य विधानमंडल द्वारा पारित कुछ विधेयकों पर राष्ट्रपति की अन्तिम स्वीकृति, संकटकालीन

शक्तिव के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा राज्य प्रशासन को अपने हाथों में लेना और संसद के पास राज्यों के नाम, क्षेत्र एवं सीमाओं में परिवर्तन की शक्ति आदि। भारतीय संविधान संघात्मक है, किन्तु इसमें केन्द्र को अत्यधिक शक्तिशाली बनाया गया है।

9. संसदात्मक शासन प्रणाली (Parliamentary Form of Government)- ब्रिटेन की तरह , भारत में संसदात्मक शासन प्रणाली लागू की गयी है। यहाँ राज्य के अध्यक्ष अर्थात् राष्ट्रपति को अमेरिका के राष्ट्रपति की भांति वास्तविक शक्तियां प्राप्त नहीं है, बल्कि ब्रिटेन के सम्राट की भांति नाममात्र की शक्तियां प्राप्त है। वह साधारणतः हर मामले में मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करता है। इस प्रकार भारत में मंत्रि-परिषद् ही वास्तविक कार्यपालिका और प्रधान मंत्री वास्तविक कार्यपालिका अध्यक्ष है। भारतीय संविधान में संसदात्मक शासन प्रणाली को केन्द्र एवं राज्य, दोनों ही स्तरों पर अपनाया गया है।

10. इकहरी नागरिकता (Single Citizenship) - साधारणतः संघात्मक राज्य में दोहरी नागरिकता पायी जाती है- संघ की नागरिकता और (11) इसके अवयवी राज्यों की नागरिकता। अमेरिका एवं स्विट्जरलैंड के संविधानों में दोहरी नागरिकत की व्यवस्था की गयी है जब कि कनाडा एवं बर्मा के (म्यांमार) संविधानों में एकल अथवा इकहरी नागरिकता की। भार में लोगों को केवल संघ की नागरिकता प्राप्त है; राज्यों की नागरिकता नहीं। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने संविधान सभा कहा था "पूरे भारत के लिए एक नागरिकता है। यह भारतीय नागरिकता है। राज्य नागरिकता की कोई व्यवस्थ नहीं है। प्रत्येक भारतीय नागरिक को, चाहे वह किसी भी राज्य का रहने वाला हो, एक प्रकार की नागरिकता क अधिकार प्राप्त है। राज्य भारतीय क्षेत्र के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को कानून की दृष्टि से समानता और कानू द्वारा समान सुरक्षा देने से इनकार नहीं करता है।"

11. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise)- प्रो, श्रीनिवास ने लिखा है, "कि भी प्रकार की अर्हता (Qualification) से रहित वयस्क मताधिकार का सूत्रपात करके संविधान सभा ने अत्यन साहस एवं निष्ठा का कार्य किया है।" यह भारतीय संविधान की एक क्रांतिकारी एवं परम्परागत विशेषता है। भारत शास अधिनियम 1935 ने केवल 14 प्रतिशत जनसंख्या को मताधिकार प्रदान किया था कितु भारतीय संविधान द्वारा सभी प्रकार अहंताओं को समाप्त कर दिया गया। भारत में 21 वर्ष की आयु से अधिक सभी वयस्क नागरिकों को मतदान का अधिकार दिया गया था, लेकिन 61वें संशोधन अधिनियम (1989) द्वारा 21 वर्ष की आयु को घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया। इसी के परिणामस्वरूप भारतीय मतदाताओं की संख्या 96 करोड़ को पार कर चुकी है।

12. संयुक्त चुनाव प्रणाली (Joint Electorate System)- भारतीय शासन अधिनियम 1909 के अन्तर्गत देश में साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली लागू की गयी थी जिसके अन्तर्गत मुस्लिम समुदाय के लिए विधानमंडलों में सीटें आरक्षित की गयी थीं। इस अधिनियम में यह व्यस्था की गयी थी कि मुस्लिम समुदाय के लिए आरक्षित सीट पर उसी सम्प्रदाय का उम्मीदवार चुनाव लड़ सकेगा और उसके निर्वाचन में उस समुदाय के व्यक्ति ही अपने मताधिकार का प्रयोग करेंगे; अन्य समुदायों के व्यक्ति नहीं। किन्तु भारतीय संविधान में इस व्यवस्था को समाप्त करके संयुक्त निर्वाचन प्रणाली को लागू किया गया है। अब प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए मतदाताओं की एक संयुक्त सूची तैयार की जाती है। इस सूची में मतदाताओं के नाम अंकित करते समय धर्म एवं जाति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता है। यहाँ तक कि लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं के लिए अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों के लिए भी मतदाताओं की एक ही सूची तैयार की जाती है और सभी मतदाता उस निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को अपना मत देते हैं।

13. न्यायपालिका की सर्वोच्चता एवं संसद की सर्वोच्चता में तालमेल (Harmony between the Supremacy of Judiciary and that of Parliament) — भारतीय संविधान को एक अन्य विशेषता यह है कि यह ब्रिटेन की संसदीय प्रभुसत्ता एवं अमेरिका को न्यायिक सर्वोच्चता में सामंजस्य स्थापित करता है। भारतीय संसद को कानून निर्माण के व्यापक अधिकार प्राप्त है. किन्तु इसके साथ ही न्यायपालिका को संसद द्वारा निर्मित कानूनों की संवैधानिकता की जाँच करने का अधिकार भी दिया गया है। साथ ही संसद को भी यह भी अधिकार है कि वह आवश्यकतानुसार न्यायालयों की सीमा एवं अधिकारों को निर्धारित कर सके। इस प्रकार भारतीय संविधान न तो ब्रिटिश संविधान की भांति पूर्णतः संसदीय सम्प्रभुता को स्वीकार करता है और न ही अमेरिका के संविधान की भांति न्यायपालिका की सर्वोच्चता को वरन् यह दोनों पद्धतियों के मध्य का मार्ग अपनाता है। अशोक चन्द्रा के शब्दों में, "भारतीय संविधान संसदीय सर्वोच्चता और न्यायपालिका की सर्वोच्चता के बीच से गुजरता है।" डॉ. डी.डी. बसु का भी यही मत है। उनके मतानुसार, "भारतीय संविधान ने अद्भुत ढंग से अमेरिकी

न्यायालय की सर्वोच्चता के सिद्धांत एवं इंग्लैंड की संसदीय सम्प्रभुता के सिद्धांत के मध्य का मार्ग अपनाया है।" भारत में वचनबद्ध न्यायपालिका (Committed Judiciary) की अवधारणा को नहीं अपनाया गया है। यहाँ न्यायपालिका को सरकार के नियंत्रण से मुक्त रखा गया है. जिससे कि वह निष्पक्ष रूप से अपने कार्यों का निष्पादन कर सके।

14. आपातकालीन शक्तियां (Emergency Powers)- जर्मनी के वाइमर संविधान की भांति भारत के संविधान में आपातकालीन शक्तियों की व्यवस्था की गयी है। भारत के संविधान में तीन प्रकार के आपातकालों का उल्लेख किया गया हैं। संविधान के अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत युद्ध , बाहरी आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह की स्थिति में अथवा इसकी आशंका को देखते हुए राष्ट्रपति सम्पूर्ण देश में अथवा इसके किसी भाग में राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा कर सकता है। अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति राज्य में संवैधानिक तंत्र के विफल होने की स्थिति में राज्य सरकार को भंग करके राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है। अनुच्छेद 360 के अन्तर्गत राष्ट्रपति देश में वित्तीय संकट उत्पन्न होने पर आपातकाल की घोषणा कर सकता है।

15. स्थानीय शासन को संवैधानिक मान्यता (Constitutional Recognition to Local Governments)- मूल संविधान में स्थानीय शासन संस्थाओं को सम्मिलित नहीं किया गया था. किन्तु स्थानीय स्तर पर लोकतंत्र की आवश्यकता की अनुभव करते हुए संविधान में 1992 में 73वें एवं 74वें संशोधन किए गए। 73वें संशोधन अधिनियम द्वारा पंचायती राज संस्थाओं- ग्राम पंचायत, पंचायत समिति एवं जिला परिषद् और 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा नगरपालिकाओं , नगर पंचायत, नगर परिषद एवं नगर निगम को संविधान में शामिल करके इन्हें संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

16. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान (Special Provisions for Scheduled Castes, Scheduled Tribes and Backward Classes)- अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों के विकास के लिए संविधान में कुछ विशेष प्रावधानों की व्यवस्था की गयी है। संसद एवं राज्य विधानमंडलों में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए कुछ सीटें आरक्षित की गयी हैं। 104वें संशोधन अधिनियम (2019) द्वारा इन वर्गों के लिए सीटों के आरक्षण की अवधि 2030 तक बढ़ा दी गयी है। प्रारम्भ में लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं में सीटों के आरक्षण की यह व्यवस्था 10 वर्ष के लिए की गयी थी, किन्तु इसकी 10-10 वर्षों के लिए लगाता बढ़ाया जाता रहा। इसी प्रकार से सरकारी सेवाओं में भी अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों के लिए अधिकतम 50 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने की व्यवस्था संविधान द्वारा की गयी है। वर्तमान में लोक सभा में अनुसूचित जातियों के लिए 84 सीटें एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए 47 सीटें आरक्षित है।

17. कल्याणकारी राज्य की स्थापना (Establishment of Welfare State)— भारतीय संविधान का उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। संविधान की प्रस्तावना में नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय प्रदान करने की बात कही गयी है। भारतीय संविधान मानव द्वारा निर्मित भेदभावों एवं असमानताओं को मिटाता है। संविधान में राजनीतिक न्याय के साथ-साथ सामाजिक एवं आर्थिक न्याय पर भी बल दिया गया है। स्त्रियों एवं पुरुषों को आजीविका के साधन प्राप्त करने का अधिकार, जन-साधारण के कल्याण के लिए धन एवं उत्पादन के साधनों के केन्द्रीकरण पर नियन्त्रण, पुरुषों एवं महिलाओं को समान कार्य के लिए समान वेतन, आदि संविधान के ऐसे प्रमुख उपबन्ध है, जिनका उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है।

18. अन्तर्राज्यीय परिषद् (Inter-State Council)- संविधान के अनुच्छेद 263 के द्वारा राष्ट्रपति को अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना को शक्ति प्रदान की गयी है। अपनी इस शक्ति का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति ने 28 मई, 1990 को एक अध्यादेश जारी करके अन्तररर्राज्यीय परिषद् की स्थापना की। इस परिषद् का अध्यक्ष प्रधान मंत्री होता है और इसमें केबिनेट स्तर के छः मंत्री, सभी राज्यों के मुख्य मंत्री, संघीय क्षेत्रों के मुख्य मंत्री अथवा प्रशासक शामिल होते हैं। इस परिषद् का मुख्य कार्य राज्यों के मध्य उत्पन्न विवादों की जांच-पड़ताल करना और इनके विषय में सरकार को परामर्श देना है। वस्तुतः अन्तर्राज्यीय परिषद् एक परामर्शदात्री संस्था है, जिसकी सिफारिशें मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं है।

19. कुछ स्वतंत्र निकायों का प्रावधान (Provision for Some Independent Agencies)— भारतीय संविधान कुछ

स्वतंत्र निकायों की स्थापना की व्यवस्था भी करता है। उदाहरण के लिए चुनाव आयोग संघ लोक सेवा आयोग और राज्यों के लिए राज्य लोक सेवा आयोग, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General of India) और महा न्यायवादी (Attorney General) आदि ऐसे ही स्वतंत्र निकाय है।

20. दल-बदल विरोधी प्रावधान (Provisions for Anti-Defection)— भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में दल-बदल की बीमारी उत्पन्न हो गयी थी, जो भारतीय लोकतंत्र पर दुष्प्रभाव डाल रही थी। इस बीमारी पर रोक लगाने के लिए 1985 में संविधान में 52वां संशोधन किया गया किन्तु तब भी दल-बदल की बीमारी को पूर्ण रूप से काबू नहीं किया जा सका, क्योंकि इस संशोधन में की गयी व्यवस्था के अन्तर्गत किसी विधायक दल के 1/3 सदस्य अलग होकर पृथक विधायक दल का निर्माण कर सकते थे। इसीलिए 52वें संशोधन अधिनियम के इस दोष को दूर करने के लिए 2000 में संविधान में 91वां संशोधन किया गया। इस संशोधन के द्वारा दल-बदल पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने के उद्देश्य से विधायक दल के 1/3 सदस्यों के अलग होने की व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। इस संशोधन के द्वारा दल-बदल करने वाले जन प्रतिनिधियों की सदस्यता समाप्त करने की व्यवस्था भी की गयी है।

21. द्वि-सदनीय विधानपालिका (Bi-Cameral Legislature)- ब्रिटेन की तरह भारत में संविधान द्वारा द्वि-सदनीय विधानपालिका की व्यवस्था की गयी है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 में स्पष्ट किया गया है कि संसद के दो सदन (राज्य सभा एवं लोक सभा) होंगे। राज्य विधानमंडल के भी दो सदन हैं-विधान सभा एवं विधान परिषद्।

22. कानून का शासन (Rule of Law)- ब्रिटेन के संविधान की तरह भारतीय संविधान द्वारा भी देश में 'कानून के शासन' की स्थापना की गयी है। संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत कानून की दृष्टि में सभी व्यक्ति समान हैं। अन्य शब्दों में, यहाँ कानून के द्वारा सभी के साथ समानता का व्यवहार किया जाता है, क्योंकि यहाँ कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है। इसी प्रकार अनुच्छेद 20 के अनुसार किसी व्यक्ति को कानून का उल्लंघन करने पर ही दण्डित किया जा सकता है और वह भी तब जब उसने अपराध के समय लागू किसी कानून का उल्लंघन किया हो।

23. प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की व्यवस्था (Provision for Administrative Tribunals)-42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा संविधान में नया भाग XIA-V जोड़ते हुए प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की व्यवस्था की गयी। संविधान का यह नवीन भाग अनुच्छेद 323-A एवं 323-B पर आधारित है। अनुच्छेद 323-4 के द्वारा संसद को केन्द्र, राज्य एवं स्थानीय सरकार के नियंत्रण के अधीन सार्वजनिक पदों पर कार्य करने वाले पदाधिकारियों की नियुक्ति एवं सेवा-शतों के मामलों की सुनवाई के लिए प्रशासकीय न्यायाधिकरण स्थापित करने के शक्ति प्रदान की गयी है। अनुच्छेद 323-B के अन्तर्गत राज्य विधानमंडल ऐसे मामलों में प्रशासकीय न्यायाधिकरण स्थापित कर सकते हैं. जिनके बारे में उन्हें कानून बनाने को शक्ति प्राप्त है।

भारतीय संविधान विश्व का सर्वाधिक विशाल संविधान (Indian Constitution: The Most Comprehensive Constitution of the World)

आम तौर पर, यह माना जाता है कि देश का संविधान संक्षिप्त होना चाहिए और उसमें प्रशासनिक बातों को कम-से-कम स्थान दिया जाना चाहिए। यही कारण है कि भारतीय संविधान की तुलना में विश्व के अन्य देशों के संविधान आकार में छोटे हैं। उदाहरण के लिए अमेरिका के सविधान में सात अनुच्छेद, आस्ट्रेलिया के संविधान में 128 अनुच्छेद, चीन के नवीन संविधान में 138 अनुच्छेद और कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद शामिल हैं। इसके विपरीत, भारत का संविधान विश्व का सर्वाधिक विशाल सविधान है। यह 22 भागों में विभक्त है और इसमें 395 अनुच्छेदों के अलावा 12 अनुसूचियां एवं तीन परिशिष्ट शामिल हैं।

यहाँ प्रश्न यह पैदा होता है कि भारतीय संविधान इतना विस्तृत या विशाल क्यों है। इसके विशाल होने के अवश्य ही कुछ कारण होंगे। भारतीय संविधान के विस्तृत होने के मुख्य कारण निम्नलिखित है-

1. सैकड़ों वर्षों की दासता के बाद भारत अगस्त 1947 में स्वतंत्र हुआ था, इसलिए यहाँ लोकतांत्रिक परम्पराओं का पूर्ण

अभाव था। इतना ही नहीं, भारत की धर्मपरायण, भाग्यवादी एवं अंधविश्वासी जनता में इतनी राजनीतिक चेतना विकसित नहीं हुई थी कि यहाँ उस लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को सफल बनाया जा सके जिसे पश्चिम में अपनी जड़ें जमाने में लम्बा समय लगा था। ब्रिटेन में स्वस्थ राजनीतिक परम्पराएं (Conventions) विकसित हो चुकी थी और वहाँ अधिकतर शासन संचालन इन्हीं परम्पराओं के आधार पर किया जाता था। अमेरिकी लोग भी संविधान के अनुसार, शासन संचालन के अभ्यस्त हो चुके थे, किन्तु भारत इन दोनों से भिन्न था। अतः यहाँ छोटी-मोटी सभी बातों का संविधान में उल्लेख किया जाना जरूरी था।

2. संविधान द्वारा भारत में संघात्मक व्यवस्था लागू की गयी है। संघात्मक व्यवस्था में दोहरी शासन प्रणाली होती है. क्योंकि इसमें केन्द्र एवं राज्यों में अलग-अलग सरकारें होती हैं। संघात्मक व्यवस्था में केन्द्र एवं राज्यों की शक्तियों को परिभाषित किया जाता है। भारत में केन्द्र एवं राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया है। इसके लिए तीन सूचियां संघ सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची बनायी गयी हैं। भारतीय संविधान में संधीय सरकार के तीनों अंगों संसद, मंत्रि-परिषद एवं सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों और इनके पारस्परिक संबंधों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसी प्रकार संविधान में राज्य सरकार के तीनों अंगों और उनके संघ सरकार के अंगों के साथ संबंधों की भी व्याख्या की गयी है। इस कारण भी संविधान निर्माताओं को भारतीय संविधान के आकार में वृद्धि करनी पड़ी।

3. भारतीय संविधान के तीसरे भाग में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गयी है। इन मौलिक अधिकारों का वर्णन अनुच्छेद 12 से लेकर 35 तक किया गया है। स्पष्ट है कि भारतीय संविधान के 24 अनुच्छेदों में मौलिक अधिकारों को समाहित किया गया है, जब कि अमेरिका का सम्पूर्ण सविधान सात अनुच्छेदों तक ही सीमित है। ऐसा भारत की विशेष सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के दृष्टिगत किया गया है। उदाहरण के लिए भारत में सदियों से चली आ रही छुआछूत जैसी कुरीतियों को रोकने की संवैधानिक व्यवस्था की जानी जरूरी थी।

4. भारतीय संविधान में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों को वर्णन किया गया है। संविधान में अनुच्छेद 36 से लेकर 51 तक राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। अन्य शब्दों में, संविधान के 16 अनुच्छेद इन्हों को समर्पित है। यद्यपि राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए सरकार बाध्य नहीं है, फिर भी इन्हें संविधान में शामिल किया गया है और ऐसा करके संविधान के आकार में वृद्धि की गयी है।

5. भारत एक ऐसा देश है, जहां विभिन्न धर्मों के मानने वाले एवं विभिन्न भाषाएं बोलने वाले लोग रहते हैं। इन सभी के हितों की रक्षा करना आवश्यक था अर्थात इनके हितों की रक्षा के लिए संवैधानिक व्यवस्था की जानी जरूरी थी। इनके हितों की रक्षा के लिए मौलिक अधिकारों में धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार और सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार शामिल किए गए हैं। साथ ही, इनके हितों की रक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के आयोग स्थापित करने की व्यवस्था भी की गयी है।

6. संविधान सभा में अनेक ऐसे सदस्य थे, जो कभी-न-कभी ब्रिटिश सरकार के हाथों प्रताड़ित हुए थे। वे नहीं चाहते थे कि सरकार को मनमानी करने की छूट दी जाए। वे चाहते थे कि सरकार की शक्तियों एवं अधिकारों का समावेश संविधान में किया जाए। इसलिए भारतीय संविधान में छोटी-छोटी बातों का भी उल्लेख किया गया है ताकि सरकार निरंकुश न हो पाए।

7. भारतीय संविधान में समय-समय पर जो संशोधन हुए हैं, उन्होंने भी सविधान के कलेवर में वृद्धि की है। उदाहरण के लिए 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा संविधान में नागरिकों के मौलिक कर्तव्य जोड़े गए। इसी प्रकार 52वें संशोधन अधिनियम (1985) द्वारा 10वीं अनुसूची, 73वें संशोधन अधिनियम (1992) द्वारा 11वीं अनुसूची और 74वें संशोधन अधिनियम (1992) द्वारा 12वीं अनुसूची संविधान में जोड़ी गयी। ठीक इसी प्रकार 86वें संशोधन अधिनियम (2002) द्वारा संविधान में अनुच्छेद 21-4 जोड़ते हुए शिक्षा को मौलिक अधिकारों की सूची में शामिल किया गया।

8. संविधान में कुछ ऐसी संस्थाओं को भी शामिल किया गया है, जिनका सम्बन्ध लोक प्रशासन से है। संविधान भें संघ लोक सेवा आयोग एवं राज्य लोक सेवा आयोगों, चुनाव आयोग, वित्त आयोग, महा न्यायवादी आदि को शामिल करने से भी इसके आकार में वृद्धि हुई है।

9. संविधान निर्माताओं ने विश्व के संविधानों का अध्ययन किया और उनमें मौजूद अनेक उपबन्धों को भारतीय संविधान में

शामिल किया। अन्य शब्दों में, संविधान निर्माताओं ने किसी एक शासन प्रणाली का अनुकरण करके अनेक शासन-प्रणालियों का अनुकरण किया है; जैसे अमेरिका की संघात्मक व्यवस्था और ब्रिटेन की संसदात्मक शासन प्रणाली दोनों को संविधान का अंग बनाया गया है। यहाँ तक कि परस्पर विरोधी बातों को भी संविधान में शामिल किया गया है; जैसे-ब्रिटेन की संसदीय सर्वोच्चता और अमेरिका की न्यायिक सर्वोत्त्वता के परस्पर विरोधी सिद्धान्त और मौलिक अधिकार एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत। परस्पर विरोधी सिद्धान्त के अपनाने के कारण यहाँ अनेक संवैधानिक विवादों का जन्म हुआ, जिनके हल के लिए सरकार को संशोधन अधिनियमों का सहारा लेना पड़ा।

भारतीय संविधान के विशाल आकार की अनेक विद्वानों द्वारा आलोचना की गयी है। इनका कहना है कि किसी भी देश के लिए संक्षिप्त संविधान ठीक रहता है, क्योंकि बदलती हुई परिस्थितियों के संदर्भ में इसे आसानी से बदला जा सकता है। इनका यह भी मानना है कि विशाल संविधान जटिल होता है, जिसे वकील ही ठीक से समझ सकते हैं; आम व्यक्ति नहीं। लेकिन इनकी यह धारणा सही प्रतीत नहीं होती है। इस संदर्भ में प्रो. एम.वी. पायली का कहना है, "हमारे संविधान के विशाल आकार का मुकदमेबाजी से सीधा संबंध नहीं है। संविधान-निर्माताओं ने बहुत सोच-विचार के पश्चात् भारतीय संविधान का निर्माण किया है। विशालता भारतीय संविधान का अवगुण नहीं, बल्कि गुण है।" इस विषय में, एच.वी. कामथ लिखते हैं, "हमें इस बात का गर्व है कि हमारा संविधान सम्पूर्ण विश्व का सर्वाधिक विशाल संविधान है।"

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए? (Describe in brief the salient features of the Indian Constitution.)

2. भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए। (Describe the salient features of the Indian Constitution.)

3. "भारतीय संविधान विश्व का सर्वाधिक विस्तृत संविधान है।" इस कथन पर टिप्पणी कीजिए। ("Indian Constitution is the lengthiest Constitution of the world." Comment on this statement.)

4. भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करो।

(Describe the main features of the Indian Constitution.)

मौलिक अधिकार [Fundamental Rights]

भारतीय संविधान के तीसरे भाग में मौलिक अधिकारों को शामिल किया गया है। भारतीय संविधान के 24 अनुच्छेदों (अनुच्छेद 12 से 35 तक) में मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गयी है।

मौलिक अधिकारों को संविधान में शामिल करने के कारण (Reasons for Inclusion of Fundamental Rights in the Constituion)

मौलिक अधिकार व्यक्ति के वे अधिकार होते हैं, जो उसके शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए अति आवश्यक होते हैं और जिनको संविधान में शामिल करके समुचित न्यायिक संरक्षण प्रदान किया जाता है, ताकि विधानपालिका एवं कार्यपालिका या अन्य किसी संस्था द्वारा इनका उल्लंघन न किया जा सके। इसके अलावा, मौलिक अधिकार न्यायसंगत होते हैं. जिसका अर्थ यह है कि इनके पीछे न्यायपालिका की शक्ति होती है और वह इनकी रक्षा के लिए आवश्यक कदम उठा सकती है। मौलिक अधिकारों के अर्थ से ही स्पष्ट है कि इनको संविधान में शामिल करना क्यों जरूरी है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है. मौलिक अधिकारों को संविधान में शामिल करने के कुछ विशेष कारण रहे हैं; जैसे-

1. अन्य देशों का प्रभाव (Impact of Other Countries)- भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों को शामिल करने का एक कारण यह भी रहा है कि संविधान निर्माता अन्य देशों के संविधानों से प्रभावित थे। भारत से पहले विश्व के अनेक देश मौलिक अधिकारों को अपने संविधानों में शामिल कर चुके थे। अमेरिका अपने संविधान में प्रथम 10 संशोधन करके इन अधिकारों को संविधान का अभिन्न अंग बना चुका था। इसके अलावा, फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड, जापान, चीन आदि देश भी मौलिक अधिकारों को अपने संविधानों में शामिल कर चुके थे। संविधान निर्माताओं ने अनेक देशों के संविधानों का अध्ययन करने के उपरान्त मौलिक अधिकारों को भारतीय संविधान में शामिल करने का निर्णय लिया।

2. अतीत का अनुभव (Past Experience)- भारतीय संविधान का निर्माण करने वाली संविधान सभा के अधिकांश सदस्य ऐसे थे, जो स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान ब्रिटिश सरकार द्वारा कभी-न-कभी प्रताड़ित अवश्य किए गए थे। ये लोग भारत में एक ऐसी शासन प्रणाली स्थापित करना चाहते थे, जो नागरिकों के अधिकारों एवं स्वतन्त्रता का हनन न कर पाए। इस बात को ध्यान में रखते हुए इन्होंने मौलिक अधिकारों को संविधान में शामिल करके इनके संरक्षण की समुचित व्यवस्था की। संविधान सभा द्वारा जिन विभिन्न समितियों का गठन किया गया था, उनमें से एक समिति मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित थी।

3. लोकतन्त्र के लिए अनिवार्य (Compulsory for Demoracy)- भारत लम्बे समय तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद का शिकार रहा था इसलिए यहाँ लोकतान्त्रिक परम्पराओं का विकास नहीं हो पाया था। लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली को सफल बनाने के लिए लोकतान्त्रिक परम्पराओं का विकास होना आवश्यक है। भारत में लोकतान्त्रिक परम्पराओं का विकास नहीं हुआ था। ऐसे में मौलिक अधिकारों को सरकार के भरोसे छोड़ना ठीक न था क्योंकि वह इनका हनन कर सकती थी। इस विषय में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने लिखा है, "इन परिस्थितियों में विधानपालिका पर प्रशासन का रूप निर्धारित करने के बारे में विश्वास न करना बुद्धिमानी है। इनको (मौलिक अधिकारों) संविधान में शामिल करने का यही औचित्य है।"

4. सत्तारूढ़ दल के अत्याचारों से सुरक्षा (Protection from the Tyranny of Ruling Party) संविधान- निर्माता इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे कि सत्तारूढ़ दल सत्ता के नशे में जनता पर अत्याचार करने लगता है। वे जनता की सत्तारूढ़ दल के अत्याचारों से रक्षा करना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने सविधान में मौलिक अधिकारों का समावेश किया। अन्य शब्दों में, यदि मौलिक अधिकारों को कानूनी अधिकार का दर्जा प्राप्त होता, तो सत्तारूढ़ दल इनमें आसानी से परिवर्तन कर सकता था। अतः सत्तारूढ़ दल द्वारा मौलिक अधिकारों के दुरुपयोग को रोकने की दृष्टि से इन्हें संविधान में शामिल करना अनिवार्य था और संविधान निर्माताओं ने ऐसा ही किया।

5. अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा (Safeguard of the Interests of Minorities)- भारत में मौलिक अधिकार अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने का कार्य करते हैं, क्योंकि ये इनके हितों को न्यायिक संरक्षण प्रदान करते हैं। आज भारत में अल्पसंख्यक अपनी भाषा, लिपि एवं संस्कृति को कायम रख सकते हैं और अपनी शिक्षण संस्थाएँ भी स्थापित कर सकते हैं। सरकार ऐसी शिक्षण संस्थाओं के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं कर सकती है।

6. कानून के शासन की स्थापना (Establishment of Rule of Law)— भारत में मौलिक अधिकार कानून के शासन की स्थापना करते हैं। संविधान के अनुच्छेद 14 में स्पष्ट किया गया है कि सभी व्यक्ति कानून के समक्ष समान है अर्थात बिना इस बात पर ध्यान दिए कि व्यक्ति का सामाजिक दर्जा क्या है। कानून सभी के साथ समान व्यवहार करता है।

7. न्याय एवं जीवन की सुरक्षा की गारण्टी (Guarantee for Justice and Security of Life)- मौलिक अधिकार नागरिकों को न्याय एवं जीवन की सुरक्षा की गारण्टी प्रदान करते है। क्योंकि इनके रहते हुए व्यक्ति के साथ न तो किसी प्रकार का अन्याय हो सकता है और न ही उसके जीवन को किसी प्रकार का कोई खतरा हो सकता है। संविधान के अनुच्छेद 21 के द्वारा नागरिकों को जीवन एवं दैहिक स्वतंत्रता की सुरक्षा दी गयी है।

मौलिक अधिकारों की मुख्य विशेषताएँ (Main Characteristics of Fundamental Rights)

मौलिक अधिकारों की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. विस्तृत अधिकार-पत्र (Detailed Charter)- भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का विस्तार से वर्णन किय गया है। यहाँ तक कि 24 अनुच्छेदों (अनुच्छेद 12 से 35) वाला संविधान के तृतीय भाग में मौलिक अधिकार का वर्णन किया गया है। मौलिक अधिकारों-संबंधी कुछ अनुच्छेद तो विशेष रूप से लंबे हैं; जैसे-अनुच्छेद 19 में न केवल छ: प्रकार की स्वतन्त्रताओं का, बल्कि इन पर लगाए गए प्रतिबन्धों का भी वर्णन किया गया है। वस्तुतः मौलिक अधिकारों की पूर्ण एवं स्पष्ट व्याख्या करने के प्रयास में ही यह अधिकार पत्र इतना विस्तृत हो गया है।

2. दोहरी प्रकृति (Dual Nature)— भारतीय संविधान में वर्णित समस्त मौलिक अधिकारों को दो भागों विभक्त किया जा सकता है— सकारात्मक अधिकार एवं नकारात्मक अधिकार। जहाँ एक ओर सकारात्मक अधिकार सरकार को कुछ कार्य करने के लिए निर्देश देते हैं, वहीं दूसरी ओर नकारात्मक अधिकार राज्य को कुछ कार्य करने से मनाही करते हैं। अनुच्छेद 16 के तहत राज्य एक ओर अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष व्यवस्था करता है, तो दूसरी ओर अनुच्छेद 14 के तहत राज्य नागरिकों को कानून के समक्ष समानता के अधिकार से वंचित नहीं कर सकता है।

3. सभी को समान रूप से उपलब्ध नहीं (Not Equally Available to All)- भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों की एक विशेषता यह है कि ये सभी व्यक्तियों को समान रूप से उपलब्ध नहीं है. क्योंकि ये भारती नागरिकों एवं विदेशियों में पर्याप्त भेद करते हैं। एक ओर कुछ मौलिक अधिकार भारतीय नागरिकों एवं विदेशियों एवं को उपलब्ध हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ मौलिक अधिकार केवल भारतीय नागरिकों को ही प्रदान किए गए हैं। उदाहरण के लिए अनुच्छेद 14 में वर्णित 'कानून के समक्ष समानता' एवं 'कानून का समान संरक्षण' एवं अनुच्छेद 21 में वर्णित 'जीवन एवं दैहिक स्वतन्त्रता' के अधिकार भारतीय नागरिकों एवं विदेशियों दोनों को उपलब्ध हैं किन्तु अनुच्छेद 19 में दिए गए विभिन्न प्रकार की स्वतन्त्रताएँ केवल भारतीय नागरिकों को ही उपलब्ध हैं।

4. निरपेक्षता का अभाव (Lack of Absoluteness)- अमेरिकी संविधान की भाँति, भारतीय संविधान में निरपेक्ष व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के आदर्श को नहीं, बल्कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को सामाजिक हित में सीमित करना स्वीकार किया गया है। इस विषय में डॉ. गजेन्द्र गड़कर लिखते हैं, "संविधान में मौलिक अधिकारों को निरपेक्ष बनाने का इरादा सभी का था, यही कारण है कि संविधान में मौलिक अधिकारों के साथ-साथ, उन पर लगने वाले प्रतिबन्धों का उल्लेख भी किया गया है। राज्य इन अधिकारों को राष्ट्रीय हित, सुरक्षा, शान्ति व्यवस्था, स्वास्थ्य एवं नैतिकता के आधार पर प्रतिबन्धित लगा सकता है।

5. परिवर्तनीय (Changeable)- ये स्थायी नहीं हैं, क्योंकि संसद कभी भी संविधान में निर्दिष्ट प्रक्रिया द्वारा इनको परिवर्तित कर सकती है। डॉ. गजेन्द्र गड़कर के शब्दों में. "संविधान के अनुच्छेद 368 द्वारा संसद को प्रदान की गयी शक्ति में मौलि अधिकारों को संशोधित करने की शक्ति भी शामिल है। ये न्यायसंगत हैं किन्तु अपरिवर्तनशील नहीं। अनेक इनको, विशेषकर सम्पत्ति के अधिकार को, सरकार द्वारा संशोधित किया गया। 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा जनता पार्टी सरकार ने 'सम्पत्ति के अधिकार' को मौलिक अधिकारों की सूची से निकालकर इसे कानूनी अधिकार का दर्जा दिया था , तो 86वें संशोधन अधिनियम (2002) द्वारा शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकारों में जोड़ दिया गया।

6. अस्पष्ट (Ambiguous)- मौलिक अधिकारों की एक विशेषता है इनका अस्पष्ट होना, जो समय-समय पर संवैधानिक विवादों को जन्म देता रहता है। उदाहरण के लिए इनमें प्रयुक्त 'सार्वजनिक उद्देश्य' 'मानव शरीर का व्यापार' 'सार्वजनिक हित', 'सार्वजनिक व्यवस्था', 'नैतिकता एवं स्वास्थ्य' 'सामाजिक कल्याण' आदि शब्दों को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया है। इसके अलावा कुछ अधिकारों का बार-बार और भिन्न-भिन्न भागों में आना भी भ्रान्तियों को जन्म देता है।

7. प्राकृतिक अधिकारों का अभाव (Lack of Natural Rights)- अमेरिकी जनता के विपरीत, भारतीय जनता संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के अलावा किसी अन्य अधिकार की माँग नहीं कर सकती है। भारतीय संविधान में प्राकृतिक अधिकारों के नाम पर किसी अस्पष्ट मौलिक अधिकार की मांग की गुंजाइश नहीं है, क्योंकि इसके द्वारा छः मौलिक अधिकार ही व्यक्ति को प्रदान किए गए है। उल्लेखनीय है कि अमेरिका के संविधान में किए गए नौवें संशोधन में यह व्यवस्था की गयी है कि अमेरिकी नागरिकों को संविधान में दिए मौलिक अधिकारों के साथ-साथ उन अधिकारों से भी वंचित नहीं किया जा सकता है, जिनका संविधान में उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु भारत में ऐसा नहीं है।

8. व्यावहारिकता पर आधारित (Based on Pragmatism) - भारतीय संविधान में वणित मौलिक अधिकार कोरे सिद्धान्त नहीं है, बल्कि ये सामाजिक यथार्थ पर आधारित और सामाजिक दृष्टि से उपयोगी है। उदाहरण के लिए समानता के आदर्श को स्वीकार करते हुए भी सविधान में पिछड़े एवं दलित वगों के कल्याण की व्यवस्था की गयी है। इसी प्रकार स्वतन्त्रता के अधिकार को मान्यता देते हुए भी इस पर कई प्रतिबन्ध लगा दिए गए है, ताकि व्यक्तियों द्वारा इसका दुरुपयोग न किया जा सके।

9. आर्थिक अधिकारों का अभाव (Lack of Economic Rights)- संविधान में वर्णित मौलिक अधिकार देश में राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थापना को सुनिश्चित करते हैं; आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना को नहीं। ये नागरिकों को केवल भाषण एवं विचार -अभिव्यक्ति की, शान्तिपूर्ण इकट्ठा होने की, समुदायों या संघों के निर्माण की, भ्रमण एवं निवास की और व्यवसाय करने की स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। भूतपूर्व सोवियत संघ की भाँति ये नागरिकों को रोजगार, विश्राम, आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा आदि प्रदान नहीं करते हैं।

10. संवैधानिक संरक्षण (Constitutional Safeguard)— भारतीय संविधान द्वारा मौलिक अधिकारों को संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया है। यदि राज्य किसी व्यक्ति को उसके किसी मौलिक अधिकार से वंचित करता है, तो वह व्यक्ति इसके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय या अपने राज्य के उच्च न्यायालय में जा सकता है और अपने अधिकारों की सुरक्षा की माँग कर सकता है।

11. निलम्बन (Suspension)- संविधान निर्माता इस तथ्य से भली-भांति परिचित थे कि देश में कभी भी असामान्य परिस्थितियाँ (आपातकाल) उत्पन्न हो सकती हैं, अतः उन्होंने राष्ट्रीय हित में संविधान में व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों के निलम्बन की व्यवस्था की है। यही कारण है कि राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान अनुच्छेद 19 में वर्णित स्वतंत्रताएँ स्वतः निलम्बित हो जाती हैं। साथ ही, राष्ट्रपति अधिसूचना जारी करके अनुच्छेद 20 एवं 21 में वर्णित अधिकारों के अलावा शेष मौलिक अधिकारों के क्रियान्वयन हेतु सक्षम न्यायालय में जाने के अधिकार को भी निलम्बित कर सकता है।

12. विभिन्न पदाधिकारियों पर प्रतिबन्ध (Check on Various Officials)- अमेरिका की भाँति मौलिक अधिकार केन्द्र सरकार को ही नहीं, बल्कि उन समस्त संस्थाओं को भी प्रतिबन्धित करते हैं, जिन्हें कानून निर्माण का अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार केन्द्र सरकार, राज्य सरकारें, नगरपालिकाएँ एवं पंचायती राज संस्थाएँ सभी इनका पालन करने के लिए बाध्य हैं।

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार (Fundamental Rights in the Indian Constitution)

मूल भारतीय संविधान द्वारा नागरिकों को सात मौलिक अधिकार प्रदान किए गए थे किन्तु 44 वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की श्रेणी से निकालकर कानूनी अधिकार का दर्जा दे दिया गया। इसीलिए अब नागरिकों के पास निम्नलिखित छः मौलिक अधिकार रह गए है-

1. समानता का अधिकार (Right to Equality) - भारतीय संविधान के पांच अनुच्छेदों (अनुच्छेद 14 से 18 तक) में समानता के अधिकार का उल्लेख किया गया है। इस अनुच्छेदों में निम्नलिखित पांच प्रकार की समानताओं का उल्लेख किया गया है-

(1) कानून के समक्ष समानता (Equality before Law)- **अनुच्छेद 14** के अनुसार, "भारत के क्षेत्र में गम किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता एवं कानूनों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।" इस अनुच्छेद की शब्दावली 'कानून के समक्ष समानता' ब्रिटेन के सामान्य कानून (Common Law) से ली गयी है। इसका अर्थ यह है कि कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है। अन्य शब्दों में, किसी व्यक्ति की स्थिति अथवा दर्जा कुछ भी हो, वह कानून है के अधीन होगा। इसके विपरीत, 'कानूनों का समान संरक्षण' शब्दावली अमेरिकी संविधान से ली गयी है और इससे अभिप्रा यह है कि समान लोगों के लिए समान कानून होना चाहिए अर्थात समान लोगों के लिए समान व्यवहार किया जाना चाहिए। अन्य शब्दों में, समान परिस्थितियों

में व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए।

(ii) सामाजिक समानता (Social Equality) — **अनुच्छेद 15** के अनुसार, राज्य धर्म, नस्ल, जाति, लिंग एवं जन्म स्थान के आधारों पर किसी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं करेगा। इसका अभिप्राय यह हुआ कि नागरिकों के साथ जीवन के किसी क्षेत्र में पक्षपात नहीं किया जाएगा। इस अनुच्छेद के द्वारा यह निश्चिर किया गया है कि नागरिकों के साथ दुकानों, होटलों एवं सार्वजनिक स्थानों अर्थात् कुओं, तालाबों, स्नान घरों, सड़कों और पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा, बल्कि ये सभी के लिए खुले रहेंगे। लेकिन सरकार बच्चों एवं स्त्रियों के लिए पार्क स्नान-गृह आदि की अलग से व्यवस्था कर सकती है।

(iii) समान अवसर की समानता (Equal Opportunity)- अनुच्छेद 16 के अनुसार, सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सभी नागरिकों को समान अवसर उपलब्ध होंगे और धर्म नस्ल, जाति, लिंग, वंश, जन्म स्थान एवं निवास स्थान के आधारों या इनमें से किसी एक आधार पर पद प्राप्त करने के विषय में कोई भी नागरिक अयोग्य नहीं होगा। किन्तु इस अनुच्छेद के अंतर्गत राज्य सार्वजनिक सेवाओं हेतु आवश्यक योग्यता निर्धारित कर सकता है। इसके अलावा, संसद राज्य सेवाओं अथवा स्थानीय सेवाओं के लिए निवास स्थान को शर्त लगा सकती है। साथ ही, संसद लोक सेवाओं में सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए वर्गों के लिए कुछ स्थान आरक्षित कर सकती है।

(iv) अस्पृश्यता की समाप्ति (Abolition of Untouchability)— **अनुच्छेद 17** के द्वारा अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया है। आज किसी भी रूप में इसका आचरण निषिद्ध है। अस्पृश्यता निवारण अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत किसी भी रूप में अस्पृश्यता का लागू किया जाना दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।

(2) उपाधियों की समाप्ति (Abolition of Titles)- अनुच्छेद 18 के अंतर्गत राज्य नागरिकों को सेना अथवा शिक्षा-संबंधी उपाधियों के अतिरिक्त कोई अन्य उपाधि प्रदान नहीं कर सकता। इसके साथ ही यह भी व्यवस्था की गई है कि कोई भी नागरिक राष्ट्रपति की आज्ञा के बिना विदेशी राज्य द्वारा मिलने वाली कोई उपाधि स्वीकार नहीं कर सकता है। इस अनुच्छेद द्वारा ब्रिटिश शासन काल में दी जाने वाली उपाधियों, जैसे-राय बहादुर, राय साहब, खान साहब एवं सर आदि को प्रतिबन्धित कर दिया गया है. किन्तु सरकार राज्य के प्रति की गयी सेवाओं के उपलक्ष में व्यक्तियों को भारत रत्न, पद्मविभूषण, पद्मभूषण एवं पद्मश्री की उपाधियाँ एवं सैनिक अलंकरण प्रदान कर सकती है।

2. स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom) - भारतीय संविधान के अनुच्छेदों - 19-22 में स्वतन्त्रता के अधिकार का उल्लेख किया गया है। इन अनुच्छेदों में वर्णित स्वतन्त्रताएँ नागरिक स्वतन्त्रताएँ हैं, राजनीतिक स्वतंत्रताएँ नहीं अर्थात् ये नागरिकों की वे 'निजी स्वतन्त्रताएँ' हैं, जो उनके विकास से सम्बन्धित हैं। स्वतन्त्रता के अधिकार की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है—

(i) मूल अनुच्छेद 19 में नागरिकों को सात स्वतन्त्रताएँ प्रदान की गयी थीं. किन्तु 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा 'सम्पत्ति की स्वतन्त्रता' को समाप्त कर दिया गया, अतः अब नागरिकों को निम्नलिखित छः स्वतन्त्रताएँ प्राप्त हैं-

(क) भाषण एवं विचार-अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता (Freedom of Speech and Expression)- अनुच्छेद 19(1)-क के अन्तर्गत नागरिकों को भाषण एवं विचार-अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। प्रेस की स्वतन्त्रता भी विचारों की अभिव्यक्ति का एक साधन होने के नाते इसी स्वतन्त्रता में आती है। किन्तु भाषण एवं विचार-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अपमान , बुरे शब्द , झूठा आरोप , न्यायालय के अपमान, शिष्टाचार या सदाचार पर संकट, राज्य की सुरक्षा ,सार्वजनिक व्यवस्था और विदेशी राज्यों से मित्रतापूर्ण सम्बन्धों के हित में रोक लगाई जा सकती है।

(ख) सम्मेलन करने की स्वतन्त्रता (Freedom to Assemble)- अनुच्छेद 19(1)-ख के अन्तर्गत नागरिकों को शान्तिपूर्वक एवं बिना शस्त्रों के सभा या सम्मेलन करने की स्वतन्त्रता दी गयी है। साथ ही नागरिक जुलूस या प्रदर्शन का आयोजन भी कर सकते हैं। किन्तु नागरिकों की यह स्वतन्त्रता भी निर्वाध नहीं है. क्योंकि राज्य द्वारा देश की सम्प्रभुता एवं अखण्डता या सार्वजनिक व्यवस्था के दृष्टिगत इस स्वतन्त्रता को प्रतिबन्धित किया जा सकता है।

(ग) समुदायों, संघों या सहकारी समितियों के निर्माण की स्वतन्त्रता (Freedom to Form Association Unions or Co-operative Socities) अनुच्छेद 19(1)-ग द्वारा नागरिकों को समुदायों संघों या सहकारी समितियों के निर्माण की स्वतन्त्रता दी गयी है, किन्तु नागरिकों की यह स्वतन्त्रता भी असीमित नहीं है, क्योंकि राज्य देश की सम्प्रभुता एवं अखण्डता, सार्वजनिक व्यवस्था और नैतिकता भंग करने वाले समुदायों एवं सघों पर उचित प्रतिबन्ध लगा सकता है।

(घ) अबाध भ्रमण की स्वतन्त्रता (Freedom to Move Freely) अनुच्छेद 19(1)-घ के तहत सभी नागरिक बिना किसी प्रतिबन्ध या विशेष अधिकार पत्र के सम्पूर्ण भारत के क्षेत्र में घूम सकते हैं. किन्तु राज्य आम जनता के हितों या किसी अनुसूचित जनजाति के हितों के संरक्षण के लिए नागरिकों की इस स्वतन्त्रता को सीमित कर सकता है।

(ङ) निवास की स्वतन्नाता (Freedom to Reside and Settle) - अनुच्छेद 19(1) ङ अन्तर्गत के नागरिकों को अपनी इच्छानुसार स्थायी या अस्थायी रूप से भारत में कहीं भी बमने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। निःसंदेह भ्रमण एवं निवास की यह स्वतन्त्रता संविधान द्वारा दी गयी इकहरी नागरिकता का समर्थन करती है. किन्तु राज्य आम जनता के हितों या किसी अनुसूचित जनजाति के हितों के संरक्षण के लिए इस स्वतन्त्रता पर भी प्रतिबन्ध लगा सकता है।

(छ) व्यवसाय की स्वतंत्रता (Freedom to Practise any Profession) — अनुच्छेद 19(1)-छ द्वारा सभी नागरिकों को वृत्ति, आजीविका, व्यापार अथवा व्यवसाय की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है किन्तु राज्य आम जनता के हित में इस स्वतन्त्रता को भी सीमित कर सकता है।

(ii) अपराधों के लिए दण्ड के विषय में संरक्षण (Protection in Respect of Conviction for Offences)- संविधान के अनुच्छेद 20 के अनुसार "किसी व्यक्ति को उस समय तक अपराधी नहीं ठहराया जा सकता है, जब तक कि उसने अपराध के समय में लागू किसी कानून का उल्लंघन न किया हो।" यहाँ यह भी सुनिश्चित किया गया है कि प्रथम, दण्ड की मात्रा कानून में वर्णित दण्ड की मात्रा से अधिक नहीं हो सकती है; दूसरा, एक अपराध के लिए अभियुक्त को एक से अधिक बार दण्ड नहीं दिया जा सकता है और तृतीय, किसी अभियुक्त को अपने विरुद्ध गवाही के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

(iii) जीवन एवं दैहिक स्वतन्त्रता (Right to Life and Personal Liberty) - संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत नागरिकों को 'जीवन के अधिकार' की स्वतन्त्रता दी गयी है। इस अनुच्छेद के अनुसार "किसी व्यक्ति को 'कानून द्वारा स्थापित विधि' के अलावा अन्य किसी प्रकार से उसके जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित नहीं कि जा सकता है।" 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा इस स्वतन्त्रता को और अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।। संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी है कि राष्ट्रीय आपातकाल में भी व्यक्ति के जीवन एवं दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार के क्रियान्वयन को स्थगित नहीं किया जा सकता है। अन्य शब्दों में, व्यक्ति इनके क्रियान्वयन के लिए सक्षम न्याया का सहारा ले सकता है। फिर भी जीवन के अधिकार पर लगा प्रतिबन्ध विचारणीय है, क्योंकि न्यायालय को 'कानून द्वारा स्थापित विधि' (Procedure Established by Law) को अन्यायोचित ठहराने का अधिकार नहीं है।

86वें संशोध अधिनियम (2002) द्वारा संविधान में अनुच्छेद 21(A) जोड़ते हुए शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित कर गया। इसके द्वारा 6 से 14 साल तक के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होगा।

(iv) मनमानी गिरफ्तारी एवं नज़रबन्दी के विरुद्ध संरक्षण (Protection against Arbitrary Arrest an Detention)- अनुच्छेद 22 व्यक्ति को उसकी मनमानी गिरफ्तारी एवं नजरबन्दी के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है। अनुच्छेद के अन्तर्गत व्यक्ति को कुछ निश्चित अधिकार प्रदान किए गए हैं- प्रथम, किसी व्यक्ति को उसके गिरफ्तार किए जाने के कारणों को बताए बिना गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है; द्वितीय, उसे अपने बचाव के लिए अपनी मर्जी का वकील करने का अधिकार होगा, और तृतीय, उसे गिरफ्तार किए जाने के 24 घण्टे के अन्दर निकटतम प्रथम श्रेणी न्यायिक दण्डाधिकारी के समक्ष उपस्थित किया जाएगा। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान किए गए है, उनसे दो प्रकार के व्यक्तियों को बाहर रखा गया है, प्रथम शत्रु देश के निवासी और द्वितीय 'निवारक नजरबन्दी अधिनियम' (जैसे राष्ट्रीय सुरक्षा कानून, 1980) के अधीन गिरफ्तार व्यक्ति।

3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation) - सविधान के अनुच्छेद 23 एवं 24 में व्यक्ति के शोषण के विरुद्ध समुचित व्यवस्था की गयी है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान है-

(i) मानव देह का व्यापार एवं बलात श्रम का निषेध (Prohibition of Flesh Trade and For Labour) - अनुच्छेद 23 मानव देह के व्यापार एवं बेगार पर रोक लगाता है। अब ऐसा करना दण्डनीय अपराध है।

(ii) बाल श्रम का निषेध (Prohibition of Child Labour) — अनुच्छेद 24 में इस बात की व्यवस्था की गयी थी कि 14 वर्ष से कम आयु वाले किसी बच्चे को कारखानो, खानों या अन्य किसी जोखिम भरे काम पर नहीं लगाया जा सकता है,

4. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion)- संविधान के अनुच्छेद 25 - 28 तक नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान किया गया है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की गयी हैं-

(i) धार्मिक आचरण एवं धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता (Freedom of Conscience and Propagation of Religion)- अनुच्छेद 25 के अन्तर्गत सभी व्यक्तियों को अपनी इच्छानुसार अन्तःकरण की स्वतन्त्रता और धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। सिक्खों द्वारा कृपाण धारण करना धार्मिक स्वतन्त्रता का अंग माना गया है।

(ii) धार्मिक संस्थाओं की स्थापना एवं प्रबन्ध की स्वतन्त्रता (Freedom to Establish and Manage Religious Institutions) — अनुच्छेद 26 के अन्तर्गत प्रत्येक धार्मिक समुदाय को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह

(क) धार्मिक एवं परोपकारी कार्यों के लिए धार्मिक संस्थाओं की स्थापना एवं इनका संचालन कर सकता है। (

(ख) अपने धार्मिक मामलों का प्रबन्ध कर सकता है।

(ग) धार्मिक मामलों के लिए चल एवं अचल सम्पत्ति अर्जित कर सकता है, और

(घ) धार्मिक संस्थाओं की सम्पत्ति का प्रबन्ध राज्य के कानूनों के अनुसार कर सकता है।

(iii) धार्मिक कार्यों के लिए कर-मुक्ति (Tax Exemption for Religious Purposes)- संविधान के अनुच्छेद 27 के अन्तर्गत व्यक्ति को किसी विशेष धर्म की उन्नति के लिए कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। साथ ही, ऐसी समस्त आय को कर से छूट गई है, जिसे धार्मिक एवं परोपकारी कार्यों में खर्च किया गया हो।

(iv) धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने की स्वतन्त्रता (Freedom to Get Religious Education)- संविधान के अनुच्छेद 28 में कहा गया है कि पूरी तरह राज्य निधि से चलने वाली शिक्षण संस्थाओं में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी। इसके साथ ही राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त या वित्तीय सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में किसी बच्चे को उसकी या उसके अभिभावक की सहमति के बिना किसी धर्म विशेष की शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

5. सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार (Cultural and Educational Rights)- संविधान के अनुच्छेद 29 एवं 30 के अन्तर्गत सभी अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकारों को सुरक्षित रखा गया है। इन विषय में निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की गयी हैं-

(i) अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि एवं संस्कृति की सुरक्षा (Minoritries' Right to Preserve Their Language, Script and Culture)- अनुच्छेद 29 के अनुसार देश के किसी भी भाग में रहने वाले प्रत्येक अल्पसंख्यक वर्ग को अपनी भाषा, लिपि एवं संस्कृति सुरक्षित रखने का पूर्ण अधिकार है। इसमें यह प्रावधान है कि राज्य निधि से सहायता प्राप्त या राज्य द्वारा पोषित किसी शिक्षण संस्था में धर्म, नस्ल, जाति या भाषा के आधार पर विद्यार्थी को प्रवेश से नहीं रोका जाएगा।

(ii) अल्पसंख्यकों द्वारा शिक्षण संस्थाओं की स्थापना (Minorities' Right to Establish and Administer Educational Institutions) अनुच्छेद 30 के अन्तर्गत धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यकों को अपनी रुचि की

शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करने और उनके प्रशासन का अधिकार होगा। साथ ही, शिक्षण संस्थाओं को अनुदान देते समय राज्य इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि कोई संस्था किसी विशा अल्पसख्यक वर्ग के द्वारा संचालित की जा रही है।

6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Right to Constitutional Remedies)- संविधान में मौलिक अधिकार के उल्लेख करने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है इन अधिकारों के क्रियान्वयन की समुचित व्यवस्था करना। इस बात को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 में संवैधानिक उपचारों के अधिकार का उल्लेख किया गया है। इस अधिकार का अभिप्राय है— नागरिकों द्वारा मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए न्यायालय की शरण लेना। यह अधिकार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, इसीलिए डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 32 को 'संविधान का हृदय एवं आत्मा' कहा है। संवैधानिक उपचारों के इस अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को निम्नलिखित पाँच लेख (Writs) जारी करने का अधिकार दिया गया है-

(i) बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus)- बन्दी प्रत्यक्षीकरण का शाब्दिक अर्थ होता है- सशरीर उपस्थित करना। इसके अन्तर्गत किसी व्यक्ति को अवैध रूप से नजरबन्द करने वाले अधिकारी को सर्वोच्च न्यायाला यह आदेश देता है कि वह बन्दी बनाए गए व्यक्ति को निर्धारित समय एवं स्थान पर उपस्थित करे। स्पष्ट है कि गैर-कानूनी ढंग से बन्दी बनाया हुआ व्यक्ति इस लेख के आधार पर छूट जाता है।

(ii) परमादेश (Mandamus)- सर्वोच्च न्यायालय इस लेख को जारी करते हुए किसी पदाधिकारी अथवा सार्वजनिक प्राधिकारी को यह आदेश देता है कि वह उस कार्य को करे, जिसको करना उसका कानूनी दायित्व है। दूस शब्दों में इस लेख द्वारा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किसी अधिकारी को उसके कर्तव्य पालन का आदेश दिया जाता है।

(iii) प्रतिषेध (Prohibition)- इस लेख द्वारा सर्वोच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों या अर्ध-न्यायिक अधिकरणों को यह आदेश देता है कि वह सम्बंधित मामले में अपने यहाँ चल रही कार्यवाही को रोक दे क्योंकि ऐसा करना न्याय के हित में नहीं है।

(iv) उत्प्रेक्षण (Certiorari) — सर्वोच्च न्यायलय द्वारा यह लेख किसी विवाद को निम्न न्यायालय से उच्चतर न्यायालय में भेजने के लिए जारी किया जाता है, जिससे कि निम्न न्यायालय अपने अधिकारों का दुरुपयोग न करे और न्याय के प्राकृतिक सिद्धान्त का उल्लंघन न हो सके। इस लेख के द्वारा उच्चतर न्यायालय निम्न न्यायालय में किसी विवाद के सम्बन्ध में जानकारी भी प्राप्त कर सकता है।

(v) अधिकार-पृच्छा (Quo-warranto)- अधिकार पृच्छा का सामन्य अर्थ है - किसके अधिकार से। जब कोई पदाधिकारी वह कार्य करने लगता है जिसे करने का उसे कानूनी अधिकार नहीं होता है ,तो सर्वोच्च न्यायालय इस लेख के द्वारा उससे पूछ सकता है कि वह किस अधिकार से ऐसा कर रहा है। उसके संतोषजनक उत्तर दिए जाने की स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय उसे ऐसा करने से रोक देता है।

स्पष्ट है कि संवैधानिक उपचारों का अधिकार एक महत्त्वपूर्ण मौलिक अधिकार है, क्योंकि इसकी अनुपस्थिी में अन्य मौलिक अधिकार 'निरर्थक' हो जाएगे

आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Assessment)

मौलिक अधिकारों की यह व्यवस्था आलोचनाओं से मुक्त नहीं है। संक्षेप में, इनमें निम्नलिखित दोष है-

1. प्रमुख अधिकारों की उपेक्षा (Negligence of Signficant Rights)- मौलिक अधिकारों की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि इनमें ऐसे अधिकारों विशेषकर आर्थिक अधिकारों को सम्मिलित ही नहीं किया गया है जिन्हें सम्मिलित किया जाना चाहिए था। ऐसे अधिकारों में हम रोजगार के अधिकार एवं वृद्धावस्था में सामाजिक सुरक्षा के अधिकार का उल्लेख कर सकते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रकार के अधिकारों के अभाव में देश में आर्थिक लोकतन्त्र साकार नहीं हो सकता है।

2. मौलिक अधिकारों पर अनेक प्रतिबन्ध (Many Restrictions on Fundamental Rights) - मौलिक अधिकारों का

एक प्रमुख दोष यह है कि इन पर संविधान द्वारा अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए गए हैं, जिसके परिणामस्वरूप ये प्रभावहीन हो गए हैं। इसलिए यह कहा गया है, "भारत का संविधान एक हाथ से मौलिक अधिकार देता है, तो दूसरे हाथ से छीन लेता है। शायद ही ऐसा कोई अधिकार बचा है, जिस पर कोई प्रतिबन्ध न लगा हो।

3. मौलिक अधिकारों का स्थगन (Suspension of Fundamental Rights)- मौलिक अधिकारों की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि इन्हें संकट काल में स्थगित कर दिया जाता है। यहाँ तक कि साधारण परिस्थितियों में भी निवारक नजरबन्दी की व्यवस्था की गयी है। इनके स्थगन के प्रावधान को दृष्टि में रखते हुए एच.वी. कामथ ने संविधान सभा में कहा था. "इस व्यवस्था द्वारा हम तानाशाही एवं पुलिस राज्य की स्थापना कर रहे हैं।" जब निवारक नजरबन्दी की व्यवस्था संविधान सभा द्वारा स्वीकार की गयी थी, तो एच.वी. कामथ ने इस पर निराशा व्यक्त करते हुए कहा था, "यह लज्जा एवं दुख का दिन है। ईश्वर भारतीय जनता की सहायता करे!

4. कठिन एवं अस्पष्ट भाषा (Difficult and Ambiguous Language)- मौलिक अधिकारों का एक प्रमुख दोष यह है कि इनके लिए प्रयुक्त की गयी भाषा अत्यन्त कठिन एवं अस्पष्ट है। इनके लिए प्रयुक्त की गयी भाषा आम व्यक्ति की समझ से परे है, क्योंकि इस भाषा को वकील लोग ही समझ सकते हैं। इसी आधार पर भारतीय संविधान को 'वकीलों के स्वर्ग' (Paradise of Lawyers) की संज्ञा दी गयी है।

5. महंगा न्यायिक उपचार (Costly Judicial Remedy) — संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों के उल्लंघन या अतिक्रमण की स्थिति में अनुच्छेद 32 के तहत पीड़ित व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय की शरण में जा सकता है, किन्तु भारत में न्यायिक उपचार इतना महंगा है कि आम व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय में जाने की सोच भी नहीं सकता है। इसी कारण उसके लिए मौलिक अधिकार व्यर्थ हो जाते हैं।

उपर्युक्त आलोचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार केवल 'मिथ' है, क्योंकि इन पर लगे प्रतिबन्धों और इनके स्थगन की व्यवस्था ने इन्हें खोखला एवं निरर्थक बना दिया है। लेकिन यह सोचना गलत है। यदि हम इन पर गहन तरीके से विचार करें, तो स्पष्ट हो जाता है कि इनके विषय में उपर्युक्त आलोचनाएँ निराधार है।

मौलिक अधिकारों का महत्त्व (Significance of Fundamental Rights)

मौलिक अधिकार व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक शर्तें हैं अर्थात् इनके अभाव में व्यक्ति का पूर्ण विकास नहीं हो सकता है। इनके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए जो एन. जोशी ने लिखा है "एक स्वतन्त्र लोकतान्त्रिक देश में मौलिक अधिकार सामाजिक, धार्मिक एवं नागरिक जीवर के प्रभावकारी उपयोग के एकमात्र साधन हैं। इन अधिकारों के बिना लोकतान्त्रिक सिद्धान्त संचालित नहीं हो सकते हैं। सक्षेप में, मौलिक अधिकारों का निम्नलिखित महत्त्व है-

1. लोकतन्त्र का आधार स्तम्भ (Pillar of Democracy)- मौलिक अधिकार लोकतन्त्र का आधार स्तम्भ है, क्योंकि ये ही उन परिस्थितयों का निर्माण करते हैं। जिनके आधार पर जन-इच्छा निर्मित एवं कार्यान्वित होती है। अन्य शब्दों में यदि व्यक्तियों को मौलिक अधिकार प्रदान नहीं किए जाते हैं तो वे अपनी इच्छा को अभिव्यक्त नहीं कर सकते हैं।

2. स्वतन्वता एवं नियन्त्रण में तालमेल (Harmony between Liberty and Control)-जहाँ एक ओ मौलिक अधिकार व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा करते हैं, वहीं दूसरी ओर ये सरकार द्वारा व्यक्ति पर लगा जाने वाले नियन्त्रणों को भी निर्धारित करते हैं। इस रूप में ये व्यक्ति की स्वतन्त्रता और उस पर राज्य के नियन्त्रण के बीच तालमेल कायम करने का कार्य करते हैं।

3. सरकार की शक्तियों पर सीमाएँ (Limitations on Government's Powers) - मौलिक अधिका अनुल्लंघनीय होते हैं, क्योंकि इनका समावेश देश के सर्वोच्च कानून अर्थात् संविधान में किया गया है। करें भी सरकार इनका अतिक्रण नहीं कर सकती है। इस रूप में ये सरकार की शक्तियों को सीमित करते हैं। ए. एन. पालकीवाला के शब्दों में, "मौलिक अधिकार राज्य की सर्वाधिकारवादिता के विरुद्ध साधारण नागरिकों के सुरक्षा कवच हैं।"

4. दलीय तानाशाही का विरोध (Opposition to Party Dictatorship)- व्यावहार में लोकतन्त्र का अर्थ होता है- 'बहुमत का शासन'; न कि जनता का शासन। दलीय प्रणाली के विकास के कारण आज बहुमत के शासन ने बहुमत दल के शासन का रूप ले लिया है, जिसके निरंकुश होने की पूरी संभावना रहती है। मौलिक अधिकारों का उल्लंघन तो सत्तारूढ़ बहुमत दल भी नहीं कर सकता है। इस रूप में ये दलीय तानाशाही का विरोध करते हैं।

जीवन एवं दैहिक(व्यक्तिगत) स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Life and Personal Liberty)

भारतीय संविधान द्वारा व्यक्ति के जीवन एवं दैहिक स्वतन्त्रता को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी गयी है। 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा व्यक्ति के इस अधिकार को पवित्र अधिकार मानते हुए यह व्यवस्था की गयी है कि आपातकाल में भी व्यक्ति के इस अधिकार को निलम्बित नहीं किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार "किसी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित विधि (Procedure Established by Law) के अलावा जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है इसका अर्थ यह हुआ कि भारत में राज्य व्यक्ति को जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार से वंचित नहीं कर सकता है।

भारत में व्यक्ति को जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित करने की व्यवस्था अमेरिका के संविधान में वर्णित व्यवस्था से एकदम भिन्न है, क्योंकि वहाँ इसके लिए 'कानून की उचित प्रक्रिया' (Due Process of Law) शब्दावली का प्रयोग किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि अमेरिका में न्यायपालिका को किसी कानून के बारे में न केवल यह परीक्षण करने का अधिकार है कि वह संविधान के अनुरूप है या नहीं, बल्कि उसे यह भी परीक्षण करने का अधिकार है कि वह प्राकृतिक न्याय (Natural Justice) के अनुरूप है या नहीं। यदि वहाँ कोई कानून संविधान का उल्लंघन नहीं करता है, किन्तु प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन करता है, तो सर्वोच्च न्यायालय उसे अवैध घोषित कर सकता है। इसका अर्थ यह है कि अमेरिका में न्यायपालिका विधानपालिका की शक्ति पर अंकुश लगाने का कार्य करती है।

भारत में स्थिति इसके विपरीत है, क्योंकि भारतीय संविधान में 'कानून की उचित प्रक्रिया' शब्दावली के स्थान पर 'कानून द्वारा स्थापित विधि' (Procedure Established by Law) शब्दावली का प्रयोग किया गया है। इसका निहितार्थ यह है कि यहाँ सर्वोच्च न्यायालय संसद या राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित ऐसे किसी कानून को, जो संविधान का उल्लंघन न करता हो, भले ही वह नैसर्गिक न्याय के विरुद्ध हो, अवैध घोषित नहीं कर सकता है। ए. के गोपालन बनाम मदास राज्य मुकदमे (1950) में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना था कि अनुच्छेद 21 में 'कानन' शब्द का प्रयोग नैसर्गिक न्याय पर आधारित कानून के रूप में नहीं किया गया है, क्योंकि भारतीय संविधान में कहीं भी 'कानून' शब्द का अर्थ नैसर्गिक न्याय पर आधारित कानून से नहीं है। इसीलिए भारत में सर्वोच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निर्मित कानून की वैधता का परीक्षण इस आधार पर कर सकता है कि वह कानून किसी अधिकृत संस्था द्वारा बनाया गया है अथवा नहीं अर्थात उस कानून को बनाने का अधिकार संसद या राज्य विधानमण्डल को प्राप्त है अथवा नहीं, भले ही उस कानून से व्यक्ति की दैहिक स्वतन्त्रता का अतिक्रमण होता है।

इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय को किसी कानून के सम्बन्ध में अन्य कोई अधिकार नहीं था अर्थात वह यह परीक्षण नहीं कर सकता था कि वह कानून न्यायोचित (Just), युक्तियुक्त (Reasonable) अथवा नैसर्गिक न्याय पर आधारित है अथवा नहीं। भारत में संविधान का अनुच्छेद 21 विधानपालिका की शक्ति पर नहीं; बल्कि कार्यपालिका की शक्ति पर अंकुश लगाता था. अर्थात यह कार्यपालिका को व्यक्ति के जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करने से रोकता था, किन्तु विधान पालिका 'कानून द्वारा स्थापित विधि' को अपनाते हुए व्यक्ति को जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित कर सकती थी।

आगे चलकर मेनका गाँधी बनाम भारत संघ मुकदमे (1978) में सर्वोच्च न्यायालय ने ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य मुकदमे (1950) में दिए गए अपने निर्णय को उलटते हुए यह निर्णय दिया कि वह विधि (Procedure), जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार से वंचित किया जा रहा है, न्यायोचित (Just) युक्तियुक्त (Reasonable) एवं निष्पक्ष (Fair) होनी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि वह कानून युक्तियुक्त निष्पक्ष एवं न्यायोचित नहीं है. तो उसके द्वारा व्यक्ति को अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार से वचित नहीं किया जा सकता है। तब से

लेकर आज तक सर्वोच्च न्यायालय मेनका गाँधी मुकदमे में दिए गए निर्णय का अनुसरण कर रहा है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जनता पार्टी सरकार द्वारा 1978 में संविधान में किए गए 44वें संशोधन और मेनका गाँधी बनाम भारत संघ मुकदमे (1978) में सर्वोच्च न्यायलय द्वारा दिए गए फैसले के बाद व्यक्ति का जीवन एवं दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार बहुत सुरक्षित हो गया है।

निवारक नजरबन्दी अधिनियम (Preventive Detention Acts)

नजरबन्दी दो प्रकार की होती है— (1) दण्डात्मक नजरबन्दी (Punitive Detention) - जब किसी व्यक्ति को कोई अपराध किए जाने के कारण दण्ड के रूप में बन्दी बनाया जाता है. तो यह दण्डात्मक नजरबन्दी कहलाती है।

(ii) निवारक नजरबन्दी (Preventive Detention)— लेकिन जब किसी व्यक्ति को अपराध करने से पहले बन्दी बनाया जाता है ताकि उसको अपराध करने का अवसर ही न मिले, तो यह निवारक नजरबन्दी कहलाती है। निवारक नजरबन्दी का उद्देश्य व्यक्ति को अपराध करने से रोकना है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 22 में निवारक नजरबन्दी की व्यवस्था की गयी है। निवारक नजरबन्दी संसद द्वारा बने किसी निवारक नजरबन्दी अधिनियम के तहत ही की जाती है। भारत में संसद ने समय-समय पर निवारक नजरबन्दी अधिनियमों का निर्माण किया है। इस प्रकार के अधिनियम सामान्य काल एवं आपातकाल दोनों में ही लागू किए जा सकते हैं। यहाँ ऐसे कुछ अधिनियमों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

1. निवारक नजरबन्दी अधिनियम, 1950 (Preventive Detention Act, 1950)- संविधान के अनुच्छेद 22 में जिस निवारक नजरबन्दी का उल्लेख किया गया है. उसके तहत संसद ने सबसे पहले 1950 में एक वर्ष के लिए निवारक नजरबन्दी अधिनियम का निर्माण किया था। इस अधिनियम को 1951 1952 एवं 1953 में संशोधित विधेयकों के रूप में संसद द्वारा पारित किया गया। 1954 में इसे तीन वर्ष के लिए बनाया गया। इसके बाद प्रत्येक तीन वर्ष बाद अर्थात 1957 1960 1963 एवं 1966 में तीन-तीन वर्ष के लिए इसकी अवधि बढ़ायी जाती रही, किन्तु 1969 में संसद में कांग्रेस पार्टी को आवश्यक बहुमत प्राप्त न होने के कारण इस अधिनियम की अवधि नहीं बढ़ायी जा सकी। किन्तु अभी भी कई राज्य विधानमण्डलों द्वारा निर्मित निवारक नजरबन्दी कानून अस्तित्व में हैं।

2. आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम, 1971 (Maintenance of Internal Security Act-MISA 1971)-निवारक नजरबन्दी कानून की आवश्यकता को अनुभव करते हुए राष्ट्रपति ने 7 मई 1971 को 'आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अध्यादेश' जारी किया। इस अध्यादेश को जून, 1971 में आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम (MISA) का रूप दिया गया। इस अधिनियम के तहत बन्दी बनाए गए व्यक्ति की नजरबन्दी की अधिकतम अवधि एक वर्ष रखी गयी थी। 25 जून. 1975 को आपातकाल की घोषणा के तुरन्त बाद 30 जून 1975 को इस अधिनियम में संशोधन के लिए एक अध्यादेश जारी किया गया। 16 जुलाई, 1975 को राष्ट्रपति ने एक और अध्यादेश जारी किया, जिसके अनुसार मीसा के तहत बन्दी बनाए गए व्यक्ति को प्राकृतिक कानून के नाम पर दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार की माँग करने से वंचित कर दिया गया। 26 जुलाई, 1975 को संसद द्वारा इन दोनों अध्यादेशों को अधिनियम में बदल दिया गया। 'आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम' (MISA), 1975 के तहत बन्दी बनाए गए व्यक्ति को बिना कारण बताए एक वर्ष की जगह दो वर्ष तक जेल में रखा जा सकता था। 25 जून, 1975 को घोषित आपातकाल के दौरान इस अधिनियम का सरकार द्वारा व्यापक रूप से दुरुपयोग किया गया और इसके तहत विपक्ष के प्रमुख नेताओं को जेल में डाल दिया गया। ऐसे में इस अधिनियम की कड़ी आलोचना की जाने लगी। आपातकाल की समाप्ति की घोषणा के बाद, जब मार्च, 1977 में आम चुनाव हुए, तो इस अवसर पर नव निर्मित जनता पार्टी ने यह वादा किया कि यदि उसे सरकार बनाने का मौका मिला, तो वह 'आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम' को समाप्त कर देगी।1977 मे जनता पार्टी सरकार ने इसे समाप्त करा दिया। इसे समाप्त कराने का विधेयक लोक सभा ने 19 जुलाई 1978 को और राज्य सभा ने 27 जुलाई, 1978 को पारित कर दिया। इस विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाने के बाद यह अधिनियम 1978 में समाप्त हो गया।

3. राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 (National Security Act, 1980)- जनता पार्टी सरकार के पतन के बाद जनवरी

1980 में हुए लोक सभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी बहुमत प्राप्त करके सत्ता में आयी और उसने 22 सितम्बर, 1980 को राष्ट्रपति से 'राष्ट्रीय सुरक्षा अध्यादेश' की घोषणा करायी। फरवरी 1981 में इस अध्यादेश को अधिनियम का रूप दे दिया गया। यह अधिनियम आज भी लागू है।

4. आतंकवाद एवं विध्वंसकारी गतिविधियाँ (निरोधक) अधिनियम, 1985 (Terrorist and Disruptive Activities (Preventive) Act, 1985) - पंजाब, जम्मू-कश्मीर एवं अन्य राज्यों में बढ़ रही आतंकवादी गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए 'आतंकवाद एवं विध्वसंकारी गतिविधियाँ (निरोधक) अधिनियम' (TADA) 1985 निर्मित किया गया। यह अधिनियम अब तक के निवारक नजरबन्दी अधिनियमों में सर्वाधिक प्रभावी एवं कठोर था। इस अधिनियम को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी। सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने 11 मार्च 1994 को दिए अपने निर्णय में इस अधिनियम को वैध ठहराया, किन्तु पुलिस द्वारा इसके दुरुपयोग को रोकने के लिए सरकार को इसमें कुछ संशोधन करने के निर्देश भी दिए। लेकिन अनेक राज्य सरकारों द्वारा इसका दुरुपयोग किया जाता रहा। ऐसे में यह मांग की गयी कि 23 मई 1995 के बाद इस अधिनियम की अवधि न बढ़ायी जाए। इसके विरोध को देखते हुए इस अधिनियम की अवधि नहीं बढ़ायी गयी और यह स्वतः समाप्त हो गया।

5. आतंकवाद निरोधक अधिनियम, 2002 (Prevention of Terrorism Act-POTA, 2002) - देश में आतंकवाद के बढ़ते कदमों को रोकने के लिए राष्ट्रपति द्वारा 24 अक्टूबर, 2001 को 'आतंकवाद निरोधक अध्यादेश' (Prevention of Terrorism Ordinance) 2001 जारी किया गया। यह टाडा (TADA) का ही एक नवीन रूप था। इसमें सरकार को वही शक्तियाँ दी गयी थी, जो टाडा के तहत सरकार को प्राप्त थीं। इसके तहत पुलिस सन्देह के आधार पर किसी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकती थी। यहाँ तक कि इसमें आतंकवाद-सम्बन्धी सूचना छिपाने वाले व्यक्ति को भी दण्ड देने का प्रावधान रखा गया था। इसके तहत गिरफ्तार व्यक्ति उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर कर सकता था, लेकिन याचिका गिरफ्तारी के तीन माह बाद ही दायर की जा सकती थी। इसके तहत अपराधी को न्यूनतम पाँच वर्ष की कैद और अधिकतम मृत्यु दण्ड की सजा दी जा सकती थी। इसे राज्य सभा की स्वीकृति नहीं मिल पायी अतः इसको पारित करने के लिए संसद की 'संयुक्त बैठक' बुलायी गयी। इस बैठक में पारित होने और 2 अप्रैल, 2002 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने के पश्चात् 'आतंकवाद निरोधक अधिनियम' (POTA) तुरन्त प्रभाव से लागू हो गया। 14वीं लोक सभा के चुनावों के पश्चात् सत्ता में आयी संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (IPA) सरकार ने 21 सितम्बर, 2004 को राष्ट्रपति द्वारा एक अध्यादेश जारी कराकर आतंकवाद निरोधक अधिनियम को समाप्त करा दिया।

मौलिक कर्त्तव्य (Fundamental Duties)

अनेक राज्यों के संविधानों में नागरिकों के मौलिक अधिकारों के साथ-साथ मौलिक कर्त्तव्यों का भी वर्णन किया गया है। साम्यवादी चीन के अतिरिक्त कई गैर-साम्यवादी देशों; जैसे-इटली, जापान एवं नीदरलैंड के संविधानों में भी नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। संविधान निर्माताओं द्वारा भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों को तो शामिल किया गया था, लेकिन मौलिक कर्तव्यों को नहीं। 1976 में 42वें संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान के चौथे भाग में अनुच्छेद 51 (A) जोड़कर 10 मौलिक कर्तव्यों को सम्मिलित किया गया। 2002 में 86वें संशोधन अधिनियम द्वारा एक और मौलिक कर्तव्य इनमें जोड़ दिया गया, जिसके कारण इनकी संख्या बढ़कर 11 हो गयी है। इन **मौलिक कर्तव्यों का वर्णन** इस प्रकार है-

1. संविधान का पालन करना और इसके आदर्शों एवं संस्थाओं, राष्ट्रीय झण्डे एवं राष्ट्रीय गान का सम्मान करना (To abide by the Constitution and respect its ideals and institution, the National Flag and the National Anthem) - 42वें संशोधन अधिनियम (1976) के द्वारा यह नागरिकों का मौलिक कर्तव्य निर्धारित कर दिया गया है कि वे देश के संविधान और इसके आदर्शों; जैसे-सम्प्रभुता, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, लोकतन्त्र एवं विश्वबन्धुत्व का सम्मान करें।

2. स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में सँजोए रखना और उनका पालन करना (To cherish and

follow the noble ideals which inspired our national struggle for freedom) - भारत लगभग 200 वर्षों तक अंग्रेजों के अधीन रहने के पश्चात् स्वतंत्र हुआ। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन कुछ आदर्शों पर आधारित था; जैसे-अहिंसा में विश्वास, संवैधानिक साधनों में विश्वास, धर्मनिरपेक्षता, भाईचारा, राष्ट्रीय एकता आदि। भारत के स्वतंत्रता सेनानियों ने इन उच्च आदर्शों से प्रेरित होकर राष्ट्रीय आन्दोलन को जारी रखा था और अन्त में इसमें सफलता प्राप्त की थी। स्वतंत्र भारत में इन आदर्शों का महत्त्वपूर्ण स्थान है और इन आदर्शों को आधार मानकर ही यहाँ राष्ट्र-निर्माण किया जा रहा है।

3. देश की प्रभुसत्ता, एकता एवं अखण्डता का संरक्षण करना (To uphold and protect the sovereignty unity and integrity of the country)- भारत में कुछ स्वार्थी लोगों ने प्रभुसत्ता एकता एवं अखण्डता को काफी हरि पहुंचायी है। इसीलिए यह नागरिकों का परम कर्तव्य बनता है कि वे इन आदशों की पूर्ण रूप से रक्षा करें।

4. देश की रक्षा करना और आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रीय सेवा करना (To defend the country and render national service, when called upon to do so)- अमेरिका एवं कई अन्य देशों में शारीरिक रूप से योग प्रत्येक नागरिक के लिए कुछ समय के लिए सैनिक सेवा करना अनिवार्य है किन्तु भारत में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं को गयी थी। इसी कमी को पूरा करने के लिए मौलिक कर्तव्यों में यह अंकित किया गया है कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्त है कि वह देश की रक्षा करे और जब कभी उसको कहा जाए, वह राष्ट्रीय सेवा भी करे।

5. नागरिकों में समरसता एवं बन्धुत्व की वृद्धि करना (To promote harmony and brotherhood among citizens) -हमारे देश में अनेक प्रकार की विविधताएँ देखने को मिलती हैं। कुछ स्वार्थी लोग इनका लाभ उठाने के लिय लोगों को आपस में लड़ाते रहते हैं। इसीलिए सभी नागरिकों का यह कर्तव्य निर्धारित किया गया है कि इन स्वार्थी लोगों क सामना करते हुए बन्धुत्व की भावना का विकास करें।

6. वैज्ञानिक मनोदशा, मानववाद, अन्वेषण एवं सुधार की भावना विकसित करना (To develop scientific temper, humanism and the spirit of investigation and reform)- आधुनिक युग विज्ञान का युग है किन भारत की अधिकांश जनता में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कमी है, जिस कारण यह अपने व्यक्तित्त्व का ठीक प्रकार से विकास नहीं कर पाती। देश का विकास तभी हो सकता है. जब भारतीय लोग साधु-संतों एवं जादू-टोनों के चक्कर में न पड़का प्रत्येक वस्तु को तर्क की दृष्टि से देखें। इसलिए प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य तय किया गया है कि वह अपने अन्दर वैज्ञानिक स्वभाव, मानववाद एवं अन्वेषण करने और सुधार करने की भावना विकसित करे।

7. हमारी संयुक्त संस्कृति की शानदार परम्परा का सम्मान करना और उसे बनाए रखना (To value and preserve the rich heritage of our composite culture)- ब्रिटिश शासन काल में भारत की सस्कृति को नष्ट कसं का हर सम्भव प्रयास किया गया था। पश्चिमी सभ्यता की तड़क-भड़क एवं शिक्षा के प्रभाव ने भारत के लोगों को पश्चिम का दास बनाकर रख दिया था किन्तु देश के स्वतन्त्र होने के बाद भी ये प्रभाव कम नहीं हुए। अब प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्थ तय कर दिया गया है कि वह देश की शानदार एवं मिली-जुली संस्कृति का सम्मान करे और उसे समृद्ध बनाने का प्रयास करें

8. वनों, झीलों, नदियों एवं जंगली जानवरों सहित राष्ट्रीय पर्यावरण की रक्षा करना और सजीव प्राणियों के प्रति दया विखाना (To protect and improve the national environment including forests, rivers and wild lift and to have compassion for living creatures)- वन, झौलें एवं नदियाँ प्रत्येक देश की प्राकृतिक सम्पदा होती हैं औ साथ ही देश की अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी भी। प्राकृतिक सम्पदाओं की रक्षा एवं सुधार करने से देश का विकास होता है और देश की जनता स्वस्थ वातावरण में अपना जीवन व्यतीत कर सकती है। वन्य जीवन की रक्षा तभी हो सकती है यदि व्यक्ति जीव-जन्तुओं के प्रति करुणा की भावना रखें। इस कारण भारत के संविधान में इस मौलिक कर्तव्य को शामिल किया गया है।

9. सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करना और हिंसा का परित्याग करना (To safeguard public property and to abjure violence) - सार्वजनिक सम्पत्ति किसी एक व्यक्ति की सम्पत्ति न होकर सम्पूर्ण देश की सम्पत्ति होती है औ इस नाते इसकी रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होता है. किन्तु भारत में प्रायः यह देखने को मिलता है कि जब में सरकार के विरुद्ध कोई हड़ताल या आन्दोलन होता है. तो उसमें सार्वजनिक सम्पत्ति नष्ट की जाती है। चीन में सार्वजनिक सम्पत्ति की

रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का परम कर्तव्य है और जो नागरिक सार्वजनिक सम्पत्ति नष्ट करता है. उसे काँ सजा दी जाती है। भारत में राजनीतिक दल अथवा श्रमिक संघ अपनी माँगों को मनवाने के लिए हिंसा का प्रयोग करने में नहीं झिझकते, अतः मौलिक कर्तव्यों के भाग में प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य अंकित किया गया है कि वह सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करें और हिंसा का परित्याग करे।

10. व्यक्तिगत एवं सामूहिक गतिविधि के सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठता के लिए प्रयत्न करना, जिससे कि हमारा राष्ट्र परिश्रम एवं प्राप्ति के उच्चतर स्तर तक लगातार उन्नति करता रहे (To strive towards excellence in all spheres of individual and collective activity so that our nation constantly rises to higher levels of endeavour and achievement)- इस कर्तव्य के द्वारा नागरिकों में यह भावना विकसित करने का प्रयास किया गय है कि वे व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक क्षेत्रों में सर्वोत्कृष्टता प्राप्त करने का प्रयत्न करें, ताकि देश का निरन्तर उत्थान होता रहे।

11. बच्चों की शिक्षा (Children Education)-86वें संशोधन अधिनियम (2002) द्वारा संविधान के अनुच्छेद 51.4 में संशोधन करके एक नया खण्ड (K) जोड़ा गया है। इसमें 6 से 14 साल तक की आयु के बच्चों के माता-पिता या अभिभावक को अपने बच्चे को शिक्षा दिलाने के लिए अवसर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी है।

मौलिक कर्त्तव्यों की आलोचना (Criticism of Fundamental Duties)

भारत के संविधान में मौलिक कर्तव्यों को सम्मिलित किया जाना एक सराहनीय कार्य है क्योंकि इनके बिना संविधान में मौलिक अधिकारों का अस्तित्त्व पूर्ण रूप से विदित नहीं होता। इसके बावजूद भी, राजनीतिक विश्लेषकों द्वारा मौलिक कर्तव्यों की निम्नलिखित आधारों पर आलोचनाएँ की गयी हैं-

1. समय (Timing)-जिस समय संविधान में 42वाँ संशोधन किया गया था. देश में आपातकाल लागू था और विरोधी दलों के प्रमुख नेता जेलों में बन्द थे। इतना ही नहीं, तब प्रेस पर भी कड़े प्रतिबन्ध लगे हुए थे। अतः यह संशोधन तानाशाही के वातावरण में किया गया। इस पर न तो सार्वजनिक रूप से वाद-विवाद हुआ था और न ही सरकार द्वारा अनुच्छेद 51 (A) में वर्णित कर्तव्यों पर जनमत जानने का प्रयास किया गया था।

2. कुछ मौलिक कर्तव्य अस्पष्ट -(Some Fundamental Duties are Vague)- मौलिक कर्तव्यों में एक दोष यह है कि कुछ मौलिक कर्तव्यों का अर्थ स्पष्ट नहीं है; जैसे 'स्वतंत्रता संग्राम के आदर्श', 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण', 'मानववाद' 'अन्वेषण का दृष्टिकोण' एवं 'सामूहिक श्रेष्ठता' को प्राप्त करना आदि।

3. कुछ महत्त्वपूर्ण कर्तव्यों का अभाव (Absence of Some Significant Duties)- संसद के कुछ सदस्यों ने मौलिक कर्तव्यों में मंत्रियों, विधायकों एवं सार्वजनिक कर्मचारियों के कर्तव्यों को सम्मिलित करने पर जोर दिया था। इन सदस्यों का विचार था कि सभी नागरिकों के लिए अनिवार्य मतदान, करों का ईमानदारी से भुगतान, अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण परिवार नियोजन आदि बातें मौलिक कर्तव्यों में शामिल की जाएं, किन्तु ऐसा नहीं किया गया।

4. इनकी व्यवस्था उचित स्थान पर नहीं (Their Provision Being Not at Proper Place)- कुछ विद्वानों का विचार है कि, यदि मौलिक कर्तव्यों को मौलिक अधिकारों वाले भाग तीन में शामिल किया जाता, तो अच्छा रहता किन्तु ऐसा नहीं किया गया और मौलिक कर्तव्य नीति-निर्देशक सिद्धान्तों वाले भाग चार के अन्त में रख दिए गए।

5. दण्ड का अभाव (Lack of Punishment)- संविधान में मौलिक कर्तव्यों का उल्लघन या अवहेलना करने की अवस्था में दण्ड देने का व्यवस्था नहीं की गयी है। इस बारे में 'स्वर्ण सिंह समिति' ने यह सुझाव दिया था कि मौलिक कर्तव्यों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों के लिए दण्ड की व्यवस्था की जाए और इसके लिए संसद उचित कानूनों का निर्माण करे, किन्तु अभी तक भी यह कार्य नहीं हो पाया है।

मौलिक कर्त्तव्यों का महत्त्व

(Significance of Fundamental Duties)

मौलिक कर्तव्यों की अनेक आलोचना की गयी हैं, फिर भी, इनके महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। कुल मिलाकर मौलिक कर्तव्यों का निम्नलिखित महत्व है-

1. मौलिक कर्तव्यों की सकारात्मक प्रकृति (Positive Nature of Fundamental Duties)- भारत के संविधान में दिए गए मौलिक कर्तव्य सकारात्मक प्रकृति वाले हैं, क्योंकि ये नागरिकों को राष्ट्र के प्रति कुछ करने के लिए प्रेरित करते हैं। इनसे नागरिकों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ेगा और ये धीरे-धीरे मौलिक कर्तव्यों का पालन करने के अभ्यस्त हो जाएँगे।

2. नैतिक महत्त्व (Moral Significance)- भारत के संविधान में शामिल मौलिक कर्तव्यों का स्वरूप वैधानिक नहीं है. क्योंकि इनके पीछे कानूनी शक्ति नहीं; बल्कि नैतिक शक्ति है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि नैतिक उपदेशों एवं आदशों से व्यक्तियों एवं राष्ट्रों के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं।

3. विवादहीन आदर्श (Non-Controversial Ideals) – भारतीय संविधान में सम्मिलित किए गए मौलिक कर्तव्य विवादहीन हैं. क्योंकि इनको लेकर राजनीतिक दलों में मतभेद नहीं है। ये भारत की संस्कृति के अनुकूल हैं। इनमें से अधिकांश कर्तव्यों का उल्लेख हमारे धार्मिक ग्रन्थों में मिलता है। सभी विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि मौलिक कर्तव्य का पालन देश की प्रगति के लिए आवश्यक है।

4. संविधान के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक (Helpful in Achieving the Objectives of the Constitution) - भारत के संविधान की प्रस्तावना में समानता, स्वतंत्रता बन्धुत्व, न्याय राष्ट्रीय एकता, अखण्डता आदि संविधान के मुख्य उद्देश्य बताए गए हैं। ऐसा समझा जाता है कि मौलिक कर्तव्य इन उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होंगे।

5. मनोवैज्ञानिक महत्त्व (Psychological Significance)- भारतीय संविधान में मौलिक कर्तव्यों को जोड़ने में नागरिकों के मन एवं मस्तिष्क पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव के कारण नागरिकों में कर्तव्य एवं भाईचारे के प्रति रुझान में बढ़ोत्तरी हुई है। इस दृष्टि से मौलिक कर्तव्य नागरिकों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)- अन्त में यह कहा जा सकता है कि संविधान में मौलिक कर्तव्यों को शामिल करने का मनोवैज्ञानिक महत्त्व ही नहीं है. बल्कि संविधान में इनका उल्लेख कर देने से इनकी पवित्रता एवं मान्यता बढ़ी है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों के विशेष लक्षणों का वर्णन कीजिए। (Discuss the special features of Fundamental Rights as given in the Indian Constitution.)

2. भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों के स्वरूप का वर्णन करें। (Discuss the nature of Fundamental Rights given in the Constitution of India.)

3. "भारत का संविधान एक हाथ से मौलिक अधिकार देता है और दूसरे से छीन लेता है।" आप इस कथन में किस हद तक सहमत है?

("The Constitution of India gives Fundamental Rights with one hand and takes away with the other." How far do you agree with this statement ?)

4. भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।

(Discuss the salient features of Fundamental Rights, incorporated in the Constitution of India.)

5. भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।

(Give a critical estimate of the Fundamental Rights incorporated in the Indian Constitution.)

6. भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों का आलोचनात्मक अध्ययन कीजिए। क्या संसद इन अधिकारों को सीमित कर सकती है?

(Make a critical study of Fundamental Rights, given in the Indian Constitution. Can Parliament

abridge them?)

7. भारतीय संविधान में अंकित मौलिक अधिकारों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (Critically examine the Fundamental Rights given in the Constitution of India.)

8. भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों का वर्णन कीजिए। क्या ये अधिकार असीमित है?

(Discuss the Fundamental Rights, given in the Indian constitution. Are these rights absolute?)

9. भारतीय संविधान में अंकित मौलिक कर्तव्यों की आलोचनात्मक व्याख्या करें।

(Critically discuss the Fundamental Duties enshrined in the Indian Constitution.)

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त [Directive Principles of State Policy]

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों का वर्गीकरण (Classification of Directive Principles of State Policy)

भारतीय संविधान के **चौथे भाग में अनुच्छेद 36 — 51** तक राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। यद्यपि मौलिक अधिकारों की भांति, संविधान में नीति-निर्देशक सिद्धांतों को विभिन्न वर्गों में विभाजित नहीं किया गया है, लेकिन सुविधा के लिए इनको निम्नलिखित श्रेणियों में रखा जा सकता है-

1. समाजवादी सिद्धांत (Socialis Principles)- इस श्रेणी में वे निर्देशक सिद्धांत रखे जा सकते हैं, जिनका उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। संविधान के अनुच्छेद 38, 39, 41, 42 एवं 43 में दिए गए सिद्धांतों की गिनती इसी श्रेणी में की जाती है। अनुच्छेद 38 के द्वारा राज्य को देश के अन्दर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय पर आधारित व्यवस्था कायम करने का निर्देश दिया गया है।

अनुच्छेद 39 के अनुसार, राज्य अपनी नीति इस प्रकार तय करेगा, जिससे कि-

(i) सभी नागरिकों को समान रूप से जीवन निर्वाह के उपयुक्त साधन प्राप्त हो सकें।

(ii) समाज के भौतिक संसाधनों के स्वामित्व एवं नियंत्रण का न्यायोचित वितरण हो सके।

(iii) सम्पत्ति एवं उत्पादन के साधनों के केन्द्रीकरण को रोका जा सके।

(iv) महिलाओं एवं पुरुषों को समान कार्य के लिए समान वेतन मिलने का प्रावधान किया जा सके।

(v) बच्चों को शोषण से मुक्ति दिलायी जा सके और उनका संरक्षण किया जा सके।

अनुच्छेद 41 के अनुसार, राज्य अपनी सार्मथ्य के अनुसार बेकारी, बुढ़ापा एवं बीमारी से पीड़ित लोगों को सहा देने का प्रबंध करेगा।

अनुच्छेद 42 के अनुसार, राज्य महिलाओं के लिए काम की उचित परिस्थितियां कायम करेगा और इनको सहायता उपलब्ध कराएगा।

42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा इस अनुच्छेद में कुछ और बातों को जोड़ा गया है; जैसे कमजोर वर्ग लिए नि:शुल्क कानूनी सहायता और औद्योगिक संस्थाओं के प्रबंधन में कर्मचारियों की भागीदारी।

2. गांधीवादी सिद्धांत (Gandhian Principles)- राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों पर गांधी जी के विचारों सबसे अधिक प्रभाव दिखायी देता है। संविधान निर्माताओं ने गांधीवाद को व्यावहारिक रूप देने के लिए अनेक बातें निर्देशक सिद्धांतों में शामिल किया; जैसे-

अनुच्छेद 40 के अनुसार, ''राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करेगा और इन्हें स्वायत्त शासन की इकाई के रूप में शक्ति प्रदान करेगा।

अनुच्छेद 43 के अनुसार, ''राज्य ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों की उन्नति के लिए हर संभव प्रयत्न करेगा।

अनुच्छेद 46 के अनुसार, ''राज्य समाज के दुर्बल वर्गों-विशेष रूप से अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए शिक्षा एवं आर्थिक उन्नति के लिए प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 47 के अनुसार, ''राज्य लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने और सार्वजनिक स्वास्थ्य के विकास के लिए प्रयास करेगा। इसके लिए राज्य औषधि के प्रयोग के अतिरिक्त मादक द्रव्यों (नशीले पदार्थों) के सेवन पर प्रतिबन्ध लगाएगा।

अनुच्छेद 48 के अनुसार, ''राज्य कृषि एवं पशुपालन उद्योग को वैज्ञानिक आधार पर संगठित करने का प्रयास करेगा ।राज्य दूध देने वाले पशुओं के वध पर रोक लगाएगा और पशुओं की नस्ल सुधारने का प्रयास करेगा।

3. उदारवादी सिद्धांत (Liberal Principles)- संविधान में वर्णित प्रमुख उदारवादी निर्देशक सिद्धांत इस प्रकार हैं— अनुच्छेद 44 के अनुसार, राज्य सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) लागू करने का हर संभव प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 45 के अनुसार, "राज्य 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा देने में प्रबंध करेगा।"

अनुच्छेद 50 के अनुसार, "राज्य कार्यपालिका से न्यायपालिका को अलग करने का प्रयत्न करेगा।"

4. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध-संबंधी सिद्धांत (Principles related with International Relations) - संविधान के अनुच्छेद 51 के अनुसार, राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को बढ़ावा देगा; राज्यों के बीच न्याय एवं सम्मानजनक संबंधों को बनाए रखने की कोशिश करेगा; अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों एवं संधियों का पूरा सम्मान करेगा और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिए पंच फैसलों का उपयोग करेगा।

5. अन्य सिद्धांत (Other Principles)- राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों से संबंधित कुछ अनुच्छेदों का उल्लेख इस श्रेणी तहत किया जा सकता है। उदाहरण के लिए **अनुच्छेद 49 के अनुसा**र, "राज्य की यह जिम्मेदारी होगी कि वह ऐतिहासिक एवं कलात्मक महत्त्व के स्मारकों, वस्तुओं एवं स्थानों, जिन्हें भारतीय संसद राष्ट्रीय महत्व का घोषित करे, की देखभाल करेगा। 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा संविधान के अनुच्छेद 48 (A) में यह व्यवस्था की गयी है कि केन्द्र एवं राज्य सरकारें पर्यावरण की सुरक्षा के लिए। संभव प्रयत्न करेंगी। 44वें संशोधन अधिनियम (1978) में यह व्यवस्था की गयी है कि राज्य लोगों की आय सामाजिक स्तर, सुविधाओं एवं अवसरों-संबंधी भेदभाव को कम करने का प्रयत्न करेगा।

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों की आलोचना (Criticism of Directive Principles of State Policy)

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों के मुख्य आलोचकों में के.सी. व्हीयर, श्रीनिवासन, आईवर जैनिंग्स, ग्लैडहिल, के. टी. शाह आदि का नाम लिया जाता है। प्रो. के. टी. शाह ने इन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, "नीति-निर्देशक सिद्धांत उस चैक के समान हैं, जिसका भुगतान बैंक की सुविधा पर छोड़ दिया गया है।" के.सी व्हीयर के मतानुसार, *नीति-निर्देशक सिद्धांत लक्ष्यों एवं आकांक्षाओं के घोषणा-पत्र से थोड़ा-सा बढ़कर हैं। इन विद्वानों ने निम्नलिखित आधारों पर राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्तों की आलोचना की है-

1. कानूनी शक्ति का अभाव (Lack of Legal Sanction)- राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों का प्रमुख दोष कानूनी शक्ति का अभाव है। संविधान के अनुच्छेद 37 के अनुसार राज्य नीति के निर्देशक सिद्धातों को न्यायालय द्वारा लागू नहीं करवाया जा सकता है।

2. साधनों की उपेक्षा (Means Ignored)- सर आइवर जैनिंग्स ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत केवल उद्देश्यों की व्याख्या करते हैं, इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक साधनों की नहीं। उदाहरण के लिए वर्तमान में राज्य के पास इतने संसाधन नहीं है कि बेकारी, बुढ़ापा एवं बीमारी से पीड़ित लोगों को पर्याप्त सहायता दी जा सके।

3. केवल खोखले वादे एवं पवित्र भावनाएं (Mere Empty Promises and Pious Wishes)- के. सी. व्हीयर के अनुसार, राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांत लक्ष्यों एवं आकांक्षाओं के घोषणा-पत्र से अधिक कुछ नहीं है। व्हीयर के अनुसार संविधान में किसी ऐसी वस्तु की व्यवस्था नहीं की जानी चाहिए, जो न्यायसंगत न हो, क्योंकि संविधान में केवल उन बातों का ही उल्लेख होना चाहिए, जिनका कोई कानूनी महत्व हो।

4. ससद की सर्वोच्चता के विरुद्ध (Against the Supremacy of Parliament) — राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत भारतीय संसद की सम्प्रभुता के अनुकूल नहीं है, क्योंकि कोई भी संस्था संसद को कोई निर्देश नहीं दे सकती है। निर्देश सदैव उच्चतर द्वारा अधीनस्थों को दिए जाते हैं। संसद को कानन बनाने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। यह जरूरी नहीं है जिन बातों को संविधान निर्माताओं ने श्रेष्ठ एवं आदर्श माना, आज भी जनता उन बातों को आदर्श माने। इसीलिए वर्तमान समय में संसद को स्वतंत्रतापूर्वक कानून बनाने का अधिकार होना चाहिए।

5. अस्पष्ट एवं अक्रमबद्ध (Vague and Unsystematic)- संविधान में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों को क्रमबद्ध एवं स्पष्ट तरीके से नहीं लिखा गया है। उदाहरण के लिए स्मारकों के संरक्षण, जैसी बात को सामाजिक एवं आर्थिक मामलों के साथ जोड़ दिया गया है। इनकी कोई निश्चित एवं तर्कसंगत विचारधारा भी नहीं है क्योंकि एक ही भाग (अध्याय) में परस्पर विरोधी विचारधाराओं समाजवाद, उदारवाद एवं गांधीवाद को शामिल किया गया है। श्रीनिवासन के अनुसार ये सिद्धांत बहुत अधिक अनिश्चित एवं अस्पष्ट हैं।

6. मौलिक अधिकारों एवं निर्देशक सिद्धांतों में द्वंद्व की संभावना (Possibility of Conflict between Fundamental Rights and Directive Principles) - भारत में मौलिक अधिकारों एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धातों में द्वन्द्व या टकराव की स्थिति बनी रहती है। अनेक बार संसद ने इन सिद्धान्तों की मौलिक अधिकारों के ऊपर सर्वोच्चता स्थापित करने का प्रयास किया किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने इनके ऊपर मौलिक अधिकारों की सर्वोच्चत स्थापित की।

7. अनावश्यक (Unnecessary)- यदि हम कानूनी व्यावहारिक एवं उपयोगिता की दृष्टि से देखें, तो इनके संविधान में होने से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। अतः इनको अनावश्यक रूप से संविधान में शामिल किया गया है।

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों की उपयोगिता (Utility of Directive Principles of State Policy)

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धातों को महत्वपूर्ण एवं उपयोगी मानने वाले विद्वानों में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, न्यायमूर्ति एच.एन. सप्रू, एम.वी. पायली, ग्रेनविल आस्टिन एवं एम.सी. छागला के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों के अनुसार नीति-निर्देशक

सिद्धांतों की निम्नलिखित उपयोगिता है-

1. सरकारों के लिए मार्ग-दर्शक (Guidelines for Governments)- यह सत्य है कि नीति-निर्देशक सिद्धांत के पीछे कानूनी शक्ति नहीं है। किन्तु ये सिद्धांत सरकारों के लिए मार्ग दर्शक का कार्य करते हैं। अनुच्छेद 37 में इसे 'शासन के सर्वोच्च आदेश' बताया गया है। क्योंकि ये सिद्धांत जनता के हित में हैं, इसलिए इन्हें जनता का समर्थन प्राप्त है। कोई भी सत्तारूढ़ दल इन्हें नजरअंदाज नहीं कर सकता है, क्योंकि ऐसा करने पर वह अगले चुनावों में पर्याप्त वोट प्राप्त नहीं कर सकेगा।

2. नीति-निर्देशक सिद्धांतों के पीछे जनमत की शक्ति (Directive Principles are backed by Public Opinion)- निःसंदेह नीति-निर्देशक सिद्धांत न्यायसंगत नहीं हैं, किन्तु इनके पीछे जनमत की शक्ति है। जनता इन सिद्धांतों के पक्ष में है, क्योंकि इन सिद्धांतों को लागू करने से जनता का कल्याण होता है। वस्तुतः कोई भी सरकार जनमत की अवहेलना नहीं कर सकती है क्योंकि यदि वह ऐसा करेगी, तो जनता ऐसी सरकार को हटा देगी।

3. सामाजिक क्रांति का आधार (Basis of Social Revolution)- नीति-निर्देशक सिद्धांत सामाजिक क्रांति का आधार हैं, क्योंकि ये भारत की जनता को सकारात्मक स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। ये लोगों को विषम परिस्थितियों का सामना करने के लिए प्रेरित करते हैं। इन्हीं सिद्धांतों के मार्ग दर्शन में सरकार ने जनता के सर्वांगीण विकास के लिए प्रयास किए हैं।

4. कल्याणकारी राज्य के उद्भव की संभावना (Possibility of the Emergence of Welfare State)- नीति-निर्देशक सिद्धांतों के आर्थिक पक्ष के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनमें से अधिकांश सिद्धांतों का उद्देश्य देश में कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। जस्टिस एच. एन. सप्रू के शब्दों में "राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में वह समस्त दर्शन मौजूद है, जिसके आधार पर किसी भी आधुनिक समाज में कल्याणकारी राज्य की नींव रखी जा सकती है।"

5. अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण (Important from International View-point)- नीति-निर्देशक सिद्धांत अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। संविधान के अनुच्छेद 51 में दिए गए नीति-निर्देशक सिद्धांतों पर भारत की गुट निरपेक्षत की नीति आधारित है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा को बढ़ावा देने में भारत की इस नीति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

6. नागरिकों के लिए एक पैमाना (A Yardstick for Citizens)- नीति-निर्देशक सिद्धान्तों की उपयोगिता इस बात में भी है कि ये नागरिकों के लिए वह कसौटी बन जाते हैं, जो उनके मताधिकार के प्रयोग की दिशा निश्चित करती है। चुनाव से पूर्व सभी राजनीतिक दल मतदाताओं के सामने चुनाव घोषणा-पत्रों द्वारा अपना-अपना कार्यक्रम रखते हैं। जनता नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के आधार पर किसी भी राजनीतिक दल को परख सकती हैं।

7. संविधान की व्याख्या के लिए सहायक (Helpful for the Interpretation of the Constitution)- न्यायपालिका ने संविधान की व्याख्या करते समय नीति-निर्देशक सिद्धांतों को दृष्टि में रखा है। न्यायपालिका ने सदैव इन सिद्धांतों को संविधान-निर्माताओं एवं सम्पूर्ण राष्ट्र की इच्छा का प्रतीक माना है। ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य मुकदमे (1950) के दौरान सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जस्टिस कानिया ने कहा था, "राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांत संविधान के भाग हैं। इस कारण ये संपूर्ण राष्ट्र के विवेक के प्रतीक हैं; न कि बहुमत दल की इच्छा के प्रतीक। इन्हें उस संविधान सभा द्वारा प्रकट किया गया है, जिसको संपूर्ण देश के लिए सर्वोच्च एवं स्थायी कानून बनाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया था।"

8. शैक्षणिक महत्व (Educational Significance)- नीति-निर्देशक सिद्धांतों की विभिन्न विद्वानों ने तरह-तरह की आलोचनाएं की हैं लेकिन इसके बावजूद भी अनेक देशों के संविधानों में इस तरह के सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है। भारतीय संविधान में भी इन सिद्धांतों को महत्व दिया गया है क्योंकि ये सिद्धांत केन्द्र एवं राज्य सरकारों का मार्ग-दर्शन करते हैं।

9. सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना (Establishment of Social and Economic Democracy)- नीति-निर्देशक सिद्धांतों में सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र का आदर्श छिपा है। ये देश में सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना का प्रमुख साधन हैं। देश में तब तक राजनीतिक लोकतंत्र स्थापित नहीं हो सकता है, जब तक कि सामाजिक-आर्थिक

लोकतंत्र साकार न हो जाए।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के पीछे जनमत की शक्ति है। इसी कारण सरकार ने अनेक नीति-निर्देशक सिद्धांतों को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया किन्तु आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण इनका सफल क्रियान्वयन नहीं हो पाया।

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों का क्रियान्वयन (Implementation of Directive of Principles State Policy)

26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू होने के पश्चात् केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने नीति-निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए अनेक कदम उठाए; जैसे-

1. 1950 में योजना आयोग की स्थापना की गयी, जिससे कि देश का नियोजित तरीके से विकास हो सके। इस आयोग द्वारा निर्मित पंच वर्षीय योजनाओं का उद्देश्य सामाजिक आर्थिक न्याय की प्राप्ति और आय, प्रतिष्ठा एवं अवसर की असमानताओं को कम करना है।

2. सभी राज्यों में भूमि सुधार कानून निर्मित किए गए, जिससे कि कृषकों की स्थिति में सुधार हो सके; जैसे- (1) बिचौलियों, जैसे -जमींदार, जागीरदार, इनामदार आदि की समाप्ति।

(ii) भूमि सीमांकन व्यवस्था।

(iii) अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों में वितरण।

3. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, (1948), बोनस अधिनियम (1965), ठेका श्रम (विनियमन एवं उत्पादन) अधिनियम (1970) बाल श्रम (प्रतिषेध एवं विनियमन) अधिनियम (1986), बलात् श्रम पद्धति (उत्पादन) अधिनियम (1976), कारखाना अधिनियम (1948) खान अधिनियम (1952) आदि को श्रमिक वर्गों के हितों के संरक्षण के लिए लागू किया गया। 2006 में सरकार ने बाल श्रम पर प्रतिबंध लगा दिया।

4. सामान्य वस्तुओं के प्रोत्साहन हेतु वित्तीय संसाधनों के प्रयोग के लिए कुछ पैमाने तय किए गए। इनमें शामिल है-जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण (1956), 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण (1969) सामान्य बीमा का राष्ट्रीयकरण (1971), शाही खर्च (प्रिवी पर्सा) की समाप्ति (1971) आदि।

5. ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों की स्थापना के लिए खादी एवं ग्राम उद्योग बोर्ड, खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग लघु उद्योग बोर्ड, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम हैंडलूम बोर्ड हथकरघा बोर्ड. सिल्क बोर्ड आदि की स्थापना की गयी।

6. त्रि-स्तरीय (ग्राम, खण्ड एवं जिला) पंचायती राज व्यवस्था लागू की गयी, ताकि गांधी जी का सपना साकार हो सके। 73वें संशोधन अधिनियम (1992) द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया गया।

7. शैक्षणिक संस्थानों सरकारी नौकरियों एवं जन प्रतिनिधि संस्थाओं में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए सीटें आरक्षित की गयीं।

8. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 को प्रभाई बनाया गया ताकि इन्हें शोषण से मुक्ति एवं सामाजिक न्याय मिले।

9. 65वें संशोधन अधिनियम (1990) के तहत अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की गयी, ताकि इनके हितों की रक्षा हो सके। 89वें संशोधन अधिनियम, (2003) द्वारा इस संयुक्त आयोग को दो पृथक निकायों अर्थात् राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग में विभक्त किया गया।

10. महिला कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए प्रसूति सुविधा अधिनियम (1961) और समान पारिश्रमिक अधिनियम (1976) बनाए गए।

11. कई राज्यों में 65 वर्ष से अधिक आयु वाले लोगों के लिए वृद्धावस्था पेंशन शुरू की गयी।

12. राष्ट्रीय स्तर पर विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, (1987) का निर्माण किया गया ताकि गरीबों को निःशुल्क एवं समुचित कानूनी सहायता प्राप्त हो सके। इसके अलावा, समान न्याय को बढ़ावा देने के लिए लोक अदाल का गठन किया गया। लोक अदालतें ऐसे संवैधानिक फोरम हैं, जो कानूनी विवादों का निपटारा करती हैं। इनके निर्णय बाध्यकारी होते हैं और इनके निर्णयों के विरुद्ध किसी न्यायालय में अपील नहीं की जाती है।

13. आपराधिक प्रक्रिया संहिता (1973) द्वारा कार्यकारिणी को विधिक सेवा से पृथक किया गया। इससे पूर्व जिल प्राधिकारी, जैसे-जिलाधीश, उप-मंडल अधिकारी, तहसीलदार आदि विधिक शक्तियों का प्रयोग करते थो विधिक शक्तियों को कार्यकारी शक्तियों से अलग कर न्यायिक मजिस्ट्रेटों के हाथों में सौंप दिया गया।

14. कुछ राज्यों में गायों, बछड़ों एवं बैलों के वध पर कानूनी प्रतिबंध लगाया गया; जैसे महाराष्ट्र एवं हरियाणा।

15. वन्य जीवों एवं वनों की सुरक्षा के लिए वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम (1972) एवं वन (सरक्षण) अधिनियम, (1980) को प्रभावी बनाया गया। जल एवं वायु अधिनियमों के तहत केन्द्र एवं राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड स्थापित किए गए, जो पर्यावरण की सुरक्षा एवं सुधार के लिए कार्यरत हैं।

16. सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार के लिए देश भर में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र एवं अस्पताल स्थापित किए गए। इसके अलावा, खतरनाक बीमारियों; जैसे मलेरिया, तपेदिक, कुष्ठ, एड्स, कैंसर, फाइलेरिया, जापानी बुखा आदि को समाप्त करने के लिए विशेष योजनाएं प्रारंभ की गयीं।

17. सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952), पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (1974), एकीकृत ग्रामीण विकास योजना (1978). जवाहर रोजगार योजना (1989), स्वर्ण जयंती ग्राम स्व-रोजगार योजना (1999) संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (2001), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (2006) आदि कार्यक्रम मानक जीवर जीने के उद्देश्य से प्रारंभ किए गए।

18. सरकार द्वारा अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए गुट निरपेक्षता एवं पंचशील को नीतिय अपनायी गयीं।

19. 86वें संशोधन अधिनियम (2002) के अन्तर्गत सरकार द्वारा 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गयी। हरियाणा में लड़कियों के लिए निःशुल्क स्नातक शिक्ष की व्यवस्था की गयी। इतना ही नहीं. देश भर में छोटे बच्चों के लिए निःशुल्क दोपहर के भोजन की योजन लागू की गयी।

केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा उपर्युक्त कदम उठाए जाने के बावजूद भी, नीति-निर्देशक सिद्धांतों को प्रभावी तरीके से लागू नहीं किया जा सका है।

मौलिक अधिकारों एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में अन्तर (Difference between Fundamental Rights and Directive Principles of State Policy)

यदि मौलिक अधिकारों के माध्यम से संविधान निर्माताओं ने देश में राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना की आशा की थी तो राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों द्वारा वे देश में आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करना चाहते थे। इस दृष्टि से मौलिक अधिकार एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत एक-दूसरे के पूरक है। इसके बावजूद भी मौलिक अधिकारों एवं राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों में निम्नलिखित अन्तर पाए जाते हैं-

1. नीति-निर्देशक सिद्धांत सकारात्मक निर्देश हैं; जब कि मौलिक अधिकार नकारात्मक आज्ञाएं हैं (Directive Principles are positive direction whereas Fundamental Rights are negative injunctions) - मौलिक अधिकार

निषेधात्मक हैं, क्योंकि ये राज्य को कुछ विशिष्ठ काम काम करने से रोकते हैं। संविधान के अनुसार राज्य मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण नहीं कर सकता है। इसके विपरीत राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत सकारात्मक निर्देश हैं। ये राज्य का कुछ काम करने के लिए मार्ग-दर्शन करते हैं।

2. मौलिक अधिकार न्यायसंगत हैं, नीति-निर्देशक सिद्धांत नहीं (Fundamental Rights are justiciable, Directive Principles are not)- मौलिक अधिकार न्यायसंगत हैं अर्थात् ये न्यायालयों द्वारा लागू किए जा सकते है, किन्तु नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के पीछे न्यायालयों की शक्ति नहीं है। मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को दण्ड दिया जाता है। यदि कोई कानून या शासकीय आदेश मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो न्यायपालिका उसे असंवैधानिक घोषित कर देती है। इसके विपरीत, यदि सरकार नीति-निर्देशक सिद्धांतों में दिए गए उपबंधों को लागू करने में असफल रहती है, तो इसके विरुद्ध कोई कानून कार्रवाई नहीं की जा सकती है।

3. मौलिक अधिकार व्यक्तियों के अधिकार हैं, जब कि नीति-निर्देशक सिद्धांत राज्य के कर्तव्य हैं (Fundamental Rights are rights of people whereas Directive Principles are duties of State)- मौलिक अधिकारों एवं नीति-निर्देशक सिद्धांतों में एक भेद यह भी है कि मौलिक अधिकार व्यक्तियों, नागरिकों अथवा व्यक्ति-समूहों के अधिकार हैं, जब कि नीति-निर्देशक सिद्धांत राज्य द्वारा पूरा किए जाने वाले कर्तव्य हैं। अन्य शब्दों में, मौलिक अधिकार व्यक्ति को प्राप्त कुछ निश्चित सुविधाएं हैं; जब कि नीति-निर्देशक सिद्धांत राज्य द्वारा अपनाए जाने वाले सिद्धांत हैं अर्थात् राज्य से इनके पालन की आशा की जाती है।

4. मौलिक अधिकार प्राप्त किए जा चुके हैं; किन्तु नीति-निर्देशक सिद्धांतों को प्राप्त करना अभी बाकी है (Fundamental Rights have already been attained but Directive Principles are yet to be achieved)- मौलिक अधिकार लोगों को प्राप्त हो चुके हैं; जब कि नीति-निर्देशक सिद्धांत अभी तक लोगों को पूरी तरह प्राप्त नहीं हुए हैं। सरकार नीति-निर्देशक सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास कर रही है और इस दिशा में उसने कुछ उल्लेखनीय प्रयास भी किए हैं; जैसे जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना, बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, कृषि का विकास, न्यायपालिका एवं कार्यपालिका का एक-दूसरे से पृथक्करण आदि।

5. मौलिक अधिकारों का लक्ष्य राजनीतिक लोकतंत्र है; जब कि नीति-निर्देशक सिद्धांतों का लक्ष्य आर्थिक लोकतंत्र है (Fundamental Rights aim at Political Democracy whereas Directive Principles aim at Economic Democracy) - मौलिक अधिकारों का उद्देश्य देश में राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना करना है। इसके विपरीत नीति-निर्देशक सिद्धांतों का उद्देश्य देश में सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की स्थापना करते हुए आर्थिक लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाना है ताकि देश में सही अर्थ में राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना हो सके।

6. नीति-निर्देशक सिद्धांत मौलिक अधिकारों की अपेक्षा गौण है (Directive Principles are Secondan to Fundamental Rights) - नीति-निर्देशक सिद्धांत एवं मौलिक अधिकारों का कानूनी दृष्टि से अध्ययन करने पर विशि होता है कि वर्तमान में नीति-निर्देशक सिद्धांत मौलिक अधिकारों की अपेक्षा गौण हैं, क्योंकि दोनों में पारस्परिक विवाद की स्थिति में मौलिक अधिकार ही प्रभावकारी होंगे।

मौलिक अधिकारों एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में प्राथमिकता का प्रश्न

(Question of Preference between Fundamental Rights and Directive Principles of State Policy)

मौलिक अधिकारों एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में गतिरोध होने पर किसको प्राथमिकता दी जाए? यह एक अति महत्वपूर्ण प्रश्न है। समाजवादी विचारधारा के मानने वालों का विचार है कि मौलिक अधिकारों की अपेक्षा राज्य के निर्देशक सिद्धांतों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसके विपरीत उदारवादी विचारधारा के समर्थकों न्यायमूर्ति एच आर, खन्ना, के, सन्धानम, एन. ए. पालकीवाला आदि का विचार है कि नीति-निर्देशक सिद्धांतों की अपेक्षा मौलिक अधिकारों को प्राथमिकता दी जाए अन्यथा देश में तानाशाही एवं सर्वाधिकारवादी शासन की स्थापना हो जाएगी। संविधान सभा ने भी बहुमत के फैसले

से सर बी.एन राव, जो राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों को प्राथमिकता देते थे. के परामर्श को अस्वीकार कर दिया था। भारतीय संविधान में इस बात का उल्लेख नहीं किया गया है कि इन दोनों में टकराव की स्थिति में दोनों में से किसको प्राथमिकता दी जाएगी। यही कारण है कि इस विषय में सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण समय-समय पर बदलता रहा है।

सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों ने प्रथम चरण में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों की अपेक्षा मौलिक अधिकारों को प्राथमिकता दी है। इस संदर्भ में न्यायालयों द्वारा यह विचार व्यक्त किया गया था कि यदि नीति-निर्देशक सिद्धांत एवं मौलिक अधिकारों के मध्य टकराव हो, तो नीति निर्देशक सिद्धांतों को तभी तक महत्व दिया जा सकता है, जब तक कि ऐसा करने से मौलिक अधिकारों का हनन न होता हो। न्यायमूर्ति सी.आर. दास ने चम्पाकम दोरायजन बनाम मदास राज्य मुकदमे (1951) में फैसला देते हुए कहा था, "राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत, जिन्हें स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 37 द्वारा न्यायालयों में वाद-योग्य नहीं माना गया है, संविधान के तीसरे भाग में दिए गए उपबंधों का अतिक्रमण नहीं करते।

सर्वोच्च न्यायालय की संविधान की यह व्याख्या भूमि सुधार अधिनियमों के क्रियान्वयन में देरी कर सकती थी। संविधान में 1951 में पहला. 1955 में चौथा और 1964 में 17वाँ संशोधन किया गया। किन्तु गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य मुकदमे (1967) में तो सर्वोच्च न्यायालय ने यह तक निर्णय दे दिया कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन ही नहीं कर सकती है। इसके आधार पर केन्द्र सरकार द्वारा लिए गए निर्णयों बैंकों का राष्ट्रीयकरण एवं भूतपूर्व जागीरदारों के प्रिवी पर्सेज की समाप्ति को सर्वोच्च न्यायालय ने अवैध घोषित कर दिया। ऐसे में संसद को संविधान में 24वां, 25वा एवं 29वां संशोधन करना पड़ा। 24वें संशोधन अधिनियम (1971) में संसद को मौलिक अधिकार सहित संविधान के किसी में भाग में संशोधन करने का अधिकार दिया गया।

1971 में संसद ने 25वें संशोधन अधिनियम के द्वारा अनुच्छेद 39 (3) एवं (ब) में निहित निर्देशक सिद्धांतों को अनुच्छे 14, 19 एवं 31 में वर्णित मौलिक अधिकारों की अपेक्षा प्राथमिकता प्रदान की, किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानंद भारती मुकदमे (1973) में यह फैसला दिया कि संसद संविधान में संशोधन तो कर सकती है, किन्तु यह 'संविधान के मूलभूत ढांचे' (Basic Structure of the Constitution) में संशोधन नहीं कर सकती है। न्यायालय ने यह भी माना कि 25वाँ संशोधन संविधान के मूलभूत ढांचे के अन्तर्गत नहीं आता है।

आपातकाल के दौरान लाए गए 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा नीति-निर्देशक सिद्धांतों (भाग IV) की संविधान के अनुच्छेद 14 , 19 एवं 31में वर्णित क्रमशः समानता, स्वतंत्रता एवं सम्पत्ति के मौलिक अधिकारों पर श्रेष्ठता स्थापित की गयी किन्तु मिनर्वा मिल्स मुकदमे (1980) में सर्वोच्च न्यायालय ने 42वें संशोधन अधिनियम की इस व्यवस्था को अनुच्छेद 14, 19 एवं 31 में दिए गए मौलिक अधिकारों को गौण बनाती थी अवैध घोषित कर दिया। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय से नीति-निर्देशक सिद्धांतों की तुलना में मौलिक अधिकारों को प्राथमिकता मिल गयी। स्पष्ट है कि जब तक सर्वोच्च न्यायालय अपने इस निर्णय को नहीं बदलता, तब तक नीति-निर्देशक सिद्धान्तों पर मौलिक अधिकारों की प्राथमिकता स्थापित रहेगी।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के महत्व एवं उपयोगिता का वर्णन कीजिए।

(Discuss the importance and utility of the Directive Principles of State Policy.)

2. भारतीय संविधान में अंकित नीति-निर्देशक सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए। (Explain the Directive Principles mentioned in the Indian Constitution.)

3. राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। किस सीमा तक इनको लागू किया गया है? (Critically examine the Directive Principles of State Policy. How far have they been implemented?)

4. मौलिक अधिकारों एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में अन्तर बताइए। क्या निर्देशक सिद्धांतों को मौलिक अधिकारों से श्रेष्ठता दी जा सकती है? (Make a distinction between Fundamental Rights and Directive Principles of State Policy. Can Directive Principles be given precedence over Fundamental Rights?)

5. मौलिक अधिकारों एवं निर्देशक सिद्धांतों में अन्तर बताएं। महत्वपूर्ण निर्देशक सिद्धांतों का वर्णन करें। (Distinguish between Fundamental Rights and Directive Principles of State Policy. Enumerate important Directive Principles.)

6. राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों के स्वरूप एवं उपयोगिता का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। नीति-निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए कौन-से कदम उठाए गए है? (Briefly explain the nature and utility of Directive Principles of State Policy. What steps have been taken for the implementation of directive principles?)

7. "निर्देशक सिद्धान्तों का कोई महत्व नहीं है" क्या आप इस विचार से सहमत हैं? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दें। (इसमें नीति निर्देशक सिद्धांतों की आलोचना भी लिखनी है।)

UNIT-II

राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति [President and Vice-President]

[*राष्ट्रपति*]

भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 53** के अनुसार, **"संघ की कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होंगी और संविधान के अनुसार इनका प्रयोग उसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से या उसके अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से किया जाएगा।"**

राष्ट्रपति का चुनाव (Election of the President)

संविधान के अनुच्छेद 54 एवं 55 के अनुसार राष्ट्रपति अप्रत्यक्ष रूप से चुना जाता है, क्योंकि उसका चुनाव एक निर्वाचक मंडल (Electoral College) द्वारा किया जाता है। राष्ट्रपति का निर्वाचन समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (System Prepositional Represention) के अनुसार एकल संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote) द्वारा किया जाता है। अनुच्छेद 54 के अनुसार इस निर्वाचकमंडल में — (i) संसद के निर्वाचित सदस्य (ii) राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य एवं (iii) संघीय क्षेत्रों (केंद्र शासित प्रदेशों) की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होंगे।

1. योग्यताएं (Qualifications)- संविधान के अनुच्छेद 58 के अनुसार, राष्ट्रपति पद के लिए निम्नलिखित योग्यताएं होना आवश्यक है-

(क) वह भारत का नागरिक हो।
(ख) वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
(ग) वह लोक सभा के सदस्य का चुनाव लड़ने की योग्यता रखता हो।
(घ) वह लाभ के किसी पद (अन्य संवैधानिक या सरकारी पद) पर आसीन न हो,
(ङ) वह संसद या किसी राज्य विधानमंडल का सदस्य नहीं होना चाहिए। यदि निर्वाचन से पूर्व वह इनमें से किसी एक का सदस्य है, तो निर्वाचन की तिथि से उस सदन में उसका स्थान रिक्त माना जाएगा।
(च) इन योग्यताओं के अतिरिक्त, 7 जून, 1997 को राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश जारी करके यह व्यवस्था की कि उम्मीदवार का नाम निर्वाचक मण्डल के 50 सदस्यों द्वारा प्रस्तावित और 50 सदस्यों द्वारा अनुमोदित किया जाना चाहिए। इसके साथ ही, जमानत की राशि 2500 रुपए से बढ़ाकर 15,000 रुपए कर दी गयी।

2. निर्वाचकों के मतों के मूल्य का निर्धारण (Determination of the Value of Votes of Electors)— संविधान-निर्माता राष्ट्रपति को कार्यपालिका अध्यक्ष नहीं, बल्कि समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधि बनाना चाहते थे। इसके लिए यह आवश्यक था कि चुनाव में भाग लेने वाले विधान सभाओं के सदस्यों और संसद के सदस्यों के मतों में समानता स्थापित हो और यथासंभव सभी राज्यों को समरूप प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। यदि राष्ट्रपति के चुनाव में 'एक व्यक्ति-एक मत' का सिद्धांत अपनाया जाता, तो यह संभव नहीं था, क्योंकि **प्रथम**, तो सभी राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों की संख्या समान नहीं है; और **द्वितीय**, सभी राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या, संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या से बहुत अधिक है।
इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए **अनुच्छेद 55** के अन्तर्गत राज्य विधान सभाओं के सदस्यों और संसद के सदस्यों के मतों का मूल्य (Value) निर्धारित करने के लिए दो अलग-अलग विधियां अपनायी गयी है, जिनका विवरण इस प्रकार है-

(i) राज्य विधान सभा के सदस्यों के मतों का मूल्य (Value of the Vote of Members of a State Legislative Assembly)- इसके लिए संविधान में जो व्यवस्था की गयी है, वह इस प्रकार है-
सर्वप्रथम उस राज्य की जनसंख्या को राज्य विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या से विभाजित (Divide) किया जाएगा। इस विभाजन से जो भागफल (Quotient) आएगा, उसे 1000 की संख्या से विभाजित किया जाएगा। इस विभाजन जो परिणाम आएगा, वह राज्य विधान सभा के एक सदस्य (विधायक) के मत का मूल्य (Value) होगा।

इस विधि को निम्नलिखित सूत्र द्वारा दर्शाया जा सकता है-

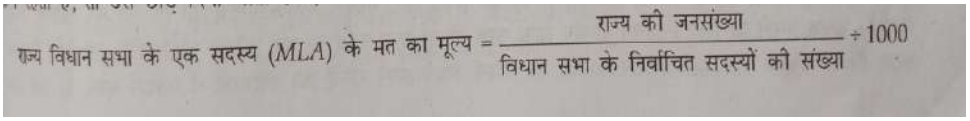

(ii) संसद के सदस्यों के मतों का मूल्य (Value of the Vote of Members of Parliament)- इसके लिए संविधान में जो व्यवस्था की गयी है, वह इस प्रकार है-
सबसे पहले सभी राज्य विधान सभाओं और संघीय क्षेत्रों की विधान सभाओं के सभी निर्वाचित सदस्यों के मूल्यों का जोड किया जाएगा और फिर इसको संसद के निर्वाचित सदस्यों की संख्या से विभाजित किया जाएगा। ऐसा करने पर जो संख्या प्राप्त होगी, वह संसद के एक सदस्य के मत (वोट) का मूल्य (Value) होगा।

इस विधि को निम्नलिखित सूत्र द्वारा दर्शाया जा सकता है —

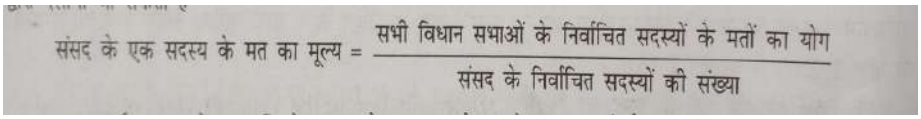

हम जुलाई, 2017 के राष्ट्रपति के चुनाव के उदाहरण से इसको समझ सकते हैं। जुलाई, 2017 में सम्पन्न राष्ट्रपति के चुनाव के समय भारत के 29 राज्यों एवं दो संघीय क्षेत्रों (दिल्ली एवं पुद्दुचेरी) को विधान सभाओं के सदस्यों के मतों का कुल योग 5,49,495 था और संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या 776 थी। इन आंकड़ों पर उपर्युक्त सूत्र प्रकार लागू हुआ-

संसद के एक सदस्य के मत का मूल्य — 549495/776 = 708.085 अर्थात 708

इस प्रकार जुलाई, 2017 के राष्ट्रपति के चुनाव के समय संसद के निर्वाचित सदस्यों के मतों का कुल मूल्य 708 को 776 से गुणा करने पर, 549408 था। इसमें दो संघीय क्षेत्र सहित सभी विधान सभाओं के सदस्यों के मतों का कुल मूल्य 549495 जोड़ देने पर राष्ट्रपति के निर्वाचकमडल में शामिल सदस्यों के मतों का मूल्य 10,98,900 बनता था।

3. अधूरे निर्वाचकमंडल का चुनाव पर प्रभाव (Impact of Incomplete Electoral College on the Election)- अधूरे निर्वाचक मंडल का राष्ट्रपति के चुनाव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । **निर्वाचक मंडल का अर्थ** है कि — किसी विधानसभा की या संसद की कोई सीट खाली हो तो निर्वाचक मंडल अधूरा होता है। सर्वोच्च्च न्यायालय की सात-सदस्य खंडपीठ ने 5 जून, 1974 को यह निर्णय दिया कि राष्ट्रपति के चुनाव को इस आधार पर न तो स्थगित किया जा सकता है और न ही अवैध ठहराया जा सकता है, क्योंकि पदासीन राष्ट्रपति का कार्यकाल पूरा होने से पूर्व नए राष्ट्रपति का चुनाव कराना जरूरी है।

4. मतदान (Polling) — राष्ट्रपति का चुनाव भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा कराया जाता है। इसके लिए राष्ट्रपति का कार्यकाल पूरा होने से लगभग दो महीने पूर्व निर्वाचन आयोग द्वारा चुनाव की घोषणा की जाती है, चुनाव कराने के लिए निर्वाचन आयोग लोक सभा अथवा राज्य सभा के महा सचिव को रिटर्निंग ऑफिसर नियुक्त करता है। मतदान के दिन सभी विधान सभाओं के सदस्य अपने-अपने राज्यों की राजधानी में मतदान करते हैं, जब कि संसद सदस्य नई दिल्ली में मतदान करते हैं। मत-पत्रों पर प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वरीयताएं (Preferences) अंकित होती हैं, ताकि मतदाता उम्मीदवारों के पक्ष में अपनी वरीयताएं दर्शा सकें।

5. मतगणना (Counting of Votes)- राष्ट्रपति के चुनाव के लिए समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत प्रणाली लागू की गयी है। आम तौर पर, इसका प्रयोग बहु-सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों के लिए किया जाता है। राष्ट्रपति के चुनाव के लिए इस प्रणाली को इसलिए अपनाया गया है ताकि निर्वाचित होने वाला उम्मीदवार बास्तव में स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर सके। राष्ट्रपति के चुनाव में विजयी रहे उम्मीदवार को मतों की एक निश्चित संख्या (Quota) प्राप्त करनी

होती है, जिसको निम्नलिखित ***हेयर सूत्र*** के द्वारा तय किया जाता है-

$$\text{मतों की निश्चित संख्या } (Quota) = \frac{\text{वैध मतों की संख्या}}{\text{स्थानों की संख्या} + 1} + 1$$

यदि वैध मतों की संख्या 20,000 है, तो इस सूत्र के आधार पर निर्वाचित होने वाले उम्मीदवार को कम-से-कम 10001 मत अवश्य प्राप्त करने होंगे।
इसके बाद मतों की गणना का कार्य आरम्भ होता है। इसके लिए सबसे पहले उम्मीदवारों को मिली प्रथम वरीयताओं (Preferences) की गणना की जाती है। यदि प्रथम वरीयताओं के आधार पर कोई उम्मीदवार मतों की निश्चित संख्या (कोटा) प्राप्त कर लेता है, तो उसको विजयी घोषित कर दिया जाता है। किन्तु यदि प्रथम वरीयताओं के आधार पर कोई भी उम्मीदवार मतों की निश्चित संख्या (कोटा) प्राप्त नहीं करता है, तो सबसे कम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को प्रतियोगिता से बाहर करके उसके मतों को दूसरी वरीयताओं के आधार पर शेष उम्मीदवारों को हस्तान्तरित कर दिया जाता है और शेष उम्मीदवारों को प्राप्त प्रथम एवं द्वितीय वरीयताओं को जोड़ दिया जाता है। यदि अभी भी कोई उम्मीदवार मतों की निश्चित संख्या (कोटा) प्राप्त करने में सफल नहीं रहता है, तो पुनः सबसे कम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को प्रतियोगिता से बाहर करके उसके मतों को तीसरी वरीयताओं के आधार पर शेष उम्मीदवारों को हस्तान्तरित करके, शेष उम्मीदवारों को प्राप्त मतों की गणना की जाती है। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है, जब तक किसी उम्मीदवार को मतों की निश्चित संख्या (कोटा) प्राप्त नहीं हो जाती है।

6. जुलाई, 2022 का चुनाव (Election of July, 2022)-17वें राष्ट्रपति (16वां कार्यकाल) का चुनाव 18 जुल्य 2022 को सम्पन्न हुआ। इस चुनाव में दो उम्मीदवार मैदान में थे-राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) की श्रीमती द्रोपदी मुर्मु एवं संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (UPA) के श्री यशवन्त सिन्हा। नियमानुसार इस चुनाव में विजयी होने वाले उम्मीदवार को 50 प्रतिशत से अधिक मूल्य के मत प्राप्त करने थे। अतः श्रीमती द्रोपदी मुर्मु विजयी घोषित को गयी, क्योंकि इन्हें 64.03 प्रतिशत और इनके प्रतिद्वन्द्वी श्री यशवन्त सिन्हा को 35.97 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे।

7. चुनाव पद्धति में दोष (Demerits in the Election Method)— राष्ट्रपति की चुनाव में कुछ दोष इस प्रकार हैं, जैसे-

(i) समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली लागू नहीं (No Implementation of Proportional Representation System) — कुछ लोगों का मत है कि राष्ट्रपति के चुना में समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का प्रयोग ही नहीं होता है, क्योंकि इस प्रणाली का प्रयोग बहु-सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों (Multi-Members Constitutencies में किया जाता है; एकल-सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में नहीं।

(ii) अलोकतांत्रिक पद्धति (Un-democratic Method) - भारत में राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचकमंडल द्वारा किया जाता है, जिसमें संसद, सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल हो हैं। अन्य शब्दों में, राष्ट्रपति के चुनाव में भारत की जनता भाग नहीं लेती है, इसलिए यह पद्धति अलोकतांत्रिक पद्धति है।

(ii) अस्पष्ट पद्धति (Ambiguous Method)- कुछ विद्वानों का मानना है कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में प्रयुक्त की जाने वाली पद्धति में कुछ बातें सष्ट नहीं की गयी हैं। उदाहरण के लिए यदि राष्ट्रपति के चुनाव में चार-पाच उम्मीदवार मैदान में हों और पहली वरीयताओं के आधार पर कोई भी उम्मीदवार मतों का कोटा प्राप्त न कर सके और मतदाताओं ने अपना दूसरी वरीयताएँ मत-पत्र में अंकित न की हो, तो तब क्या किया जाएगा? यह बात स्पष्ट नहीं की गयी है।

(iv) जटिल पद्धति (Complex Method)- राष्ट्रपति के चुनाव में प्रयुक्त की जाने वाली पद्धति अत्यन्त जटिल है। यह पद्धति आमतौर पर जनता को समझ नहीं आ पाती है। इसके अलावा हर बार राष्ट्रपति के चुनाव में कुछ मत अवैध हो जाते हैं। उदाहरण के लिए जुलाई, 2002 और जुलाई, 2007 के चुनावों में क्रमशः 174 एवं 74 मत अवैध पाए गए थे।

8. चुनाव-संबंधी विवाद (Dispute concerning Election)- राष्ट्रपति के चुनाव को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

9. पुनःनिर्वाचन (Re-election)- संविधान के अनुच्छेद 57 के अनुसार राष्ट्रपति पद पर आसीन रह चुका व्यक्ति अथवा पदासीन व्यक्ति, राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव लड़ सकता डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने दो बार राष्ट्रपति पद धारण करके इस परम्परा को प्रारम्भ किया कि एक व्यक्ति दो बार राष्ट्रपति का चुनाव लड़ सकता है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के बाद जो भी भारत के राष्ट्रपति रहे, किसी ने फिर से चुनाव नहीं लड़ा।

शपथ (Oath) - संविधान के अनुच्छेद 60 के अनुसार राष्ट्रपति का पद ग्रहण करने वाले व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के सामने निम्नलिखित शपथ लेनी होती है-

वेतन एवं भत्ते (Salary and Allowances)- राष्ट्रपति के वेतन, भत्ते एवं अन्य सुविधाएं समय-समय पर संसद द्वारा तय किए जाते हैं। 1 फरवरी, 2018 को संसद द्वारा लिए गए निर्णय के अनुसार वर्तमान में राष्ट्रपति को ₹5,00,000 मासिक वेतन मिलता है। राष्ट्रपति को रहने के लिए निःशुल्क आवास (राष्ट्रपति भवन) और ₹ 300,000 वार्षिक निजी सचिवालय के भते के रूप में भी दिए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति को ₹ 250,000 मासिक पेंशन भी देय है। राष्ट्रपति को वेतन एवं भते भारत की सचित निधि (Consolidated Fund) से दिए जाते हैं।

विशेषाधिकार (Privileges)- राष्ट्रपति अपने दायित्वों का ठीक से निर्वहन कर सके, इसके लिए उसे निम्नलिखित विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं-
1. राष्ट्रपति को उसके कार्यकाल में किसी आपराधिक मामले में गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है।
2. राष्ट्रपति के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति का उस पर कोई दावा है. तो उस व्यक्ति को दो माह पूर्व नोटिस देकर राष्ट्रपति को सूचित करना होगा।
3. राष्ट्रपति अपने अधिकारों एवं शक्तियों के प्रयोग के लिए किसी न्यायपालिका के प्रति उत्तरदायी नहीं है।

कार्यकाल (Term of Office)- राष्ट्रपति का चुनाव पांच वर्ष के लिए किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 56(1) के अनुसार उसका कार्यकाल पदभार ग्रहण करने के दिन से शुरू होता है। राष्ट्रपति का कार्यकाल पूरा होने से पूर्व नए राष्ट्रपति का चुनाव कराना आवश्यक है, ताकि नया राष्ट्रपति, पदासीन राष्ट्रपति का कार्यकाल पूरा होने से पूर्व पदभार ग्रहण कर सके, किन्तु कार्यकाल समाप्त होने के बाद भी, नए राष्ट्रपति के शपथ लेने तक राष्ट्रपति अपने पद पर बना रह सकता है। राष्ट्रपति चाहे तो अपना कार्यकाल पूरा होने से पूर्व भी अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है या फिर संसद अनुच्छेद 56 के तहत उसके विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताव' पारित करके उसे अपदस्थ कर सकती है।

महाभियोग प्रक्रिया (Impeachment Process) – संविधान के अनुच्छेद 56 के तहत संसद 'संविधान का उल्लंघन' करने पर राष्ट्रपति के विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताव' पारित करके उसे अपदस्थ कर सकती है। संविधान के अनुच्छेद 61 में महाभियोग प्रक्रिया का वर्णन किया गया है, जो निम्नलिखित दो चरणों में पूरी होती है-

1. राष्ट्रपति के विरुद्ध लाए जाने वाले महाभियोग प्रस्ताव पर अभियोग लगाने वाले सदन की समस्त सदस्य-संख्या के कम-से-कम एक-चौथाई सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिएं। उल्लेखनीय है कि इस प्रस्ताव को किसी भी सदन में प्रस्तुत करने के लिए राष्ट्रपति को कम-से-कम 14 दिन का नोटिस दिया जाना जरूरी है। 14 दिन के बाद महाभियोग लगाने वाले सदन के पटल पर इस प्रस्ताव पर विचार किया जाता है। यह प्रस्ताव उस सदन की कुल सदस्य संख्या के कम-से-कम दो-तिहाई बहुमत से पारित होना चाहिए।

2. प्रथम सदन द्वारा महाभियोग प्रस्ताव पारित होने के पश्चात् इसको दूसरे सदन को भेजा जाता है। दूसरा सदन महाभियोग लगाए गए कारणों की जांच या तो स्वयं करता है या इस कार्य के लिए एक विशेष समिति की नियुक्ति कर सकता है। इस सदन में राष्ट्रपति या तो स्वयं उपस्थित होकर या अपने प्रतिनिधि के माध्यम से अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकता है। यदि इस सदन में राष्ट्रपति के विरुद्ध लगाए आरोप सिद्ध हो जाते हैं और सदन अपनी कुल सदस्य-संख्या के कम-से-कम दो-तिहाई बहुमत से

महाभियोग प्रस्ताव स्वीकार कर देता है, तो राष्ट्रपति को अपने पद से तत्काल हटना होता है। भारत में अभी तक किसी भी राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग प्रस्ताव पारित नहीं हुआ है।

उत्तराधिकार (Succession) - संविधान के अनुच्छेद 62 (1) के अनुसार राष्ट्रपति का कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व ही इस पद के लिए निर्वाचन किया जाना चाहिए। किन्तु यदि यह पद राष्ट्रपति की आकस्मिक मृत्यु के कारण अथवा उसके त्याग-पत्र दिए जाने के कारण या फिर संसद द्वारा उसके विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताव' पारित हो जाने के कारण रिक्त हो जाता है, तो अनुच्छद 65(1) के अनुसार कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में उप-राष्ट्रपति इस पद पर आसीन हो जाता है। यदि उस समय उप-राष्ट्रपति का पद भी रिक्त चल रहा हो, तो सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश इस पद पर आसीन होता है। ऐसी स्थिति में, पद खाली होने के छः माह के भीतर निर्वाचन कराकर राष्ट्रपति पद को पुनः भरा जाता है। राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन के आकस्मिक निधन के उपरान्त राष्ट्रपति के पद पर कार्यरत उप-राष्ट्रपति वी.वी. गिरि द्वारा 20 जुलाई, 1969 को अपने पद से त्याग-पत्र देने के बाद सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जस्टिस एम. हिदायतुल्ला राष्ट्रपति का चुनाव होने तक इस पद पर आसीन रहे थे।

DELTA Pg No.

राष्ट्रपति की शक्तियाँ एवं कार्य

राज्य के अध्यक्ष के रूप में राष्ट्रपति को संविधान द्वारा शक्तियां प्रदान की गयी है राष्ट्रपति की शक्तियों को निम्नलिखित दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते है

सामान्यकालीन शक्तियां : राष्ट्रपति की

(i) संकटकालीन शक्तियों को निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जा सकता है :-

(A) कार्यपालिका एवं प्रशासनिक शक्तियां :- संविधान के अनुच्छेद 53 में संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और संविधान के अनुसार इनका प्रयोग उसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से या उसके अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से किया जाएगा।

• उच्च अधिकारियों की नियुक्ति :- कार्यपालिका अध्यक्ष के रूप में राष्ट्रपति अनेक उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करता है वह प्रधानमंत्री की सलाह से अन्य मंत्रियों राज्यपाल, महान्यायवादी, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों आदि और भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों की नियुक्ति करता है इन आयोगों में नीति आयोग, निर्वाचन आयोग, वित आयोग भाषा आदि आयोग शामिल है।

• प्रशासन संबंधी शक्तियां :- अमेरिका के राष्ट्रपति की भाँति भारत के राष्ट्रपति को प्रशासनिक शक्तियां प्रदान नहीं की गयी है किंतु प्रशासन का औपचारिक मुखिया होने के नाते, भारतीय संघ का प्रशासन उसके नाम से चलाया जाता है प्रशासनिक विभागों के अधिकारियों की नियुक्ति करता है। संक्षेप राष्ट्रपति देश के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है।

• राज्य सरकारों को निर्देश :- राष्ट्रपति राज्य सरकारों को कानून के उचित पालन और राष्ट्रीय एवं सैनिक महत्व के विषयों की सुरक्षा के लिए आवश्यक निर्देश दे सकता है।

• संघीय क्षेत्रों के प्रशासन पर नियंत्रण :- संविधान के अनुसार संघीय क्षेत्रों के प्रशासन राष्ट्रपति को दिया जाता है क्योंकि ये क्षेत्र केंद्र द्वारा शासित होते हैं।

• सैनिक शक्तियां :- संविधान के अनुच्छेद 53(2) के अनुसार राष्ट्रपति भारतीय सेनाओं का मुख्य सेनापति है। किंतु वह इस शक्ति का प्रयोग कानून के अनुसार करता है। राष्ट्रपति सेना के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करता है। वह राष्ट्रीय रक्षा समिति का अध्यक्ष होता है।

2. वैधानिक शक्तियां :- संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। राज्य सभा, लोकसभा एवं राष्ट्रपति तीनों से मिलकर संसद का निर्माण होता है। राष्ट्रपति की वैधानिक शक्तियां निम्नलिखित रूप से है-

(i) संसद का अधिवेशन आहूत करना :- संविधान के अनुच्छेद 85 के तहत राष्ट्रपति संसद के प्रथम अधिवेशन आहूत करता है वह संसद के अधिवेशनों की समाप्ति भी करता है।

(ii) संसद में राष्ट्रपति का अभिभाषण :- संविधान के अनुच्छेद 87 के तहत राष्ट्रपति प्रति वर्ष संसद के प्रथम अधिवेशनों के प्रारंभ में दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन को संबोधित करता है राष्ट्रपति का भाषण अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि इसमें

शासन संबंधी नीतियों का उल्लेख होता है।

(iii) अध्यादेश की घोषणा :- अनुच्छेद 123(1) के अधीन जब संसद का अधिवेशन न चल रहा तो राष्ट्रपति अध्यादेश की घोषणा कर सकता है यदि ऐसा करना आवश्यक है उसके द्वारा जारी अध्यादेश को कानून जैसी शक्ति प्राप्त होती है।

(iv) विधेयकों को स्वीकृति :- संविधान के अनुच्छेद 111 में संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित होने के बाद भी कोई विधेयक तब तक कानून का रूप ग्रहण नहीं करता जब तक राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति प्रदान न कर दे। राष्ट्रपति चाहे तो किसी विधेयक को अपनी स्वीकृति देने से इनकार कर सकता है परंतु राष्ट्रपति की निषेधाधिकार की शक्ति निरपेक्ष नहीं है।

(v) लोकसभा का विघटन :- संविधान के अनुच्छेद 85 द्वारा राष्ट्रपति को कार्यकाल पूरा होने से पूर्व लोक सभा को भंग करने की शक्ति प्रदान की गई है राष्ट्रपति यह कार्य प्रधानमंत्री की सिफारिश पर ही करता है राष्ट्रपति द्वारा इस शक्ति का कई बार प्रयोग किया जा चुका है। उदाहरण के लिए 27 दिसंबर 1970 में राष्ट्रपति वी. वी. गिरि ने प्रधान मंत्री के परामर्श पर लोक सभा भंग कर दी थी

3. वित्तीय शक्तियां :- राष्ट्रपति को वित्तीय क्षेत्र में भी कई महत्वपूर्ण शक्तियां प्राप्त है जैसे :

(i) बजट का प्रस्तुतीकरण :- राष्ट्रपति का कार्य यह है वह वित्तीय वर्ष प्रारंभ होने से पूर्व वित्त मंत्री द्वारा बजट एवं पूरक बजट संसद के समक्ष प्रस्तुत कराए। ये बजट बारी-बारी से संसद दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत किए जाते

वित्त आयोग की नियुक्ति :- राष्ट्रपति को संविधान के अनुच्छेद २४० के अनुसार प्रत्येक पांच वर्ष में एक आयोग नियुक्त करने की शक्ति है जो राज्य की वित्तीय व्यवस्था का निर्धारण करता है

(iii) धन विधेयक को पूर्व स्वीकृति :- संविधान के अनुसार सरकार को धन विधेयक को संसद में प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति की स्वीकृति लेनी होती है क्योंकि सरकार को देश की संचित निधि से धन निकालने के लिए राष्ट्रपति ही स्वीकृति देता है।

4. न्यायिक शक्तियां :- न्यायिक शक्तियां निम्न-लिखित प्रकार से है।

(i) राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशों एवं अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है।

(ii) राष्ट्रपति सैनिक न्यायालय द्वारा दिए गए दंड के सभी मामलों में जहां पड़े किसी ऐसे कानून के विरुद्ध दिया गया हो जो संघ के क्षेत्राधिकार में आता है।

(iii) अनुच्छेद 143 के तहत राष्ट्रपति सार्वजनिक महत्व के किसी प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श मांग सकता है।

5. राज्यों से संबंधित शक्तियां :- (i) यदि कोई संसद कोई ऐसा कर लगाने जा रही है जो राज्यों को प्रभावित करता हो तो संसद के लिए राष्ट्रपति से इसकी पूर्व-स्वीकृति लेना आवश्यक है।

(ii) राष्ट्रपति किसी राज्य सरकार को उन विषयों से संबंधित सौंप सकता है, जो सामान्यतः केंद्र सरकार को करने होते हैं

राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ
(Emergency Powers of President)

⇒ देश को कभी भी संकट का सामना करना पड़ सकता है। इसी को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रपति को संकटकालीन शक्तियाँ प्रदान की।

राष्ट्रपति निम्न स्थितियों में संकट काल की घोषणा कर सकता है —

1) युद्ध, बाहरी आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह से उत्पन्न संकट के समय (अनुच्छेद 352)

2) राज्यों में संवैधानिक तंत्र/मशीनरी के विफल होने पर उत्पन्न संकट के समय (अनुच्छेद 356)

3) वित्तीय संकट की स्थिति में (अनुच्छेद 360)

1) युद्ध, बाहरी आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह से उत्पन्न संकट → (अनुच्छेद 352) में यह प्रावधान है कि यदि राष्ट्रपति को ऐसा लगे कि युद्ध, बाहरी आक्रमण या आंतरिक गड़बड़ी के कारण देश में या देश के किसी भाग में संकट उत्पन्न हो गया है या संकट उत्पन्न होने की संभावना है, तो वह संकट काल की घोषणा कर सकता है। ऐसी घोषणा करने पर राष्ट्रपति को कुछ विशेष शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

- 1978 से पहले 'सशस्त्र विद्रोह' शब्द के स्थान पर आंतरिक गड़बड़ी शब्द था।
- 1978 में 44वें संविधान संशोधन द्वारा 'आंतरिक गड़बड़ी' शब्द को हटाया गया और उसके स्थान पर 'सशस्त्र विद्रोह' शब्द लिखा गया।

44वें संशोधन के बाद से अनुच्छेद 352 के तहत घोषित संकट काल या आपात काल के बारे में प्रमुख बातें इस प्रकार हैं -

i) राष्ट्रपति संकट काल की घोषणा मंत्रिमंडल की लिखित सलाह पर ही कर सकता है।

ii) इस घोषणा का 1 महीने के भीतर संसद के दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग विशेष बहुमत (कुल सदस्य संख्या के स्पष्ट बहुमत और उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई (2/3) बहुमत) से अनुमोदन किया जाना आवश्यक है।
यदि लोक सभा भंग है, तो राज्य-सभा अपनी स्वीकृति प्रदान करेगी। नयी लोक-सभा बनने पर लोक-सभा का प्रथम अधिवेशन प्रारंभ होने के 30 दिन के भीतर लोक सभा द्वारा इस घोषणा को स्वीकृति देना जरूरी है, अन्यथा यह स्वतः समाप्त हो जाती है।

iii) संकट काल की घोषणा संपूर्ण देश में या इसके किसी भाग में की जा सकती है।

iv) संकटकालीन घोषणा 6 महीने के लिए प्रभावी होती है, परंतु संसद प्रस्ताव पारित करके इस अवधि को 6 महीने के लिए बढ़ा सकती है।

v) संकट काल को समाप्त करना → संकटकालीन घोषणा समाप्त करने के लिए लोक-सभा के 1/10 सदस्यों की मांग पर 14 दिन के भीतर उसकी बैठक बुलाई जाएगी। यदि लोक सभा साधारण बहुमत से संकटकालीन घोषणा समाप्त करने-संबंधी प्रस्ताव को पारित कर दे, तो यह घोषणा समाप्त हो जाएगी।

vi) 44वें संशोधन अधिनियम के तहत संकट काल की घोषणा को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

अनुच्छेद 352 के तहत संकटकालीन/आपातकालीन घोषणा के प्रभाव -

i) संकट काल में संसद लोक सभा का कार्यकाल बढा सकती है, यह एक साल के लिए बढाया जा सकता है और आपातकाल समाप्त होने के बाद 6 महीने तक जारी रह सकता है।

ii) संसद को राज्य सूची में दिए गए विषयों पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। हालाँकि राज्य विधानमंडल निलंबित नहीं होते हैं।

iii) 44वें संशोधन अधिनियम (1978) के अनुसार 'युद्ध' अनु. 358 अथवा 'बाहरी आक्रमण' के आधार पर घोषित आपात के अंतर्गत या संकट काल की स्थिति में ही अनुच्छेद 19 में दी गई स्वतंत्रताएँ निलंबित होती है। और किसी आधार पर नहीं।

iv) 44वें संशोधन से पहले अनु. 359 के अंतर्गत संकट काल के दौरान नागरिकों के मौलिक अधिकार प्रभावहीन हो जाते थे। व्यक्ति इन्हें लागू करवाने के लिए न्यायपालिका का सहारा नहीं ले सकता था। परंतु अब 44वें संशोधन के अनुसार अनुच्छेद 20 एवं 21 में वर्णित अधिकारों के क्रियान्वयन को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति अब संकट काल के दौरान इनके क्रियान्वयन के लिए न्यायपालिका का सहारा ले सकता है।

v) राष्ट्रपति राज्य सरकारों को कार्यकारिणी शक्ति के प्रयोग के विषय में आवश्यक निर्देश दे सकता है।

अब तक तीन बार इस प्रकार के आपात काल/संकट काल (Emergency) की घोषणा की गई है -

i) 1962 में भारत-चीन युद्ध के समय (जनवरी 1968 तक जारी रहा)
ii) 1971 में भारत-पाक युद्ध के समय (3 Dec 1971 - 21 मार्च 1977)
iii) 25 जून 1975 को की गई - 21 मार्च 1977 तक जारी रही।

2) राज्यों में संवैधानिक तंत्र / मशीनरी के विफल होने पर संकट (Emergency Arising out of failure of Constitutional Machinery in a State) - (इस घोषणा के तहत जुड़ी हुई शक्ति को 'राष्ट्रपति शासन' भी कहा जाता है।)

⇒ संविधान के अनुच्छेद 356 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को राज्यपाल की रिपोर्ट या किसी अन्य स्त्रोत से यह विश्वास हो जाए कि - राज्य में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि शासन संविधान के उपबंधों या प्रावधानों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है, तो वह उस राज्य में संकट काल / आपात काल की घोषणा कर सकता है।

संकट काल की घोषणा होने पर राज्य सरकार भंग कर दी जाती है और राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो जाता है।

- इस घोषणा को दो महीने के भीतर संसद के दोनों सदनों के द्वारा स्वीकृति मिलना आवश्यक है, अन्यथा यह 2 महीने बाद अपने आप ही समाप्त हो जाएगी।
- यह घोषणा 6 महीने के लिए लागू रहती है लेकिन संसद इसे प्रस्ताव पास करके 6 महीने के लिए बढ़ा भी सकती है।

  अतः यह घोषणा एक वर्ष तक लागू रह सकती है।
- युद्ध, बाहरी आक्रमण आदि की स्थिति में अगर अनुच्छेद 352 लागू है तथा चुनाव आयोग यह प्रमाणित कर दे कि राज्य में अभी चुनाव करवाने संभव नहीं है, तो यह घोषणा 1 साल से अधिक भी जारी रह सकती है।

अनु. 365 के अंतर्गत यदि राज्य सरकार केंद्र सरकार के निर्देशों का पालन न करे या इन्हें लागू करने में असफल रहे तो

तो राष्ट्रपति उस राज्य सरकार को भंग करते हुए संकट काल की घोषणा कर सकता है।

घोषणा की प्रभाव → अनुच्छेद 356 के अंतर्गत की गई संकट काल की घोषणा प्रभाव निम्नलिखित हैं —

1) राष्ट्रपति उस राज्य के प्रशासन को अपने हाथ में ले सकता है।

2) राष्ट्रपति यह घोषणा कर सकता है कि राज्य विधानमंडल की शक्तियाँ संसद द्वारा प्रयोग की जाएंगी।

3) जब संसद का अधिवेशन न चल रहा हो तो, राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि (Consolidated fund) से खर्च करने का आदेश दे सकता है, किंतु ऐसे व्यय की मंजूरी संसद से लेना आवश्यक है।

4) राष्ट्रपति राज्य कर्मचारियों को विशेष दायित्व सौंप सकता है।

→ अनु. 356 के अंतर्गत की गई संकट काल की घोषणा को उच्च न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

वित्तीय संकट →

अनु. 360 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गयी है, कि देश की वित्तीय स्थिरता अथवा साख को खतरा उत्पन्न हो गया है, तो वह वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है।

→ संसद द्वारा इस घोषणा की स्वीकृति 2 महीने के अंदर की जानी चाहिए।

→ यदि इस समय लोक सभा भंग कर दी गई हो, तो राज्य सभा इसे अपनी स्वीकृति दे सकती है।

→ नई लोक सभा की प्रथम बैठक के पहले 30 दिनों में इस घोषणा की स्वीकृति अनिवार्य है।

घोषणा के प्रभाव –

i) राष्ट्रपति सुप्रीम कोर्ट तथा हाई कोर्ट के जजों सहित सरकारी कर्मचारियों के वेतन में कटौती का आदेश जारी कर सकता है।

ii) राष्ट्रपति राज्यों को ऐसे निर्देशों का पालन करने के लिए कह सकता है, जो देश की वित्तीय स्थिरता को बनाए रखने के लिए आवश्यक हो।

iii) राष्ट्रपति केंद्र व राज्य के मध्य आय के वितरण में परिवर्तन कर सकता है।

iv) राष्ट्रपति राज्य विधानमंडलों को, उनके द्वारा पारित किए गए वित्त विधेयकों को अपनी स्वीकृति भेजे जाने का आदेश दे सकता है।

→ अभी तक एक बार भी देश में वित्तीय संकट की घोषणा नहीं की गयी है।

Date
DELTA Pg No.

संकट कालीन शक्तियों का मूल्यांकन

संकटकालीन शक्तियों की आलोचना निम्नलिखित प्रकार से की गई है -

(i) संकट कालीन शक्तियों का दुरुपयोग होने की संभावना ⇒ राष्ट्रपति युद्ध, बाह्य आक्रमण के उत्पन्न होने से पूर्व भी संकट काल की घोषणा कर सकता है, राष्ट्रपति की संकट कालीन शक्तियों का राजनीति उद्देश्यों के लिए दुरुपयोग किया जा सकता है।

(ii) संघात्मक व्यवस्था के लिए खतरा ⇒ भारतीय संविधान इस तरह बनाया गया है कि यह सामान्य काल में संघात्मक व्यवस्था के रूप में और युद्ध एवं अन्य संकट कालों में एकात्मक व्यवस्था के रूप में कार्य करे।

(iii) मौलिक अधिकारों का निलंबन ⇒ संकटकालीन शक्तियां लोकतंत्र की विरोधी है क्योंकि जैसे ही संकट काल की घोषणा होती है नागरिकों के मौलिक अधिकार निलंबित कर दिए जाते है।

(iv) न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए नकारात्मक प्रावधान ⇒ न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए न्यायाधीशों को वेतन एवं भत्ते दिए जाते है लेकिन वित्तीय संकट काल के दौरान उनके वेतन एवं भत्ते रोक दिए जाते है।

संकटकालीन शक्तियों की औचित्यता

संकटकालीन शक्तियों के संविधान में शामिल करने के मुख्य कारण इस प्रकार है -

(i) समग्र संविधान का निर्माण हो रहा था उस समय भारत की आर्थिक दशा ठीक नहीं थी इसीलिए संविधान निर्माताओं ने देश के संविधान में वित्तीय संकट काल की व्यवस्था की।

ऐतिहासिक अनुभव :- राष्ट्रपति को संकटकालीन शक्तियों को संविधान में शामिल करके संविधान निर्माताओं ने केंद्र सरकार को मजबूत करने का प्रयास किया है। देश में जब भी केंद्रीय सत्ता कमजोर हुई विघटन शक्तियाँ सक्रिय हो गयी।

(ii) न्यायपालिका का नियंत्रण :- संविधान के अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता के कारण उपन्न संकट काल की घोषणा को सम्बंधित उच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। अनुच्छेद 352 के तहत घोषित संकट काल को भी न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

(iii) राष्ट्रपति एक संवैधानिक मुखिया है :- (जो यह मानते हैं कि) संकट काल के समय राष्ट्रपति तानाशाह बन सकता है वे भारत के संविधान के स्वरूप को नहीं समझते हैं। संविधान द्वारा भारत में संसदीय शासन प्रणाली लागू की गयी है। इस नाते राष्ट्रपति देश का संवैधानिक मुखिया है। वैसे भी 42वें एवं 44वें संशोधन अधिनियम के तहत राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य है, वह अधिक-से-अधिक एक बार मंत्रि-परिषद को सलाह मानने से इनकार कर सकता है।

क्या राष्ट्रपति आपातकाल में तानाशाह बन सकता है?

राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों को देखते हुए यह प्रश्न उठता है कि क्या राष्ट्रपति आपातकाल में तानाशाह बन सकता है? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि नहीं, राष्ट्रपति संकटकाल में तानाशाह नहीं बन सकता है। क्योंकि उसकी आपातकालीन (या संकटकालीन) शक्तियों पर कुछ प्रतिबंध हैं, जो इस प्रकार हैं -

i) 44वें संशोधन अधिनियम 1978 के अनुसार

राष्ट्रपति अनुच्छेद 352 के तहत आपातकालीन घोषणा तभी कर सकता है, जब मंत्रिमंडल उसे उसके लिए लिखित में सलाह दे।

ii) राष्ट्रपति द्वारा की गई संकटकालीन घोषणाओं पर एक माह या दो महीने में संसद की मंजूरी प्राप्त करना अनिवार्य है अन्यथा स्वीकृति नहीं मिलने पर ये घोषणाएं अपने-आप ही समाप्त हो जाती है।

iii) यदि राष्ट्रपति संकट काल में अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करता है तो संसद उसे 'महाभियोग प्रस्ताव' के द्वारा पद से हटा सकती है।

iv) अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति की राज्य सरकार को भंग करने की घोषणा को राज्य उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

v) लोक सभा साधारण बहुमत से प्रस्ताव पारित करके राष्ट्रीय संकट काल की घोषणा समाप्त कर सकती है।

[राष्ट्रपति की स्थिति]

1976 से पूर्व राष्ट्रपति की स्थिति के बारे में दो प्रकार के विरोधी विचार प्रचलित थे।

कुछ विद्वानों का मानना था कि राष्ट्रपति राज्य का वास्तविक अध्यक्ष है। अपने पक्ष में वह अनुच्छेद 53 का हवाला देते थे, जिसके अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होंगी, जिनका प्रयोग वह या तो स्वयं करेगा या अपने अधीन अधिकारियों के माध्यम से करेगा।

दूसरे पक्ष के विद्वानों का मत था कि भारत का राष्ट्रपति केवल संवैधानिक अध्यक्ष है और इस कारण उसके पास बनाममात्र

की शक्तियाँ है। ये अपने समर्थन में संविधान के अनुच्छेद 74 का हवाला देते है, थे, जिसमें कहा गया है कि राष्ट्रपति को सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद होगी।

लेकिन 42वें संशोधन (1976) द्वारा राष्ट्रपति के लिए मंत्रि-परिषद की सलाह मानना अनिवार्य कर दिया गया था।

हालांकि 1978 में जनता पार्टी सरकार ने 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा यह व्यवस्था कर दी थी कि राष्ट्रपति सिर्फ एक बार मंत्रि-परिषद की सलाह मानने से इंकार सकता है। लेकिन मंत्रि-परिषद यदि पुनः उसी सलाह को राष्ट्रपति को देती है, तो राष्ट्रपति को वह सलाह माननी पड़ेगी। अतः राष्ट्रपति की स्थिति ऐसी है कि वह निरंकुश मंत्रिमंडल की शक्तियों पर कुछ समय के लिए अंकुश लगाकर अपनी शक्तियों का वास्तविक प्रयोग कर सकता है। लेकिन वह साधारण स्थितियों में नाममात्र के कार्यपालक की भूमिका में रहता है।

[राष्ट्रपति की बदलती भूमिका]

भारत में राष्ट्रपति नाममात्र का अध्यक्ष है किंतु राष्ट्रपति की भूमिका समयानुसार बदलती रही है। निरंतर बदलती राजनीति ने राष्ट्रपति की भूमिका को काफी प्रभावित किया है।

- अनुच्छेद 53 के अनुसार समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होंगी। साथ ही यह भी कहा गया है कि वह अपनी शक्तियों का प्रयोग या तो स्वयं करेगा या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के माध्यम से करेगा। तो दूसरी ओर अनुच्छेद

74 में कहा गया है कि राष्ट्रपति की सलाह व सहायता के लिए एक मंत्रि-परिषद होगी। इन अनुच्छेदों में यह स्पष्ट नहीं था कि क्या राष्ट्रपति के लिए मंत्रि-परिषद की सलाह मानना जरूरी है। फिर भी राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद से लेकर फखरुद्दीन अली अहमद आदि तक ने संवैधानिक अध्यक्ष या नाममात्र के अध्यक्ष के तौर पर कार्य किया था।

→ 1976 से 1984 तक भी राष्ट्रपति की भूमिका संवैधानिक अध्यक्ष की ही रही। 1976 में 42वें संशोधन द्वारा स्पष्ट रूप से राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद की सलाह मानना अनिवार्य कर दिया गया। किंतु 1978 में 44वां संविधान संशोधन द्वारा यह व्यवस्था कर दी गई कि राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद की सलाह को पुनर्विचार के लिए भेज सकता है। लेकिन यदि मंत्रिपरिषद उसी सलाह (परामर्श) को पुनः राष्ट्रपति के पास भेजे तो राष्ट्रपति को अब यह सलाह माननी पड़ेगी।

सन् 1984 के पश्चात भारतीय राजनीति में व्यापक परिवर्तन आया। 1984 के बाद से 2009 तक चुनावों में किसी एक पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ, और अस्थिर और गठबंधन सरकारों का दौर रहा। 2014 में काफी लंबे समय बाद भारतीय जनता पार्टी (BJP) को स्पष्ट तौर पर बहुमत प्राप्त हुआ तथा राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के नेतृत्व वाली सरकार बनी। अब 2024 में हुए आम चुनावों में किसी भी पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ, लेकिन (240 सीट) BJP पार्टी वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक पार्टी के गठबंधन को बहुमत प्राप्त हुआ। अब

बदलते हुए राजनीतिक परिवेश में राष्ट्रपति की बदलती हुई भूमिका के कुछ मुख्य पहलू निम्नलिखित हैं —

1. प्रधान मंत्री की नियुक्ति के संबंध में भूमिका — (Role in Regarding Appointment of PM)

आम तौर पर राष्ट्रपति लोक सभा चुनावों में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल के नेता को प्रधान मंत्री के रूप में नियुक्त करता है, किंतु जब किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो ऐसे में राष्ट्रपति के लिए प्रधानमंत्री को नियुक्त करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य बन जाता है। ऐसे में राष्ट्रपति को बड़ी सूझबूझ से काम करना पड़ता है। देश में ऐसे अवसर 1979, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004 एवं 2009 में आए। जब किसी एक दल को चुनावों में बहुमत प्राप्त नहीं होता है, तो राष्ट्रपति ऐसे व्यक्ति को प्रधान मंत्री नियुक्त करता है जिसके बारे में उसे लगता है कि वह लोक सभा का विश्वास प्राप्त कर लेगा। राष्ट्रपति के. आर. नारायण ने 1998 में BJP पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को नियुक्त न करके उनसे उनका समर्थन करने वाले दलों का समर्थन-पत्र (Support letter) की मांग की। ऐसा करके उन्होंने एक नई परंपरा की शुरुआत की। और वाजपेयी जी को बहुमत सिद्ध करने के लिए कहा। वाजपेयी जी ने 28 मार्च 1998 को अपना बहुमत सिद्ध कर दिया था। इसी प्रकार 2009 में चुनावों में किसी एक पार्टी को बहुमत नहीं मिला लेकिन कांग्रेस पार्टी 206 सीट के साथ सबसे बड़ी पार्टी के रूप में सामने आई। समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, डी. एम. के, बीजू जनता दल, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी आदि

के सहयोग से बने संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन के नेता डॉ. मनमोहन सिंह को फिर से राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने प्रधानमंत्री के पद के लिए आमंत्रित किया।

2. सरकार को बर्खास्त करने में भूमिका — 1984 के बाद इस संबंध में राष्ट्रपति की भूमिका में पर्याप्त बदलाव आया है। आम तौर पर सरकार के बहुमत खोने पर सरकार को बर्खास्त कर दिया जाता है। परंतु कई बार राष्ट्रपति ने ऐसा होते हुए भी सरकार को बर्खास्त नहीं किया। अक्टूबर 1990 में भारतीय जनता पार्टी ने जब वी.पी. सिंह सरकार से अपना समर्थन वापिस ले लिया तो राष्ट्रपति ने सरकार को बर्खास्त करने के स्थान पर प्रधानमंत्री को विश्वास-मत प्राप्त करने का आदेश दिया किंतु जब वी.पी. सिंह विश्वास-मत प्राप्त नहीं कर पाए, तो सरकार को बर्खास्त कर दिया गया। दूसरी ओर जब जुलाई 2008 में साम्यवादी दलों ने मनमोहन सिंह सरकार से समर्थन वापस ले लिया, तो सरकार स्पष्ट रूप से अल्पमत में आ गयी, किंतु राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने सरकार को बर्खास्त नहीं किया था। अतः सरकार को बर्खास्त करने के संबंध में राष्ट्रपति की भूमिका में पर्याप्त परिवर्तन आया है।

3. मंत्रि-परिषद की सलाह की स्वीकृति → के संबंध में भूमिका → अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग मंत्रि-परिषद की सलाह से करेगा, किंतु राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद की सलाह पर पुनः विचार के लिए कह सकता है। इसका पहला अवसर उदाहरण के

रूप में हमारे सामने तब सामने आया जब 21 अक्टूबर 1997 को नव-नियुक्त मुख्य मंत्री कल्याण सिंह को उत्तर प्रदेश विधान सभा में बहुमत सिद्ध करना था, मुख्य मंत्री ने अपना बहुमत सिद्ध भी कर दिया था, परंतु उसी दिन विधान सभा में हिंसक घटनाएँ घटित हुई। ऐसे में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रोमेश भंडारी ने केंद्र सरकार को राज्य सरकार को भंग करने की सिफारिश कर दी थी। राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर केंद्रीय-मंत्रिपरिषद ने राष्ट्रपति के. आर. नारायण को कल्याण सिंह सरकार को भंग करने की सिफारिश कर डाली थी। इस पर राष्ट्रपति के. आर. नारायण ने मंत्रि-परिषद की सलाह को पुनर्विचार के लिए वापस भेज दिया। 2002 में भी राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम ने चुनाव सुधारों से संबंधित अध्यादेश वापिस लौटा दिया था, क्योंकि इसमें सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश पर चुनाव आयोग द्वारा उम्मीदवारों की आपराधिक पृष्ठभूमि की जानकारी देने की अनिवार्यता को शामिल नहीं किया गया था। राष्ट्रपति की इस कार्रवाई की काफी प्रशंसा की गई थी।

4. राष्ट्रपति संक्रिय राष्ट्रपति के रूप में →
भारत में राष्ट्रपति की भूमिका के बारे में कहा जाता है कि वह रबड की मोहर है, जिसे जहाँ चाहे, जब चाहे लगाया जा सकता है। किंतु 1984 के पश्चात् का राजनीतिक परिदृश्य यह बताता है कि राष्ट्रपति रबड की मोहर नहीं है। क्योंकि विशिष्ट परिस्थितियों में राष्ट्रपति निष्क्रिय नहीं रह सकता है, क्योंकि सही समय पर

उसे कुछ सही कदम उठाने होते हैं, जैसे कि राष्ट्रपति के. आर. नारायण ने 1997 में कल्याण सिंह सरकार और 1998 में राबड़ी सरकार को भंग न करने के कदम उठाए थे। इसी प्रकार 2 मार्च 2005 को झारखंड के राज्यपाल ने विधानसभा में बहुमत की जाँच किए बिना शिबू सोरेन को मुख्यमंत्री नियुक्त कर दिया था, शिबू सोरेन संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन के नेता थे। इस पर राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के नेताओं ने राष्ट्रपति से मिलकर राज्यपाल की शिकायत की। इस पर राष्ट्रपति ने राज्यपाल को दिल्ली बुलाकर बातचीत की। इसके परिणामस्वरूप मुख्य मंत्री ने बड़े नाटकीय ढंग से अपना त्याग-पत्र दे दिया था और राजग के नेता अर्जुन मुंडा को राज्यपाल ने मुख्य मंत्री पद की शपथ दिलायी थी।

निष्कर्ष → उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 1989 के बाद भारत में राष्ट्रपति मूकदर्शक बनकर नहीं रहा है। 1989 के बाद राजनीतिक परिस्थितियाँ तेजी से बदली हैं। देश की राजनीति में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ़ा है और गठबंधन सरकारों का उदय हुआ है। इस परिस्थितियों में राष्ट्रपति को सक्रिय भूमिका निभानी पड़ती है। राष्ट्रपति की भूमिका के बारे में पूर्व राष्ट्रपति आर. वेंकटरमण अपनी पुस्तक प्रेसिडेंट ईयर्स (President Years) में लिखते हैं, "राष्ट्रपति का पद संकट-कालीन दीपक की तरह है। जब कोई संकट आता है, यह स्वयं जल उठता है और संकट काल समाप्त होने पर यह स्वयं बुझ जाता है।

प्रधानमंत्री एवं मंत्री परिषद

[प्रधानमंत्री]

ब्रिटेन की तरह भारत में संसदीय शासन प्रणाली लागू की गई है इसलिए भारत में राष्ट्रपति की शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री द्वारा किया जाता है ।

प्रधानमंत्री की नियुक्ति — संविधान के अनुच्छेद 75(1) के अनुसार प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री के परामर्श से की जाएगी। लेकिन राष्ट्रपति अपनी इच्छा से किसी को भी प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त नहीं कर सकता है क्योंकि वह लोकसभा के चुनाव में बहुमत प्राप्त करने वाले दल अथवा गठबंधन के नेता को ही प्रधानमंत्री नियुक्त करता है।

प्रधानमंत्री का संसद का सदस्य होना— भारत में प्रधानमंत्री का संसद के किसी एक सदन का सदस्य होना आवश्यक है क्योंकि संविधान के **अनुच्छेद 75 (5)** के अनुसार, "एक ऐसा मंत्री जो लगातार 6 महीने तक संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं रहा है, इस अवधि की समाप्ति के बाद मंत्री नहीं रहेगा। प्रधानमंत्री भी अन्य मंत्रियों की तरह है, वह मंत्रियों में प्रधान है।" कोई व्यक्ति जो संसद के किसी सदन का सदस्य नहीं है, उसकी प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्ति की जा सकती है परंतु उसे 6 महीने के अंदर-अंदर संसद की सदस्यता प्राप्त करनी होगी। वर्तमान (2024 में) प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी लोकसभा के सदस्य हैं।

कार्यकाल — सामान्य तौर पर प्रधानमंत्री 5 वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है, लेकिन जब तक उसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त है, वह अपने पद पर बना रहता है। क्योंकि लोकसभा सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके प्रधानमंत्री को कभी भी पद से हटा सकती है। 13 अप्रैल 1998 को राष्ट्रपति के. आर. नारायण ने प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को ए.आई.अन्ना डीएमके पार्टी द्वारा समर्थन वापस लिए जाने पर लोकसभा का विश्वास प्राप्त करने के लिए कहा तो वाजपेयी सरकार एकमत से विश्वास प्रस्ताव हार गई थी जिसके कारण प्रधानमंत्री वाजपेयी को पद से त्यागपत्र देना पड़ा था।

प्रधानमंत्री की शक्तियां एवं कार्य —

भारतीय प्रधानमंत्री की शक्ति एवं कार्यों का वर्णन निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है—

1. मंत्री परिषद का गठन — राष्ट्रपति द्वारा अपने नियुक्ति होने के बाद प्रधानमंत्री का प्रथम कार्य मंत्री परिषद का गठन करना है संविधान के अनुच्छेद 751 के अनुसार मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री के परामर्श पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है अतः मंत्री परिषद का गठन करना पूरी तरह से प्रधानमंत्री के हाथ में होता है। प्रधानमंत्री अपने मंत्रियों की सूची तैयार करके राष्ट्रपति को छोड़ता है राष्ट्रपति प्रधानमंत्री द्वारा चुने गए व्यक्तियों को ही मंत्री के रूप में शपथ दिलाता है।

2. विभागों का आबंटन— प्रधानमंत्री मंत्रियों की नियुक्ति के साथ-साथ उनमें विभागों का बंटवारा(आबंटन) भी करता है। प्रधानमंत्री ही तय करता है कि कौन सा मंत्री किस विभाग का अध्यक्ष होगा कौन सा मंत्री कैबिनेट मंत्री होगा और कौन सा मंत्री राज्य मंत्री होगा। प्रधानमंत्री अपने मंत्रियों के विभाग भी बदल सकता है।

3. मंत्री को हटाना— सैद्धांतिक दृष्टि से मंत्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यंत अपने पद पर बने रहते हैं अर्थात जब तक राष्ट्रपति की इच्छा होती है तब तक मंत्री अपने पद पर बने रहते हैं लेकिन राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के सिफारिश पर ही मंत्री को पद से हटाने का निर्णय लेता है अतः व्यवहार में मंत्रियों को हटाना भी प्रधानमंत्री के हाथ में ही होता है। अगर किसी मंत्री से प्रधानमंत्री असहमत है या नाखुश है, तो प्रधानमंत्री उससे उसका इस्तीफा मांग सकता है , यदि वह इस्तीफा नहीं देता है तो प्रधानमंत्री राष्ट्रपति द्वारा उसे पद से हटा सकता है। कानून मंत्री रवि शंकर प्रसाद और मानव विकास संसाधन मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने 7 जुलाई 2021 को अपने-अपने पद से इस्तीफा दे दिया था।

4.**लोकसभा का नेता** — प्रधानमंत्री लोकसभा का नेतृत्व करता है । वह सदन में सरकार की नीतियों से संबंधित महत्वपूर्ण घोषणाएं करता है । पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देता है, सदन में अपने मंत्रियों की अथवा सरकार की आलोचना का जवाब देता है

। वह लोकसभा अध्यक्ष के साथ मिलकर सदन की कार्य सूची तय करता है , यदि प्रधान मंत्री लोकसभा का सदस्य नहीं हो तो वह अपने दल के किसी अन्य सदस्य को लोकसभा का नेता नियुक्त करता है।

5. राष्ट्रपति एवं मंत्रिमंडल के बीच में कड़ी — प्रधानमंत्री राष्ट्रपति एवं मंत्रिमंडल के बीच में कड़ी का काम करता है राष्ट्रपति को मंत्रिमंडल द्वारा लिए गए निर्णय से अवगत कराता है और राष्ट्रपति के विचार मंत्रिमंडल की समक्ष रखता है । यदि राष्ट्रपति को किसी मंत्री से उसके विभाग के बारे में कोई सूचना प्राप्त करनी होती है, तो वह यह कार्य प्रधानमंत्री के माध्यम से ही करता है।

6. मंत्रिमंडल का नेता — प्रधानमंत्री मंत्रिमंडल का नेता होता है । इस नाते वह मंत्रिमंडल की बैठकों की अध्यक्षता करता है, मंत्रिमंडल की बैठकें बुलाता है, उनमें विचार किए जाने वाले विषयों की सूची तय करता है। किसी नीति पर सहमति तभी हो पाती है, जब उस नीति से प्रधानमंत्री सहमत होता है। अतः मंत्रिमंडल की संपूर्ण कार्यवाही प्रधानमंत्री की देखरेख में होती है।

7. विभिन्न विभागों के मध्य कड़ी— मंत्री परिषद का प्रमुख होने के नाते प्रधानमंत्री विभिन्न विभागों के मध्य कड़ी का काम करता है, वह विभागों के आपसी समस्याओं, झगड़ों एवं मतभेदों को सुलझाता है। कुशल प्रशासन के लिए यह आवश्यक है कि सरकार के विभिन्न विभागों में आपसी सहयोग एवं समन्वय कायम रहे, इसके लिए प्रधानमंत्री पूर्ण प्रयास करता है।

8. राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार — संविधान के अनुच्छेद 74 के अंतर्गत राष्ट्रपति को परामर्श देने के लिए मंत्री परिषद की व्यवस्था की गई है। मंत्री परिषद का प्रमुख होने के नाते प्रधानमंत्री राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार होता है। राष्ट्रपति प्रत्येक मामले पर प्रधानमंत्री की सलाह लेता है और उसके द्वारा दी गई सलाह के अनुसार ही कार्य करता है।

9. अपने दल का प्रमुख नेता — प्रधानमंत्री अपने दल का प्रमुख नेता होता है उसका अपने दल की नीतियों एवं कार्यक्रम को तैयार करने में मुख्य हाथ होता है वह चुनाव में अपने दल की ओर से प्रचार करता है , पार्टी के कार्यक्रमों में वह मुख्य भूमिका निभाता है।

10. संसद का नेता — दल का नेता होने के साथ-साथ प्रधानमंत्री संसद का नेता भी होता है, इस नाते वह संसद के अधिवेशन बुलाने की तिथि तय करता है । संसद के कार्यवाही में कौन-सा विधायक पहले प्रस्तुत किया जाएगा और कौन-सा बाद में यह सब प्रधानमंत्री की देखरेख में तय किया जाता है। प्रधानमंत्री ही सरकार की नीतियों से ही संसद को अवगत करवाता है। लोकसभा अध्यक्ष प्रधानमंत्री एवं विपक्ष के नेता की सलाह से ही सदन की कार्यवाही तय करते हैं।

11. राष्ट्र का नेता— प्रधानमंत्री राष्ट्र का नेता भी होता है । समस्त प्रशासन प्रधानमंत्री द्वारा चलाया जाता है। प्राय: लोकसभा के चुनाव प्रधानमंत्री के नाम पर लड़े जाते हैं, विदेशों में अक्सर प्रधानमंत्री राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं।

12. लोकसभा को भंग कराना —भारत में प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को सलाह देकर लोकसभा को भंग करवा सकता है । जैसे की फरवरी 2004 में अटल बिहारी वाजपेयी ने समय से पूर्व ही लोकसभा को भंग करवा दिया था।

13. प्रधानमंत्री एवं विदेश नीति— प्रधानमंत्री विदेश विभाग अपने पास रखे या ना रखें वह विदेश नीति के निर्धारण में प्रमुख भूमिका निभाता है। वह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की विदेश नीति का स्पष्टीकरण करता है । विदेश नीति संबंधी सभी महत्वपूर्ण निर्णय उसी के द्वारा लिए जाते हैं , विदेशों में राजदूतों की नियुक्ति तथा उन्हें वापस बुलाना आदि सभी कार्य प्रधानमंत्री की सलाह पर ही राष्ट्रपति द्वारा किए जाते हैं। प्रधानमंत्री विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संगठनों एवं क्षेत्रीय संगठनों की बैठकों में भाग लेते हैं।

14. प्रधानमंत्री एवं रक्षा —राष्ट्र की रक्षा का उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री का ही होता है। इस कारण उसका प्रतिरक्षा मंत्रालय पर पूरा नियंत्रण होता है । राष्ट्र की सुरक्षा एवं विदेश नीति का आपस में घनिष्ठ संबंध होता है। देश की हार-जीत उसकी हार-जीत मानी जाती है। उदाहरण के लिए 1962 के भारत-चीन युद्ध में भारत की पराजय के लिए प्रधानमंत्री नेहरू को जिम्मेदार ठहराया गया था , तो 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में पाकिस्तान पर विजय का श्रेय प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री को मिला था।

15. सरकार का प्रमुख वक्ता— प्रधानमंत्री सरकार का प्रमुख वक्ता होता है। इस नाते वह समस्त जनता के सामने सरकार की नीतियों की घोषणा करता है । वह सभी प्रशासनिक विभागों की जानकारी रखता है। अक्सर सभी महत्वपूर्ण घोषणाएं प्रधानमंत्री के द्वारा की जाती हैं।

16. अर्थव्यवस्था एवं वित्त पर नियंत्रण— प्रधानमंत्री का देश की अर्थव्यवस्था पर पूरा नियंत्रण होता है। देश की अर्थव्यवस्था की सफलता-असफलता का उत्तरदायित्व उसी पर होता है। प्रधानमंत्री की देखरेख में ही देश का बजट तैयार किया जाता है। अर्थव्यवस्था से संबंधित प्रमुख नीतियां एवं योजनाएं प्रधानमंत्री के नेतृत्व में तैयार की जाती हैं। जुलाई 1969 से जून 1970 तक वित्त विभाग प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के पास ही था। देश में 1991 में आर्थिक सुधारों को शुरू करने का कार्य प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिम्हा राव ने किया था। नवगठित नीति आयोग का अध्यक्ष भी प्रधानमंत्री ही होता है।

17. संकटकालीन शक्तियों का प्रयोग— संविधान के अनुच्छेद 352, 356 एवं 360 के अंतर्गत राष्ट्रपति को तीन प्रकार की संकटकालीन शक्तियां प्राप्त हैं लेकिन राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री की सलाह से ही करता है । जैसे 26 अक्टूबर 1962 को चीन के आक्रमण के समय, 3 दिसंबर 1971 को पाकिस्तान के साथ युद्ध के समय और 25 जून 1975 को 'आंतरिक गड़बड़ी' के नाम पर अनुच्छेद 352 के अंतर्गत राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री की सलाह से ही संकटकालों की घोषणा की थी । अतः राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री द्वारा किया जाता है।

स्थिति — प्रधानमंत्री की शक्ति एवं कार्यों का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि भारतीय शासन व्यवस्था में प्रधानमंत्री की स्थिति केंद्रीय है। संविधान के अधीन प्रधानमंत्री व्यवहार में विशाल शक्तियों का स्वामी है और शासन में उसकी स्थिति महत्वपूर्ण है। यदि प्रधानमंत्री का अपने दल एवं मंत्री परिषद पर नियंत्रण है और संसद की दोनों सदनों में उसके दल को बहुमत प्राप्त है तो उसकी स्थिति बहुत मजबूत होती है। प्रधानमंत्री की स्थिति काफी सीमा तक उसके व्यक्तित्व पर भी निर्भर करती है। भारत में पंडित नेहरू, इंदिरा गांधी, अटल बिहारी वाजपेयी एवं नरेंद्र मोदी जी मजबूत व्यक्तित्व के स्वामी थे । गठबंधन सरकारों के दौर में भारत में प्रधानमंत्री की स्थिति कमजोर रही है।

प्रधानमंत्री की भूमिका अथवा प्रधानमंत्री की बदलती हुई भूमिका

1952 से लेकर 1985 तक केंद्र में प्राय एक ही राजनीतिक दल को बहुमत मिलता रहा है जिसके कारण प्रधानमंत्री की स्थिति मजबूत रही 1980 के बाद अनेक राज्यों में क्षेत्रीय दलों का जन्म हुआ और उनका प्रभाव और भूमिका प्रभावशाली होती चली गई । परिणामस्वरूप क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ़ता चला गया और लोकसभा के चुनाव में किसी एक राष्ट्रीय दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हुआ, इसी के साथ देश में गठबंधन सरकारों का दौर चल पड़ा जो आज तक भी जारी है। राज्यों में भी गठबंधन की सरकारें हैं । वर्तमान सरकार(2024 में) भी गठबंधन(राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन) की सरकार है। निसंदेह गठबंधन सरकारों के दौर में प्रधानमंत्री की भूमिका में परिवर्तन आया है, जिसको हम निम्नलिखित बातों के संदर्भ में समझ सकते हैं—

1. मंत्री परिषद के गठन में भूमिका— मंत्री परिषद के गठन के विषय में प्रधानमंत्री का यह विशेष अधिकार होता है कि वह किसी व्यक्ति को अपने मंत्रिमंडल में शामिल करें या ना करें प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू एवं इंदिरा गांधी ने अपने इस अधिकार का स्वतंत्रता पूर्वक भी प्रयोग किया था किंतु बात की गठबंधन सरकारों में प्रधानमंत्री की भूमिका मंत्री परिषद की गठन में कमजोरी रही गठबंधन में शामिल अन्य दलों की पसंद को ध्यान में रखकर मंत्री परिषद का गठन करना पड़ता है। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के समय अटल बिहारी वाजपेयी और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार के समय प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह दोनों ही मंत्री परिषद का निर्माण करने में स्वतंत्र नहीं रहे।

2. विभागों का आवंटन (Allocation of Portfolios)- प्रधान मन्त्री का यह विशेषाधिकार (Prerogative) होता है कि वह किस मंत्री को कौन-सा विभाग सौंपे। साझा सरकारों के दौर में इस मामले में भी प्रधान मन्त्री की भूमिका में बदलाव आया। प्रधान मन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी के कार्यकाल में रेलवे मन्त्रालय को लेकर ममता बनर्जी एवं नीतिश कुमार के बीच झगड़ा बना रहता था। डॉ. मनमोहन सिंह के प्रथम कार्यकाल में रेलवे मन्त्रालय को लेकर लालू प्रसाद यादव एवं रामविलास पासवान के बीच झगड़ा बना रहा। ऐसी स्थिति में प्रधान मन्त्री की सरकार में स्थिति बड़ी कमजोर हो जाती है, क्योंकि उस पर घटक

दलों का लगातार दवाव बना रहता है, जिसके लिए वे ब्लैकमेल तक की राजनीति भी करते हैं।

3. समन्वयकारी की भूमिका (Role of Co-ordinator)- प्रधान मन्त्री की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है — विभिन्न मन्त्रालयों में समन्वय बनाए रखना, ताकि जनता को कुशल प्रशासन मिल सके। पहले प्रधान मन्त्री ही प्रशासन की दिशा - तय करते थे, किन्तु गठबन्धन सरकारों के दौर में उसने अपनी यह भूमिका लगभग खो दी, क्योंकि इस दौर में प्रधान मन्त्री के अलावा कुछ और भी सत्ता केन्द्र बन गए। इस दौर में एक प्रभावकारी संस्था का उदय हुआ, जिसको समन्वयकारी समिति' (Co-ordination Committee) का नाम दिया गया। यह समिति विभिन्न विभागों में समन्वय बनाए रखने का कार्य करती थी। प्रधान मन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में मार्च, 1998 एवं अक्टूबर, 1999 में गठित साझा सरकारों के समय ऐसी ही समन्वयकारी समितियों की स्थापना की गयी थी।

4. नीति-निर्माण में भूमिका (Policy-Formulation) — नीति-निर्माण करना और नीतियों को लागू करना मंत्रिमण्डल का प्रमुख कार्य है, जो प्रधान मन्त्री के नेतृत्व में सम्पन्न होता है। इस नाते नीति-निर्माण के क्षेत्र में प्रधान मन्त्री का निर्णय अन्तिम माना जाता है। पहले अगर कोई मंत्री प्रधान मन्त्री से नीतिगत मतभेद रखता था, तो प्रधान मन्त्री उससे त्याग-पत्र मांग लिया करता था। किन्तु साझा/गठबन्धन सरकारों के दौर में प्रधान मन्त्री की ऐसी स्थिति नहीं रही, क्योंकि किसी मंत्री से त्याग-पत्र मांगने से पहले उसको अपनी सरकार के भविष्य के बारे में सोचना पड़ता है। अब नीतिया तय करने के लिए प्रधान मन्त्री का दर्शन या दृष्टिकोण आधार नहीं होता है, बल्कि सहयोगी दलों की सहमति जरूरी होती है।

5. दल में प्रधान मन्त्री की स्थिति (Position of Prime Minister in the Party)— पंडित जवाहर लाल नेहरू , इंदिरा गांधी एवं राजीव गांधी प्रधान मन्त्री होने के साथ-साथ अपने दल के प्रमुख नेता भी थे। ये प्रधान मन्त्री अपने दल के अध्यक्ष भी थे, जिससे उनका दल पर नियन्त्रण बना हुआ था। इस मामले में भी साझा सरकारों के प्रधान मन्त्रियों की स्थिति कमजोर हुई हुई। एच.डी देव गौड़ा एवं इंद्र कुमार गुजराल की अपने दल में बहुत कमजोर स्थिति थी, वास्तव में यह मजबूरी के प्रधानमंत्री रहे, न की सभी के पसंद के प्रधान मंत्री। संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार के प्रधान मन्त्री डॉ. मनमोहन सिंह की कांग्रेस पार्टी में वह स्थिति नहीं थी, जो कांग्रेस अध्य सोनिया गांधी की थी।

6. संसद का नेतृत्व (Leadership of Parliament)- संसदीय परम्परा के अनुसार प्रधान मंत्री संसद का नेता होता है, जो संसद की कार्यवाही को नियन्त्रित करता है। वह संसद को कार्य-सूची (Agenda) को लोक सभा के अध्यक्ष से परामर्श करके अंतिम रूप देता है। किन्तु गठबन्धन सरकारों के दौर में प्रधान मन्त्री के संसद पर नियन्त्रण में कमी आयी है। प्रधान मन्त्री को अपने दल के साथ-साथ सरकार को समर्थन देने वाले दलों की कार्य-सूचियों को भी ध्यान में रखना पड़ता है। संसद सदस्यों पर प्रधान मन्त्री के व्यक्तित्व का प्रभाव नजर नहीं आता है ।

7. राष्ट्रपति के साथ संबंध (Relations with President)— राष्ट्रपति बहुमत प्राप्त करने वाले विधायक दल के नेता को प्रधान मन्त्री नियुक्त कर देता है। किन्तु गठबंधन सरकार के दौर में राष्ट्रपति को प्रधान मन्त्री की नियुक्ति के विषय में अपने विवेक के प्रयोग करने का पूरा अवसर मिलता है। ऐसे स्थिति में राष्ट्रपति प्रायः कमजोर व्यक्ति को ही प्रधान मन्त्री नियुक्त करता है, क्योंकि घटक दल उसको अपनी राजनीतिक मजबूरियों के चलते चुनते हैं। इस प्रकार के प्रधान मन्त्री राष्ट्रपति के सामने कमजोर ही सिद्ध होते हैं, जब कि राष्ट्रपति केवल नाममात्र का मुखिया होता है। 1999 में राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने वाजपेयी सरकार से जयललिता को पार्टी के द्वारा समर्थन वापस लिए जाने पर प्रधान मन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी को लोक सभा में विश्वास-मत प्राप्त करने का आद दिया था। गठबन्धन सरकारों के चलते राष्ट्रपति के सामने प्रधान मन्त्री की स्थिति कमजोर हुई, जब कि संसदीय शासन प्रणाली में प्रधान मन्त्री की स्थिति अत्यन्त मजबूत होती है।

8. प्रधान मन्त्री के पद में प्रभावहीनता (Erosion in the Post of Prime Minister)-1989 के बद मन्त्री की स्थिति में व्यापक परिवर्तन आया है, जो अपने आप में एक गंभीर विषय है। गठबन्धन सरकारों में 1989 से लेकर 2014 तक प्रधान मंत्री को प्रायः विवश देखा गया है। संयुक्त प्रशिक्षण गठबंधन सरकार के प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह जी की छवि विवश प्रधानमंत्री के रूप में सामने उभर कर आई।

भारत में 1989 के बाद देश में जिस प्रकार गठबंधन सरकार बनती गईं। प्रधान मन्त्री की भूमिका भी बदलती चली गयी और

एक समय ऐसा आया, जब संसद के भीतर और बाहर प्रधानमन्त्री विवश नजर आया। लेकिन मई 2014 के लोक सभा के चुनाव के बाद प्रधान मन्त्री को स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी एक मजबूत प्रधानमंत्री के रूप में उभरकर नजर आए हैं, लेकिन देखते हैं कि वे 9 जून, 2024 को सत्ता में आई राष्ट्रीय जनतंत्र गठबंधन की सरकार में भी अपना दबदबा बनाए रखेंगे?

[मंत्री परिषद]

संविधान के **अनुच्छेद 53** के द्वारा कार्यपालिका शक्तियां राष्ट्रपति में निहित की गई है किंतु व्यवहार में उसकी इन शक्तियों का प्रयोग मंत्री परिषद द्वारा ही किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 74 में लिखा हुआ है, "राष्ट्रपति को सहायता एवं परामर्श देने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली एक मंत्री परिषद होगी राष्ट्रपति अपने कार्यों को मंत्रिपरिषद के परामर्श के अनुसार करेगा।"

1. निर्माण या गठन — मंत्री परिषद में प्रधानमंत्री सहित सभी मंत्री शामिल होते हैं। लोकसभा के चुनाव के परिणाम आने के तुरंत बाद मंत्री परिषद का गठन किया जाता है। प्रधानमंत्री सहित सभी प्रकार के मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है । राष्ट्रपति द्वारा पहले प्रधानमंत्री और बाद में अन्य मंत्रियों की नियुक्ति की जाती है।

2. प्रधानमंत्री की नियुक्ति— प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है । राष्ट्रपति लोकसभा के चुनाव में स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने वाले दल या गठबंधन के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है। जून 2024 में हुए लोकसभा चुनावों के आधार पर राष्ट्रपति ने श्री नरेंद्र मोदी जी को प्रधानमंत्री के रुपए नियुक्त किया है।

3. अन्य मंत्रियों की नियुक्ति— संविधान के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री के परामर्श से अन्य मंत्री की नियुक्ति की जाती है। राष्ट्रपति अपनी मर्जी से मंत्रियों को नियुक्त नहीं कर सकता है। प्रधानमंत्री नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों की सूची तैयार करके राष्ट्रपति को सौंपता है। उस सूची के अनुसार ही राष्ट्रपति व्यक्तियों की मंत्री के रूप में नियुक्ति कर देता है।

4. मंत्रियों के लिए संसद का सदस्य होना अनिवार्य— संविधान के अनुच्छेद 75 (5) के तहत किसी भी ऐसे व्यक्ति को मंत्री परिषद में मंत्री के तौर पर शामिल किया जा सकता है , जो नियुक्ति के समय संसद का सदस्य ना हो। किंतु ऐसे व्यक्ति को 6 महीने के अंदर संसद की सदस्यता प्राप्त करनी होती है , अन्यथा उसे अपना पद छोड़ना पड़ता है। जून 1991 में कांग्रेस पार्टी के नेता पी. वी नरसिम्हा राव को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया था , तो वे उस समय संसद के सदस्य नहीं थे, परंतु बाद में उन्होंने संसद की सदस्यता प्राप्त कर ली थी।

5. मंत्री परिषद का आकार — सन 2003 में संविधान में 91 संशोधन के माध्यम से यह व्यवस्था की गई है कि मंत्री-परिषद में मंत्रियों की संख्या लोकसभा की कुल सदस्य संख्या के 15% से अधिक नहीं हो सकती है । इस आधार पर मंत्री परिषद में प्रधानमंत्री सहित 83 मंत्री शामिल हो सकते हैं।

6. शपथ — प्रधानमंत्री सहित प्रत्येक मंत्री को अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति के सम्मुख दो प्रकार की शपथ लेनी होती है- पहली अपने पद की शपथ और दूसरी गोपनीयता की शपथ।

7. कार्यकाल— मंत्री परिषद या मंत्रियों का कार्यकाल स्थाई नहीं होता है। संविधान के अनुच्छेद 75(2) के अनुसार मंत्रीगण राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यंत(अर्थात् राष्ट्रपति की इच्छा तक) अपने पद पर बने रहेंगे। परंतु व्यवहार में यह व्यवस्था है कि जब तक मंत्री परिषद को लोकसभा में बहुमत प्राप्त है, वह अपने पद पर बनी रहती है। अर्थात मंत्री परिषद का बने रहना लोकसभा में उसके बहुमत पर निर्भर करताहै।

8. रचना— मंत्री परिषद में निम्न प्रकार के मंत्री शामिल होते हैं —

(i) कैबिनेट मंत्री (ii) राज्य मंत्री (iii) उप-मंत्री

(i) कैबिनेट मंत्री – कैबिनेट मंत्री सर्वोच्च स्तर के मंत्री होते हैं। यह मंत्री-परिषद की एक आंतरिक समिति जिसे 'कैबिनेट' का नाम दिया गया है , के सदस्य होते हैं। कैबिनेट मंत्री प्रमुख प्रशासनिक विभागों के अध्यक्ष होते हैं।

(ii) राज्य मंत्री – यह दूसरे दर्जे के मंत्री होते हैं । इनकी नियुक्ति कैबिनेट मंत्री की सहायता देने के लिए की जाती है, इसलिए यह प्रशासकीय विभागों के मुखिया नहीं होते हैं । किंतु कभी-कभी कोई अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण विभाग किसी राज्य मंत्री को स्वतंत्र रूप से सौंप दिया जाता है । इनको कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर कैबिनेट की बैठकों में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाता है।

(iii) उप मंत्री – उप मंत्री तीसरी रैंक के मंत्री होते हैं। ये किसी विभाग के स्वतंत्र प्रभारी नहीं होते हैं और ना ही कैबिनेट की बैठक में भाग लेते हैं। उनकी नियुक्ति कैबिनेट मंत्री या राज्य मंत्री की सहायता के लिए जाती है । यह कैबिनेट मंत्री या राज्य मंत्री द्वारा सौंपे गए कार्य करते हैं।

मंत्री-मंडल/मंत्री परिषद की मुख्य विशेषताएं

भारत में मंत्री परिषद की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकारहै

1. दलगत आधार पर गठन– मंत्री परिषद में दलगत आधार पर मंत्रियों की नियुक्ति की जाती है । जब किसी एक पार्टी को बहुमत प्राप्त होता है तो पार्टी के प्रमुख व्यक्तियों को मंत्री बनाया जाता है। जब गठबंधन सरकारी होती हैं , तो गठबंधन में शामिल दलों के प्रमुख नेताओं को मंत्री परिषद में शामिल किया जाता है। ऐसा करते समय प्रधानमंत्री को विशेष ध्यान रखना पड़ता है ताकि उसके सहयोगी दल नाराज न हों।

2. विशेषज्ञ तत्व – मंत्री नियुक्ति करते समय यह देखा जाता है की प्रमुख मंत्रालयों को उससे संबंधित विशेषज्ञता रखने वाले मंत्रियों को सौंपा जाए। उदाहरण के तौर पर भारत में जॉन मथाई , सी.डी देशमुख, डॉ मनमोहन सिंह जैसे उच्च कोटि के अर्थशास्त्री और आर्थिक मामलों का अच्छे ज्ञान रखने वाले व्यक्ति वित्त मंत्री रहे हैं।

3. राज्यसभा को समुचित प्रतिनिधित्व – मंत्री परिषद की एक विशेषता यह भी है कि इसमें न केवल लोकसभा से बल्कि राज्यसभा से भी व्यक्तियों को शामिल किया जाता है । भारत में राज्यसभा के कई सदस्य प्रधानमंत्री नियुक्त किए गए हैं। इंदिरा गांधी, एच. डी देवगौड़ा, इंद्र कुमार गुजराल, पीवी नरसिम्हा राव एवं डॉ मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने तो उस समय यह सब राज्यसभा के ही सदस्य थे।

4. प्रधानमंत्री की सर्वोच्चता– भारत में मंत्री परिषद में प्रधानमंत्री की सर्वोच्चता होती है। उसी के सिफारिश पर मंत्री को नियुक्त किया जाता है । उसकी इच्छा अनुसार ही मंत्रियों को विभागों का आवंटन किया जाता है। मंत्री परिषद की प्रमुख नीतियां वही तय करता है। गठबंधन सरकार के दौर में प्रधानमंत्री की सर्वोच्चता थोड़ी कम हो गई थी। वर्तमान सरकार में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अपनी मंत्रिपरिषद में सर्वोच्चता कायम है।

5. सामूहिक उत्तरदायित्व– इसका अर्थ है कि शासन की सफलता अथवा सफलता के लिए संपूर्ण मंत्री-परिषद जिम्मेदार होती है, न की कोई एक मंत्री या प्रधानमंत्री। जब किसी एक मंत्री की आलोचना की जाती है तो इसे संपूर्ण मंत्री-परिषद अर्थात सरकार की आलोचना समझा जाता है। इसी के साथ लोकसभा में यदि किसी मंत्री द्वारा पेश किया गया विधेयक पास नहीं हो पता है तो संपूर्ण मंत्री परिषद को त्यागपत्र देना पड़ता है।

6. उप-प्रधानमंत्री का पद – भारतीय संविधान में कहीं भी उप प्रधानमंत्री के पद की व्यवस्था नहीं की गई है फिर भी यहां कई व्यक्ति उप प्रधानमंत्री के रूप में कार्य कर चुके हैं । नेहरू सरकार में सरदार पटेल, इंदिरा गांधी के मंत्रिमंडल में मोरारजी देसाई, मोरारजी देसाई के मंत्रिमंडल में जगजीवन राम एवं चरण सिंह , चरण सिंह के मंत्रिमंडल में वाइ. बी. चह्वान , वीपी सिंह एवं चंद्रशेखर के मंत्रिमंडल में देवीलाल तथा अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार में लालकृष्ण आडवाणी ने उप प्रधानमंत्री के रूप में कार्य किया था।

मंत्रिमंडल/मंत्रिपरिषद के कार्य एवं स्थिति

भारत में मंत्रिमंडल अथवा मंत्री परिषद के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं—

1. राष्ट्रीय नीति का निर्माण —भारत में मंत्रिमंडल अपने दल की नीतियों एवं कार्यक्रमों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय नीति का निर्माण करता है। मंत्रिमंडल ही अपने विभागों की नीति बनाते हैं। सभी विधेयक(Bill) जो प्रशासनिक विभागों द्वारा तैयार किए जाते हैं, मंत्रिमंडल के निर्देशन में ही तैयार किए जाते हैं। जब इन विधेयकों को संसद की स्वीकृति मिल जाती है तो यह कानून का बन जाते हैं।

2. प्रशासनिक कार्य— भारतीय संविधान द्वारा प्रशासन के संरक्षण का दायित्व राष्ट्रपति को सोपा गया है किंतु व्यवहार में प्रशासन का संचालन मंत्रिमंडल द्वारा ही किया जाता है। प्रशासन के कुशल संचालन के लिए इसको विभिन्न विभागों में बांटा जाता है प्रत्येक मंत्री को एक या एक से अधिक प्रशासनिक विभाग सौंपे जाते हैं। मंत्रीगण अपने-अपने विभागों या मंत्रालयों का संचालन करते हैं और विभाग के कार्यों पर नियंत्रण रखते हैं। यदि कोई अधिकारी लापरवाही करता है तो मंत्री उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई करता है।

3. वैधानिक कार्य — संविधान के द्वारा विधि निर्माण का कार्य संसद को सौंपा गया है, किंतु व्यवहार में यह कार्य मंत्रिमंडल द्वारा ही किया जाता है। जो विधेयक संसद में प्रस्तुत किए जाते हैं, उनका प्रारूप संबंधित मंत्री के विभाग द्वारा तैयार किया जाता है। विधेयक तैयार होने के बाद इन्हें मंत्रिमंडल अथवा मंत्री परिषद के विचार हेतु प्रस्तुत किया जाता है। मंत्रिमंडल की स्वीकृति मिल जाने के पश्चात ही, विधेयक संसद में प्रस्तुत किए जाते हैं। संसद में 90% से भी अधिक विधेयक सरकारी विधेयक होते हैं। इसके अलावा मंत्रिमंडल प्रदत्त विधायन की शक्ति का प्रयोग करके कानून निर्माण भी करती है।

4. वित्तीय कार्य— मंत्रिमंडल अथवा मंत्री परिषद देश की आर्थिक नीति तय करता है। देश के वित्त पर पूरा नियंत्रण मंत्रिमंडल करता है । वित्त मंत्रालय द्वारा देश का वार्षिक बजट तैयार किया जाता है , जिसका मुखिया वित्त मंत्री होता है। मंत्रिमंडल की स्वीकृति मिल जाने के बाद वित्त मंत्री द्वारा बजट लोकसभा में प्रस्तुत किया जाता है। मंत्रिमंडल लोकसभा से बजट पारित करता है।

5. विदेश संबंधों का संचालन— भारत में विदेश नीति मंत्रिमंडल द्वारा निर्धारित की जाती है । इसी विदेश नीति के अनुसार विदेशी संबंधों का संचालन किया जाता है। मंत्रिमंडल के परामर्श से ही राष्ट्रपति दूसरे देशों में भारत के राजदूतों एवं उच्च आयुक्त की नियुक्ति करता है । मंत्रिमंडल के परामर्श से ही राष्ट्रपति अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं में प्रतिनिधियों की नियुक्ति करता है। अन्य देशों के साथ जो समझौते एवं संधि की जाती हैं वह भी मंत्रिमंडल के सहमति से किए जाते हैं । संविधान के अनुसार राष्ट्रपति संसद की स्वीकृति से जो युद्ध एवं शांति की घोषणा करता है , वह भी मंत्रिमंडल के परामर्श से ही करता है।

6. प्रशासकीय विभागों में समन्वय — शासन के सफल संचालन के लिए सभी प्रशासकीय विभागों में समन्वय होना अति आवश्यक है। इन विभागों के मध्य समन्वय करने का कार्य मंत्रिमंडल द्वारा किया जाता है । विभिन्न विभागों के बीच उत्पन्न विवाद एवं मुद्दे मंत्रिमंडल की बैठकों में सुलझाए जाते हैं क्योंकि इन बैठकों में सभी विभागों के प्रभारी मंत्री भाग लेते हैं , जो मिल-बैठकर विवादों का हल निकालते हैं। मंत्रिमंडल की बैठक की अध्यक्षता प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है।

7. नियुक्ति संबंधी कार्य— राष्ट्रपति द्वारा देश के प्रमुख पदों पर नियुक्तियां की जाती है हिंदू व्यवहार में यह नियुक्तियां मंत्रिमंडल द्वारा की जाती है क्योंकि राष्ट्रपति जो भी नियुक्तियां करता है मंत्रिमंडल के परामर्श से ही करता है। राष्ट्रपति द्वारा मंत्रिमंडल की सलाह से जिन पदों पर नियुक्ति की जाती है , उनमें प्रमुख हैं— राज्यपाल, महान्यायवादी, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य, मुख्य निर्वाचन आयुक्त एवं अन्य आयुक्त, नीति आयोग का उपाध्क्षक एवं सदस्य, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों आदि।

8. समितियों एवं जांच आयोग/आयोगों का गठन— मंत्रिमंडल घोटालों ,हत्याओं, फर्जीवाड़ों, भ्रष्टाचार आदि मामलों की जांच पड़ताल के लिए जांच आयोग को एवं समितियां का गठन करता है। मंत्रिमंडल द्वारा 1975 में घोषित आपातकाल के दौरान

की गई ज्यादातियों की जांच के लिए 1977 में शाह आयोग का गठन किया गया था। इसी प्रकार 1977 में मंत्रिमंडल द्वारा मारुति उद्योग के विरुद्ध लगे आरोपों की जांच के लिए डी. एस. माथुर की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया गया था। अभी पिछले ही वर्ष सितम्बर 2023 में 'एक राष्ट्र- एक चुनाव' जैसे मुद्दे पर पूर्व राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद की अध्यक्षता में समिति की स्थापना की गई थी।

9. आपातकाल की घोषणा— राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग मंत्रिमंडल अथवा मंत्री परिषद द्वारा किया जाता है मंत्रिमंडल के लिए सिफारिश पर ही राष्ट्रपति अनुच्छेद 352 के अंतर्गत राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा कर सकता है। राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राज्य सरकार को भंग करके राज्य में राष्ट्रपति शासन की घोषणा और अनुच्छेद 360 के अंतर्गत वित्तीय संकटकाल की घोषणा भी मंत्रिमंडल के परामर्श से ही करता है।

10. मंत्रिपरिषद की स्थिति — मंत्रिमंडल संसदीय शासन प्रणाली का केंद्र बिंदु होता है मंत्रिमंडल मंत्री परिषद का एक आंतरिक हिस्सा है जिसमें सर्वोच्च स्तर के मंत्री शामिल होते हैं 1978 से पूर्व मंत्रिमंडल एक राजनीतिक परंपरा के रूप में चल रहा था किंतु 44 में संशोधन अधिनियम 1978 के द्वारा इसका अनुच्छेद 352 (3) में उल्लेख करके इसे संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई मंत्रिमंडल मंत्री परिषद का एक अति महत्वपूर्ण एवं सर्वोच्च निकाय है इस नाते मंत्रिमंडल की फैसला ही मंत्री परिषद की फैसले होते हैं भारत में मंत्रिमंडल की वास्तविक शासक है और यही राष्ट्रपति की शक्तियों का प्रयोग करता है।

शासन संचालन के कार्य में इसकी भूमिका को देखते हुए कहा जा सकता है कि मंत्री परिषद के निर्णय मंत्रिमंडल के ही निर्णय होते हैं क्योंकि इसमें उच्च- स्तरीय मंत्री शामिल होते हैं। भारतीय संविधान के अंतर्गत कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। इनका प्रयोग वह मंत्रिपरिषद अर्थात मंत्रिमंडल की सहायता से करता है । इस तरह वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिमंडल ही है । मंत्री परिषद लोकसभा की प्रति उत्तरदायी है, जब तक लोकसभा में मंत्रिमंडल वाले दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त है तब तक मंत्रिमंडल अपने पद पर बना रहता है। राष्ट्रपति एवं संसद दोनों के संदर्भ में मंत्रिमंडल की स्थिति बहुत ही मजबूत है। मंत्रिमंडल एक अति महत्वपूर्ण एवं शक्ति-संपन्न संस्था है , किंतु तब भी वह तानाशाह नहीं बन सकती है क्योंकि ऐसा करने पर जनमत इसके विरुद्ध हो जाएगा। फिर भी व्यवहार में भारत में मंत्रिमंडल शासन शक्तियों का केंद्र बिंदु है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. "प्रधान मन्त्री मंत्रिमण्डल रूपी मेहराव की आधारशिला होता है।" व्याख्या कीजिए। (प्रधानमंत्री के कार्य लिखने हैं) (The Prime Minister is the key-stone of the Cabinet-arch Explain)

2. भारत के प्रधान मन्त्री की नियुक्ति शक्तियों एवं स्थिति की व्याख्या कीजिए। (Discuss the appointment, powers and position of the Prime Minister of India)

3. परिवर्तित भारतीय राजनीतिक परिवेश में प्रधान मन्त्री की भूमिका का वर्णन कीजिए। (Discuss the role of Indian Prime Minister in changed Indian political scenerio)

4. केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद की संरचना एवं शक्तियों का वर्णन कीजिए। (Discuss the composition and powers of Central Council of Ministers.)

5. भारत में मंत्रिमण्डल प्रणाली की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या कीजिए। (Discuss the main features of Cabinet System in India.)

Date
DELTA Pg No.

!राज्यपाल (Governer)!

राज्यपाल के पद का प्रावधान → अनुच्छेद 153 के अनुसार, "प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्यपाल होगा और यह अनुच्छेद एक ही व्यक्ति की दो या अधिक राज्यों में राज्यपाल के रूप में नियुक्ति को नहीं रोकेगा।"
इसका अर्थ यह निकलता है कि एक व्यक्ति को दो या दो से अधिक राज्यों का राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता है।

नियुक्ति → संविधान के अनुच्छेद 155 के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति राज्यपाल की नियुक्ति करता है, लेकिन वह राज्यपालों की नियुक्ति केंद्रीय मंत्रिपरिषद् की सलाह से ही करता है।

- राज्यपाल की नियुक्ति करते समय निम्नलिखित दो परंपराओं को ध्यान में रखा जाता है –

i) किसी व्यक्ति को उस राज्य में राज्यपाल नियुक्त नहीं किया जाता है, जिसका वह निवासी होता है।

ii) राज्यपाल की नियुक्ति करते समय संबंधित राज्य के मुख्यमंत्री (CM) से परामर्श लिया जाता है और उस व्यक्ति को राज्यपाल नियुक्त नहीं किया जाता जो उस राज्य के मुख्यमंत्री को स्वीकार नहीं हो।

योग्यताएँ → संविधान के अनुच्छेद 157 के अनुसार राज्यपाल की योग्यताएँ इस प्रकार हैं –

i) वह भारत का नागरिक हो।
ii) उसकी आयु 35 वर्ष से कम न हो।

शर्तें → राज्यपाल के पद के लिए संविधान में निम्न शर्तें इस प्रकार हैं –

i) वह केंद्र अथवा राज्य सरकार के अंतर्गत लाभ के किसी पद पर आसीन न हो।
ii) वह संसद या राज्य विधानमंडल का सदस्य न हो।
iii) उसमें अन्य कोई ऐसी अयोग्यता न हो, जो किसी कानून द्वारा निश्चित की गई हो।

शपथ → राज्यपाल को पद ग्रहण करने से पूर्व राज्य के उच्च न्यायालय (हाई कोर्ट) के मुख्य न्यायाधीश के सम्मुख (सामने) शपथ लेनी होती है।

वेतन एवं भत्ते → राज्यपाल के वेतन एवं भत्ते संसद तय करती है।

- फरवरी 2018 के बाद से राज्यपाल को 3,50,000 रुपये प्रतिमाह वेतन तथा अन्य भत्ते तथा रहने के लिए निःशुल्क निवास स्थान दिया जाता है।
- राज्यपाल का वेतन एवं भत्ते उसके कार्यकाल में कम नहीं किए जा सकते हैं।
- किंतु अनुच्छेद 360 के तहत वित्तीय आपातकाल की स्थिति में राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल के वेतन एवं भत्तों में कटौती की जा सकती है।

कार्यकाल (Term) -

- राज्यपाल पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है। (अनुच्छेद 156 के अनुसार)
- 5 वर्ष से पहले भी राष्ट्रपति राज्यपाल को उसके पद से हटा सकता है।
- राज्यपाल स्वयं भी अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है।

अक्टूबर 2004 में कांग्रेस के नेतृत्व वाली सरकार ने बिहार के राज्यपाल रामा जोइस, पंजाब के राज्यपाल ओ. पी. वर्मा एवं तमिलनाडु के राज्यपाल पी. एस राममोहन को राष्ट्रपति से बर्खास्त करवाया था।

० राज्यपाल को राष्ट्रपति द्वारा एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानांतरित किया जा सकता है।

न्यायिक उन्मुक्तियाँ —

न्यायिक उन्मुक्तियाँ इस प्रकार हैं —

i) राज्यपाल अपनी शक्तियों तथा कर्तव्यों के पालन के लिए किसी न्यायालय में उत्तरदायी नहीं होता है।

ii) उसके कार्यकाल में उस पर कोई फौजदारी मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता है।

iii) किसी कोर्ट द्वारा उसके कार्यकाल में उसे बंदी बनाने के लिए आदेश जारी नहीं किया जा सकता है।

iv) उसके खिलाफ व्यक्तिगत रूप से दीवानी केस (Civil Case) करने की स्थिति में उसे 2 महीने पहले सूचना देना अनिवार्य है।

(राज्यपाल की शक्तियाँ एवं कार्य)

1. वैधानिक शक्तियाँ — राज्यपाल की वैधानिक शक्तियाँ इस प्रकार हैं—

i) राज्यपाल राज्य विधानमंडल का अधिवेशन बुलाता है, इसे स्थगित (बीच में रोकना) कर सकता है तथा इसकी अवधि बढ़ा सकता है।

ii) राज्यपाल प्रत्येक राज्य आम चुनाव के पश्चात पहले सत्र को तथा प्रतिवर्ष प्रथम सत्र को संबोधित करता है।

iii) राज्यपाल विधानपरिषद के 1/6 सदस्यों को मनोनीत करता है।

iv) (अनुच्छेद 213) आवश्यकता पड़ने पर राज्यपाल अध्यादेश जारी कर सकता है।

v) राज्यपाल मुख्यमंत्री की सिफारिश पर विधानसभा को भंग कर सकता है।

vi) वह राज्य लोक सेवा आयोग, राज्य वित्त आयोग

तथा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की वार्षिक रिपोर्ट को विधानसभा के सामने प्रस्तुत करता है।

vii) राज्यपाल राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों (Bills) को ~~पारित~~ अपनी स्वीकृति प्रदान करता है। वह अपने विवेकानुसार किसी विधेयक को राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेज सकता है।

viii) वह राज्य विधानपरिषद तथा विधानसभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का पद खाली होने की स्थिति में किसी भी सदस्य को विधान अध्यक्षता करने के लिए कह सकता है।

कार्यपालिका या कार्यकारी शक्तियाँ –

i) राज्य का प्रशासन राज्यपाल के नाम पर चलाया जाता है।

ii) राज्यपाल मुख्यमंत्री (CM) की नियुक्ति तथा उसकी सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है।

iii) वह मुख्य मंत्री से प्रशासन के बारे में कोई भी जानकारी प्राप्त कर सकता है।

iv) राज्यपाल राज्य के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करता है।

v) जब राज्यपाल के अनुसार राज्य में शासन संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार नहीं चलाया जा रहा हो, तो राज्यपाल अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति को राज्य में राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर सकता है।

vi) राज्यपाल मुख्य मंत्री की सलाह से मंत्रियों को हटा सकता है।

vii) राज्यपाल राज्य के महाधिवक्ता (Advocate General) और राज्य महिला आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों, राज्य ~~[illegible]~~ सेवा आयोग के ~~[illegible]~~ अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति करता है।

viii) वह राज्य विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति के रूप में कार्य करता है। तथा राज्य विश्वविद्यालयों के कुलपति की नियुक्ति करता है।

न्यायिक शक्तियाँ → इस प्रकार हैं-

i) राज्यपाल राज्य हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश को शपथ दिलाता है।

ii) राज्यपाल जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति तथा स्थानांतरण कर सकता है।

iii) (अनुच्छेद 161) राज्यपाल, राज्य कानून के उल्लंघन पर दंड/सजा प्राप्त अपराधी के दंड को क्षमा कर सकता है, कम कर सकता है अथवा कुछ समय के लिए स्थगित (रोक) कर सकता है।

वित्तीय शक्तियाँ - इस प्रकार हैं-

i) राज्यपाल को राज्य की आकस्मिक निधि (Contigency fund) पर नियंत्रण होता है। वह आवश्यकता पड़ने पर इसमें से खर्च कर सकता है। परंतु बाद में राज्य विधानमंडल से इस खर्च की स्वीकृति प्राप्त करनी होती है।

ii) कोई भी धन विधेयक राज्य विधानसभा में राज्यपाल की स्वीकृति के बिना प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

iii) (अनुच्छेद 202) राज्यपाल वित्त मंत्री से विधान सभा में वार्षिक बजट प्रस्तुत करवाता है।

iv) कोई भी अनुदान मांग (Demands for Grant) राज्यपाल की अनुमति के बिना प्रस्तुत नहीं की जा सकती है।

स्व-विवेकी शक्तियाँ - संविधान के अनुच्छेद 163(1) के तहत राज्यपाल को कुछ स्व-विवेकी शक्तियाँ दी गई हैं, इस संबंध में वह स्वयं ही तय करता है कि किसी कार्य

को अपने विवेक (समझ) से करे और किसको नहीं।
इस विषय में इसका फैसला अंतिम होता है, क्योंकि इसको किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

- राज्यपाल की स्व-विवेकी शक्तियाँ इस प्रकार हैं -

i) जब विधान सभा के चुनावों में किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता, तो राज्यपाल अपने विवेक से विधान सभा के किसी भी सदस्य को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित कर सकता है।

ii) राज्यपाल विधानमंडल से प्राप्त किसी विधेयक को राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेज सकता है।

iii) केंद्र सरकार समय-समय पर राज्यों को निर्देश भेजती रहती है। इन निर्देशों का पालन न करने पर राज्यपाल राज्य सरकार के विरुद्ध केंद्र सरकार को रिपोर्ट भेज सकता है।

iv) राज्यपाल संवैधानिक मशीनरी की असफलता पर राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेजता है। राष्ट्रपति इस रिपोर्ट के आधार पर राष्ट्रपति शासन की घोषणा कर सकता है।

v) यदि की किसी मुख्यमंत्री के पास विधानसभा में बहुमत न हो और वह सरकार गिरने के भय से विधानमंडल का अधिवेशन नहीं बुला रहा हो, तो ऐसे में राज्यपाल उस मुख्यमंत्री को पदच्युत (पद से हटाना) कर सकता है।

vi) असम व सिक्किम के राज्यपाल को कई अन्य प्रकार की स्व-विवेकी शक्तियाँ प्राप्त है।

निष्कर्ष -> राज्यपाल को राज्यों में संवैधानिक अध्यक्ष होने के नाते कुछ शक्तियाँ प्रदान की गई है। राज्य की कार्यकारी शक्तियाँ राष्ट्रपति

में निहित हैं। परंतु इन शक्तियों का प्रयोग वह मंत्रिपरिषद की सलाह पर करता है।

राज्यपाल की स्थिति (Position of Governor)
एक ओर राज्यपाल राज्य का संवैधानिक मुखिया है, तो दूसरी ओर राज्य की कार्यपालिका शक्तियाँ उसमें निहित हैं। उसकी वास्तविक स्थिति को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं।

→
1. राज्यपाल संवैधानिक मुखिया के रूप में -
भारत में संसदीय शासन प्रणाली लागू की गई है। इसके तहत राज्यपाल को राज्य का संवैधानिक मुखिया बनाया गया है तथा उसे नाममात्र की शक्तियाँ सौंपी गई हैं। अनुच्छेद 163 के अनुसार, "राज्यपाल को उसके कार्यों के निर्वहन में सहायता एवं परामर्श देने के लिए मुख्य मंत्री की अध्यक्षता वाली एक मंत्रि-परिषद होगी।" अतः राज्यपाल केवल नाममात्र का संवैधानिक अध्यक्ष है। वह मुख्यमंत्री के परामर्श पर ही सारे निर्णय लेता है।

2. संवैधानिक अध्यक्ष से अधिक के रूप में
राज्यपाल के पास कुछ स्व-विवेकी शक्तियाँ भी होती है तथा इनके विषय में उसका निर्णय अंतिम होता है। जब वह अपनी इन शक्तियों का प्रयोग करता है, तो वह संवैधानिक अध्यक्ष से अधिक होकर कार्य करता है। राज्यपाल की स्व-विवेकी शक्तियाँ कुछ इस प्रकार हैं -

1) यदि विधानसभा चुनावों में किसी भी दल (पार्टी) को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो, या कई बार मुख्यमंत्री पद पर कई दावेदार अपने सामने आते हैं, तब राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति के संबंध में अपने स्व-विवेक से

निर्णय करता है।
अनेक बार राज्यपालों ने अपने स्व-विवेक से मुख्यमंत्री नियुक्त किए हैं। उदाहरण के तौर पर 1967 में जम्मू-कश्मीर के मुख्य मंत्री शेख अब्दुल्ला के त्याग-पत्र के बाद कांग्रेस पार्टी के विधायक दल के नेता को सरकार बनाने का अवसर नहीं दिया था, जबकि कांग्रेस पार्टी को जम्मू-कश्मीर विधान सभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त था।

ii) राज्यपाल राष्ट्रपति से राज्य सरकार को भंग करके राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाने की सिफारिश कर सकता है। राज्यपाल द्वारा निम्न परिस्थितियों में सरकार को बर्खास्त किया जा सकता है—

(a) राज्य विधानसभा में बहुमत समाप्त होने पर, राज्यपाल मुख्यमंत्री को अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कह सकता है। ऐसे में यदि मुख्यमंत्री विधानसभा का अधिवेशन बुलाने के लिए तैयार न हो और न ही अपना त्याग-पत्र दे, तो राज्यपाल मुख्यमंत्री को पदच्युत कर सकता है।

- यदि विधानसभा में 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित हो जाने के बाद मुख्यमंत्री इस्तीफा न दे, तो राज्यपाल उसे हटा सकता है।
- यदि किसी स्वतंत्र ट्रिब्यूनल द्वारा मुख्य मंत्री को भ्रष्टाचार के आरोप में दोषी ठहराया गया हो, तो राज्यपाल राज्य सरकार को भंग कर सकता है।
- यदि सरकार संविधान के अनुसार कार्य न कर रही हो, या उसकी नीतियों से देश की एकता एवं अखंडता को खतरा उत्पन्न हो गया हो, तो केंद्र व राज्य के बीच बार-बार संघर्ष

की स्थिति पैदा की जा रही हो, तो ऐसे में राज्यपाल सरकार को बर्खास्त कर सकता है। जनवरी 1976 में तमिलनाडु सरकार को इसी आधार पर बर्खास्त किया गया था।

ii) यदि सरकार को समर्थन दे रहे दल सरकार से अपना समर्थन वापस ले लेते हैं, तो ऐसे में राज्यपाल सरकार को हटा सकता है।

iii) सामान्यतया राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श से विधानमंडल का अधिवेशन बुलाता है, लेकिन असाधारण परिस्थितियों में राज्यपाल अपने स्व-विवेक से बिना मुख्यमंत्री के परामर्श के भी राज्य विधानमंडल का अधिवेशन बुला सकता है।

iv) संसदीय लोकतंत्र में संविधान अनुसार राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श पर विधानसभा को भंग कर देता है, किंतु विशेष परिस्थितियों में राज्यपाल मुख्यमंत्री की विधानसभा भंग करने की सिफारिश को मानने से इंकार भी कर सकता है अथवा मुख्यमंत्री की सिफारिश के बिना भी विधानसभा भंग कर सकता है। 1995 में आंध्र प्रदेश के राज्यपाल कृष्ण कांत ने विधान सभा भंग करने की मुख्य मंत्री एन. टी रामाराव की सलाह नहीं मानी थी।

v) राज्यपाल के द्वारा स्व-विवेक से कुछ अन्य कार्य भी किए जाते हैं—

- वह मुख्यमंत्री से किसी भी विषय में सूचना माँग सकता है।
- वह मुख्य मंत्री को कह सकता है कि वह

ऐसे मामले को, जिस पर अकेले किसी मंत्री ने निर्णय लिया है, मंत्रि-परिषद के सामने विचार हेतु रखे।

- वह विधानमंडल द्वारा पारित किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है या विधेयक (Bill) को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित कर सकता है।

3. राज्यपाल केंद्र सरकार के प्रतिनिधि / एजेन्ट के रूप में - भारतीय संविधान के तहत राज्यपाल केंद्र सरकार का अभिकर्ता (Agent) है। राज्यों एवं केंद्र के बीच संबंध बने रहे तथा राष्ट्रीय एकता कायम रखी जा सके। इसके लिए राज्यपाल का पद एक साधन की तरह काम करता है। राज्यपाल की नियुक्ति केंद्र में राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

केंद्र सरकार के अभिकर्ता के रूप में राज्यपाल निम्नलिखित कार्य करता है —

i) अनुच्छेद 256 व 257 के अंतर्गत केंद्र सरकार राज्य सरकारों को उनकी कार्यपालिका शक्ति के संबंध में आवश्यक निर्देश दे सकती है। केंद्र सरकार राज्यों को राष्ट्रीय मार्गों तथा संचार साधनों की रक्षा का काम सौंप सकती है। राज्यपाल ऐसे निर्देशों को राज्य में लागू करवाते हैं।

ii) अनुच्छेद 258 के अंतर्गत केंद्र सरकार अपने कुछ प्रशासनिक कार्यों को भी राज्य सरकारों को हस्तांतरित कर सकती है। ऐसे में केंद्र सरकार राज्यपाल के माध्यम से निर्देश देती है तथा राज्यपाल का कर्तव्य यह होता है कि वह राज्य सरकार से इन निर्देशों का पालन करवाए।

iii) यदि राज्य सरकार केंद्र सरकार के निर्देशों का पालन नहीं करती है, तो

राज्यपाल उसे चेतावनी दे सकता है।
राज्यपाल ऐसे परिस्थितियों में अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति को राज्य सरकार के विरुद्ध रिपोर्ट भेज सकता है। जिस आधार पर राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाया जाता है।

iv) अनुच्छेद 200 के तहत राज्यपाल अपने विवेक अनुसार राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित कर सकता है।

v) अनुच्छेद 213 के अनुसार, राज्यपाल को अध्यादेश जारी करने का अधिकार है, किंतु उसे कुछ विशेष विषयों के संबंध में राष्ट्रपति की स्वीकृति लेनी होती है।

निष्कर्ष → संविधान निर्माताओं के द्वारा यह सोचा गया था कि राज्यपाल की भूमिका राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष तथा राज्य में केंद्र सरकार के प्रतिनिधि के रूप में होगी। लेकिन व्यवहार में राज्यपाल बाद वाली भूमिका ही ज्यादा निभाते हैं। अतः आवश्यक है कि राज्यपाल की दोनों भूमिकाओं - केंद्र के प्रतिनिधि के रूप में तथा राज्य के संवैधानिक मुखिया के रूप में भूमिका - में सामंजस्य स्थापित किया जाए। अतः राज्यपाल को केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार दोनों का विश्वास प्राप्त होना चाहिए।

मुख्यमंत्री एवं मंत्रि-परिषद

मुख्यमंत्री

नियुक्ति- संविधान के अनुच्छेद 164 के अनुसार, "मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाएगी।" लेकिन मुख्यमंत्री की नियुक्ति के मामले में राज्यपाल स्वतंत्र नहीं है क्योंकि राज्यपाल को उस पार्टी के नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त करना पड़ता है जिसे विधानसभा के चुनाव में स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाता है।

जब विधानसभा के चुनाव में किसी एक पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता तो राज्यपाल अपनी स्व-विवेकी शक्तियों का प्रयोग करके किसी भी दल के नेता अथवा विधायक को मुख्यमंत्री नियुक्त कर सकता है। हरियाणा में 2009 के विधानसभा चुनाव में किसी भी दल(या पार्टी) को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ था क्योंकि कुल 90 सीटों में से कांग्रेस पार्टी को 40 सीट और इनेलो पार्टी को 32 सीटें प्राप्त हुई थी, ऐसे में उस समय के राज्यपाल ए. आर. किदवई ने कांग्रेस विधायक दल के नेता भूपेंद्र सिंह हुड्डा को मुख्यमंत्री नियुक्त किया था।

आवश्यक शर्त— राज्य विधानमंडल की सदस्यता अनिवार्य- संसदीय शासन प्रणाली के अनुसार राज्यों में मुख्यमंत्री बनने के लिए राज्य विधानमंडल का सदस्य होना आवश्यक है किंतु राज्यपाल ऐसे व्यक्ति को भी मुख्यमंत्री नियुक्त कर सकते हैं , जो नियुक्ति के समय राज्य विधानमंडल (विधानसभा या विधान परिषद) का सदस्य नहीं हो, लेकिन ऐसे मुख्यमंत्री को 6 महीने की अवधि के अंदर राज्य विधानमंडल की सदस्यता ग्रहण करनी होती है, यदि वह इस अवधि में राज्य विधानमंडल की सदस्यता ग्रहण नहीं कर पाए तो संविधान के अनुच्छेद 164(4) के तहत उसे अपना पद छोड़ना पड़ता है अर्थात मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा देना पड़ता है।

शपथ — राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति के समय निर्धारित तिथि को मुख्यमंत्री को पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलाते हैं। जिसमें मुख्यमंत्री प्रतिज्ञा करता है कि वह श्रद्धापूर्वक अपने कर्तव्यों का पालन करेगा और अपनी पूरी योग्यता से संविधान एवं विधि का परिक्षण, संरक्षण एवं प्रतिरक्षण करेगा।

वेतन एवं भत्ते — अनुच्छेद 164 के अनुसार मुख्यमंत्री का वेतन एवं भत्ते राज्य विधान मंडल द्वारा तय किए जाते हैं ऐसे में अलग-अलग राज्यों में मुख्यमंत्री को मिलने वाला वेतन एवं भत्ते अलग-अलग होते हैं उदाहरण के लिए सितंबर 2013 को हरियाणा विधानसभा ने एक अधिनियम के द्वारा मुख्यमंत्री का मासिक वेतन 40000 से बढाकर 50,000 ₹ (रुपये) कर दिया था।

कार्यकाल— संविधान के अनुच्छेद 164(1) के अनुसार मंत्री राज्यपाल के प्रसाद-पर्यंत(अर्थात राज्यपाल की इच्छाअपने पद पर बने रहते हैं। व्यवहार में मुख्यमंत्री तब तक अपने पद पर बना रहता है जब तक सरकार को विधानसभा का विश्वास प्राप्त होता है अर्थात मुख्यमंत्री के दल का विधानसभा में बहुमत होता है। अन्य शब्दों में जब विधानसभा सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पारित कर देती है तो सरकार का पतन हो जाता है (अर्थात मुख्यमंत्री को अपना इस्तीफा देना पड़ता है।) अनुच्छेद 356 के तहत भी राज्यपाल की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा राज्य सरकार को भंग किया जा सकता है।

शक्तियां एवं कार्य

1. मंत्री परिषद के अध्यक्ष के रूप में - संविधान के अनुच्छेद 163 में राज्य की मंत्रिपरिषद की व्यवस्था की गई है जिसमें मुख्यमंत्री मंत्री परिषद का अध्यक्ष है मंत्री परिषद के अध्यक्ष के रूप में मुख्यमंत्री निम्नलिखित कार्य करता है

(i) मंत्रियों की नियुक्ति की सिफारिश- संविधान के अनुसार मुख्यमंत्री के परामर्श पर राज्यपाल द्वारा मंत्रियों की नियुक्ति की जाती है किंतु राज्यपाल द्वारा मंत्रियों की नियुक्ति करना मात्र एक औपचारिकता है क्योंकि राज्यपाल अपनी मर्जी से किसी व्यक्ति को मुख्यमंत्री नियुक्त नहीं कर सकता है। मुख्यमंत्री अपने विवेक से मंत्रियों की एक सूची तैयार करके राज्यपाल को सौंप देता है और राज्यपाल उसे सूची के अनुसार व्यक्तियों को मंत्री के रूप में नियुक्त कर देता है।

(ii) मंत्रियों में विभागों का आबंटन— मुख्यमंत्री अपने मंत्रियों में विभागों का आवंटन भी करता है इस कार्य में उसे काफी सोच समझकर कार्य करना पड़ता है क्योंकि पार्टी के मुख्य नेताओं से परामर्श करने के बाद वह मंत्रियों को विभागों का आवंटन करता है इसके अलावा गृह, वित्त, कराधान, शहरी निकाय जैसे विभाग सभी मंत्री प्राप्त करना चाहते हैं, लेकिन अंतत: इस विषय में उसका निर्णय अंतिम होता है। इसके अलावा मुख्यमंत्री ,मंत्रियों को कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री, राज्य मंत्री स्वतंत्र प्रभार और उप-मंत्री आदि का दर्जा (Rank) देता है।

(iii) मंत्रि-परिषद का पुनर्गठन या मंत्रि-परिषद में फेरबदल- मुख्यमंत्री कभी भी मंत्री परिषद का पुनर्गठन कर सकता है अर्थात् वह कभी भी नए व्यक्तियों को मंत्रि-परिषद में शामिल कर सकता है और वर्तमान मंत्रियों को पद से हटा भी सकता है।

(iv) मंत्रियों को हटाना कोई भी मंत्री तब तक ही अपने पथ पर बना रहता है जब तक मुख्यमंत्री की इच्छा हो अन्य शब्दों में मुख्यमंत्री कभी भी किसी मंत्री को पद से हटा सकता है।

(v) मंत्रिमंडल की बैठकों की अध्यक्षता करना- मुख्यमंत्री मंत्री परिषद का अध्यक्ष होता है इसमें आते वह मंत्रिमंडल मंत्री परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता है वह मंत्रिमंडल की फैसला मुख्यमंत्री के ही फैसले होते हैं यह मंत्रिमंडल की बैठकों की तिथि एवं कार्य सूची भी तय करताहै

(vi) मंत्री परिषद का निलंबन या विघटन मुख्यमंत्री कभी भी अपने पद से त्यागपत्र (इस्तीफा) देकर मंत्री परिषद को निलंबित या भंग कर सकता है क्योंकि सैद्धांतिक रूप से मुख्यमंत्री का त्यागपत्र संपूर्ण मंत्री-परिषद का त्यागपत्र माना जाता है।

2. विधानमंडल का नेता मुख्यमंत्री मंत्री परिषद का ही नेता नहीं होता बल्कि राज्य विधानमंडल का भी नेता होता है मुख्यमंत्री विधानसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है इसलिए विधान सभा का भी नेता कहलाता है इस दृष्टि से निम्नलिखित कार्य करता है

(i) उसकी सलाह से ही राज्य विधानमंडल के अधिवेशन बुलाए जाते हैं। वह चाहे तो विधानमंडल का विशेष अधिवेशन भी बुला सकता है ।

(ii) वह राज्यविधान मंडल की कार्य सूची तय करता है ताकि विधानमंडल के सदनों की कार्रवाई चलाई जा सके

(iii) वह राज्य विधानमंडल में विधेयकों को प्रस्तुत करवाता है तथा विधेयकों को पारित करवाने में उसकी मुख्य भूमिका होती है।

(iv) वह विधानमंडल में सरकार की ओर से नीतियों एवं कार्यक्रमों की घोषणा करता है तो आवश्यकता पड़ने पर उनके विषय में स्पष्टीकरण भी देता है।

(v) वह राज्यपाल से विधानसभा भंग करने के सिफारिश भी कर सकता है हालांकि राज्यपाल को अधिकार होता है कि वह मुख्यमंत्री की इस प्रकार की सिफारिश को माने अथवा न माने।

3. उच्च अधिकारियों की नियुक्तियां— राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श से ही राज्य में उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करता है। इन अधिकारियों में राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य, राज्य महिला आयोग की अध्यक्ष एवं सदस्य, राज्य सूचना आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य , राज्य निर्वाचन आयोग के अध्यक्ष, राज्य का महाधिवक्ता, राज्य के विश्वविद्यालय के कुलपति आदि शामिल है।

4. राज्यपाल के मुख्य सलाहकार के रूप में — मुख्यमंत्री राज्यपाल का मुख्य सलाहकार होता है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 163 में लिखा है कि राज्यपाल को उसके कार्यों के निर्वहन में सहायता एवं परामर्श लेने के लिए एक मंत्री परिषद होगी जिसका अध्यक्ष मुख्यमंत्री होगा। मुख्यमंत्री राज्यपाल के सलाहकार के रूप में कार्य करता है, हालांकि संवैधानिक दृष्टि से मुख्यमंत्री की सलाह मानना या नहीं मानना राज्यपाल की इच्छा पर निर्भर करता है किंतु सामान्यतया राज्यपाल उसकी सलाह मान लेता है।

5. राज्यपाल एवं मंत्री परिषद के बीच कड़ी— संविधान के अनुसार राज्यपाल एवं मंत्रियों के बीच कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता है ऐसे में मुख्यमंत्री राज्यपाल एवं मंत्री परिषद को जोड़ने का काम करता है। मुख्यमंत्री मंत्री -परिषद द्वारा लिए गए फैसलों से राज्यपाल को अवगत कराता है तथा राज्यपाल के विचार मंत्री परिषद के सामने रखता है। जब राज्यपाल को किसी विभाग के बारे में कोई सूचना प्राप्त करनी होती है, तो राज्यपाल वह सूचना मुख्यमंत्री से प्राप्त करता है।

6. विभागों में विभागों में तालमेल— शासन की कुशलता के लिए विभागों में आपसी ताल में होना आवश्यक है इसलिए

मुख्यमंत्री विभिन्न प्रशासनिक विभागों में ताल में स्थापित करने का कार्य करता है जब कभी दो विभागों के बीच में किसी मुद्दे पर विवाद उत्पन्न होता है , तो मुख्यमंत्री अपने प्रभाव का प्रयोग करके उसको हल करता है।

7. अपने दल का नेता - मुख्यमंत्री केवल मंत्री-परिषद का नेता नहीं होता बल्कि अपने दल का प्रमुख नेता भी होता है। मुख्यमंत्री की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसका अपने डाल पर किस सीमा तक प्रभाव है जो मुख्यमंत्री की पकड़ दल के संगठन पर ढीली हो जाती है तो मुख्यमंत्री का प्रभाव कम होने लगता है और कभी-कभी ऐसी स्थिति में उसे अपना पद भी छोड़ना पड़ जाता है जैसे की 20 फरवरी 2015 को बिहार के मुख्यमंत्री जीतन राम मांझी को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा था। मुख्यमंत्री आम चुनावों में अपने दल के उम्मीदवार के पक्ष में चुनाव प्रचार भी करता है।

मुख्य मन्त्री की स्थिति (Position of Chief Minister)

यद्यपि संविधान के अन्तर्गत मुख्य मंत्री की स्थिति उतनी सुदृढ़ नहीं है, जितनी कि प्रधान मंत्री की, क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 168 के अनुसार उसे राज्यपाल को समस्त विषयों में नहीं, बल्कि उन्हीं विषयों में परामर्श देने का अधिकार है, जिनमें राज्यपाल स्व-विवेक से निर्णय नहीं लेता है। साथ ही, यह भी तय करने का अधिकार राज्यपाल को ही है कि वह किस विषय में स्व-विवेक से निर्णय लेगा और किस में नहीं। फिर भी, राज्य में मुख्य मंत्री की स्थिति काफी सुइद है, क्योंकि संसदीय प्रणाली की दृष्टि से वह राज्य की वास्तविक कार्यपालिका है। यह मंत्रि-परिषद का निर्माण करता है , मंत्रियों के बीच विभागों का वितरण करता है और कभी भी किसी मंत्री से त्याग पत्र माँग सकता है। यहां तक कि अपना त्याग पत्र देकर या राज्यपाल को सिफारिश करके मंत्रि-परिषद को भंग करा सकता है। इतना ही नहीं, वह राज्यपाल को सिफारिश करके, विधान सभा को उसका कार्यकाल पूरा होने से पहले भंग करा सकता है। वस्तुतः मुख्य मंत्री की स्थिति निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है-

1. विधान सभा में मुख्य मंत्री की स्थिति (Position of Chief Minister in Legislative Assembly)- मुख्य मंत्री की स्थिति इस बात पर बहुत अधिक निर्भर करती है कि विधान सभा में उसके दल के पास कितनी सीटें हैं। यदि विधान सभा में उसके दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त है, तो उसकी स्थिति मजबूत होगी। 2004-2009 के दौरान हरियाणा के मुख्य मंत्री भूपेन्द्र सिंह हुड्डा के दल को विधान सभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त था, अतः उनकी स्थिति बहुत मजबूत यौ। इसके विपरीत, यदि विधान सभा में मुख्य मंत्री के दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो और मुख्य मंत्री अन्य दलों के सहयोग पर निर्भर हो अर्थात राज्य में मिली-जुली सरकार (Coalition Government) हो, तो मुख्य मंत्री की स्थिति कमजोर होगी, वर्तमान (जून 2024) में बिहार के मुख्य मन्त्री नीतिश कुमार की सुदृढ़ स्थिति न होने का मुख्य कारण यही है।

2. दलीय नेतृत्व का समर्थन (Support of Party Leadership) - यदि मुख्य मंत्री को अपने दल के शीर्षस्थ नेतृत्व का समर्थन प्राप्त होगा. तो उसकी स्थिति सुदृढ़ होगी विशेष रूप से तब, जब मुख्य मंत्री का संबंध किसी राष्ट्रीय दल से हो। दलीय नेतृत्व का समर्थन गंवा देने पर मुख्य मंत्री को त्याग-पत्र देना या फिर पद छोड़ना पड़ सकता है; जैसे - 20 फरवरी, 2015 को बिहार के मुख्य मंत्री जीतनराम मांझी को, 9 मार्च, 2021 को उत्तराखण्ड के मुख्य मन्त्री त्रिवेन्द्र सिंह रावत को, 26 जुलाई, 2021 को कर्नाटक के मुख्य मन्त्री बाई. एस. यदुरप्पा को, 11 सितम्बर, 2021 को गुजरात के मुख्य मन्त्री विजय रूपाणी को, 18 सितम्बर, 2021 को पंजाब के मुख्य मन्त्री कैप्टन अमरिन्दर सिंह को और 12 मार्च, 2024 को हरियाणा के मुख्य मन्त्री मनोहर लाल खट्टर दल के नेतृत्व का समर्थन प्राप्त न होने पर त्याग-पत्र देना पड़ा था।

3. राज्यपाल से संबंध (Relations with the Governor)- मुख्य मंत्री को स्थिति बहुत सीमा तक इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसके राज्यपाल से कैसे संबंध है। यदि राज्यपाल प्रभावी व्यक्तित्व वाला और संविधान का जानकार होगा, तो मुख्य मंत्री की स्थिति सुदृढ़ नहीं होगी। इसी प्रकार यदि राज्यपाल केन्द्र में सत्तारूढ़ दल का सदस्य रह चुका हो और मुख्य मंत्री विपक्षी दल का हो, तो राज्यपाल मुख्य मंत्री को परेशान कर सकता है। यहां तक कि राज्यपाल केन्द्र को राज्य में संवैधानिक तंत्र के विफल होने की रिपोर्ट भेजकर सरकार को कभी भी भंग करा सकता है। इसके विपरीत, यदि राज्यपाल का संबंध उस दल से रहा हो, जिसकी राज्य में सरकार है, तो मुख्य मंत्री की स्थिति सुदृढ़ होगी।

4. केन्द्र सरकार से सम्बन्ध (Relations with Central Government)- यदि मुख्य मंत्री के केन्द्र सरकार (व्यवहार में प्रधान मंत्री) से मधुर संबंध हों और ऐसा तब ही हो सकता है, जब केन्द्र में भी उसी दल की सरकार हो, जिस दल की सरकार

राज्य में कार्य कर रही है, तो मुख्य मंत्री की स्थिति बहुत सुदृढ़ होगी, क्योंकि उसे राज्य के विकास के लिए केन्द्र से पर्याप्त अनुदान मिलता रहेगा और राज्य में उसका जनाधार मजबूत हो जाएगा। केन्द्र से संबंध अच्छे न होने का प्रभाव मुख्य मंत्री पर अवश्य ही पड़ता है। पश्चिम बंगाल की मुख्य मंत्री ममता बनर्जी के केन्द्र से कटुतापूर्ण सम्बन्धों ने, मुख्य मंत्री के रूप में उनको बहुत प्रभावित किया।

मन्त्रि-परिषद (Council of Ministers)

भारत में केन्द्र (संघ) की तरह, राज्यों में भी संसदीय शासन प्रणाली लागू की गयी है, जिसके तहत दोहरी कार्यपालिका नाममात्र की कार्यपालिका एवं वास्तविक कार्यपालिका की व्यवस्था की गयी है। राज्यों में राज्यपाल नाममात्र को कार्यपालिका और मंत्रि-परिषद वास्तविक कार्यपालिका कहलाती है। **संविधान के अनुच्छेद 163 में** राज्य की मंत्रि-परिषद के कार्यों का उल्लेख करते हुए लिखा गया है, "जिन बातों में संविधान के द्वारा या अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कार्य अपने विवेक अनुसार करे, उनको छोड़कर राज्यपाल के कार्यों में सहायता एवं परामर्श देने के लिए मुख्य मंत्री की अध्यक्षता वाली एक मंत्रि-परिषद होगी।"

1. मन्त्रि-परिषद का गठन (Formation of Council of Minister)- मंत्रि-परिषद के गठन के लिए सबसे पहले राज्यपाल द्वारा मुख्य मंत्री की नियुक्ति की जाती है। इसके बाद मुख्य मंत्री के परामर्श से राज्यपाल अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करता है। इसके लिए मुख्य मंत्री मंत्रि-परिषद में शामिल किए जाने वाले व्यक्तियों के नामों की एक सूची तैयार करके राज्यपाल को सौंप देता है और राज्यपाल उसमें शामिल व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त कर देता है।

2. विभागों का आवंटन (Allocation of Portfolios)- सविधान के अनुसार मंत्रियों में विभागों के आवंटन का कार्य राज्यपाल को सौंपा गया है, किन्तु व्यवहार में यह कार्य मुख्य मंत्री द्वारा ही किया जाता है। विभागों का आबंटन करते समय मुख्य मंत्री को बड़ी सूझबूझ से काम करना होता है, क्योंकि ऐसा करते समय उसे इस बात का ध्यान रखना होता है कि कौन-सा मंत्री किस विभाग को कुशलतापूर्वक संभाल सकता है, साथ पार्टी/गठबंधन के नेताओं का दबाव को भी सहन करना होता है।

3. राज्य विधानमंडल की अनिवार्य सदस्यता (Compulsory Membership of State Legislature)- मुख्य मंत्री सहित सभी मंत्रियों के लिए राज्य विधानमंडल का सदस्य होना अनिवार्य है, किंतु किसी ऐसे व्यक्ति को भी मंत्री नियुक्त किया जा सकता है, जो नियुक्ति के समय राज्य विधानमंडल (विधान सभा या विधान परिषद) का सदस्य न हो, लेकिन ऐसे व्यक्ति को 6 महीने की अवधि के अंदर राज्य विधानमंडल की सदस्यत ग्रहण करनी होती है। यदि वह मंत्री इस अवधि में राज्य विधानमंडल की सदस्यता ग्रहण नहीं कर पाता है, तो उसे अनुच्छेद 164(4) के तहत अपना पद छोड़ना पड़ता है।

4. वेतन एवं भत्ते (Salary and Allowances)- अनुच्छेद 164 के अनुसार मत्रियों को मिलने वाले वेतन एव भत्ते राज्य विधानमंडल द्वारा तय किए जाते हैं। इस नाते अलग-अलग राज्यों में मंत्रियों के वेतन एवं भत्ते अलग-अलग हो सकते हैं। सितम्बर, 2013 को हरियाणा विधान सभा द्वारा एक विधेयक पारित करके मंत्रियों का मासिक वेतन ₹40,000 से बढ़ाकर ₹ 50,000 कर दिया गया। वेतन के अलावा, मंत्रियों को आवास, टेलीफोन आदि की सुविधाएं भी दी जाती है।

5. मंत्रियों की श्रेणियां (Ranks of Ministers)- मंत्रि-परिषद में निम्नलिखित तीन प्रकार के मंत्री शामिल होते हैं—

(i) केबिनेट मंत्री (Cabinet Ministers)- केबिनेट मंत्री सर्वोच्च स्तर के मंत्री होते हैं, जो किसी-न-किसी विभाग के प्रभारी होते हैं। प्रायः एक केबिनेट मंत्री को अनेक विभाग सौंपे जाते हैं। कैबिनेट मन्त्रियों की संख्या निर्धारित तो नहीं होती है, किन्तु इनकी संख्या प्रायः कम ही रखी जाती है। इनका कार्य नीति-निर्माण करना होता है।

(ii) राज्य मंत्री (Ministers of State)- राज्य मंत्री केबिनेट मंत्रियों से नीचे स्तर वाले मंत्री होते हैं। ये केबिनेट मंत्रियों की

उनके कार्य में सहायता करते हैं। इनको स्वतंत्र रूप से किसी कम महत्वपूर्ण विभाग का प्रभारी बनाया जा सकता है, किन्तु ये मंत्रिमंडल (Cabinet) की बैठकों में भाग नहीं लेते हैं।

(iii) उप-मंत्री (Deputy Ministers)-उप-मंत्री सबसे नीचे स्तर वाले मंत्री होते हैं। ये केबिनेट मंत्रियों एवं राज्य मंत्रियों की सहायता के लिए नियुक्त किए जाते हैं। ये किसी विभाग के प्रभारी नहीं होते हैं और न ही ये मंत्रिमंडल (Cabinet) की बैठकों में भाग लेते हैं। ये प्रायः केबिनेट मंत्रियों एवं राज्य मंत्रियों द्वारा सौंपे गए कार्य करते हैं।

(iv) संसदीय सचिव (Parliamentary Secretaries)- तकनीकी दृष्टि से संसदीय सचिव मंत्री नहीं माने जाते हैं, क्योंकि इनकी नियुक्ति मुख्य मंत्री द्वारा की जाती हैं और वहीं इनको पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलाता है। इनका मुख्य कार्य विभागीय मंत्रियों की विधानमंडल में सहायता करना होता है। हरियाणा के मुख्य मंत्री भूपेन्द्र सिंह हुड्डा ने नवम्बर, 2009 में छः और जनवरी, 2011 में तीन विधायकों को संसदीय सचिव नियुक्त किया था।

6. उप-मुख्य मंत्री (Deputy Chief Minister)- यद्यपि संविधान द्वारा राज्यों में उप-मुख्य मंत्री की व्यवस्था नहीं की गयी है। फिर भी, राज्यपाल द्वारा मुख्य मंत्री की सिफारिश पर राज्य में उप-मुख्य मंत्रों की नियुक्ति की जा सकती है। हरियाणा में कांग्रेस सरकार के कार्यकाल (2004-2009) में चन्द्रमोहन को उप-मुख्य मंत्री बनाया गया था। इसी प्रकार अक्टूबर, 2019 में हरियाणा के मुख्य मन्त्री ने जननायक जनता पार्टी के नेता दुष्यन्त चौटाला को उप-मुख्य मन्त्री बनाया। गठबंधन सरकारों के इस दौर में उप-मुख्य मंत्री एक अनिवार्यता-सी बन चुकी है।

7. मन्त्रि-परिषद का आकार (Size of Council of Ministers)- 91वें संशोधन अधिनियम (2003) द्वारा मंत्रि-परिषद का आकार तय कर दिया गया। इस संशोधन के अनुसार राज्य में मुख्य मंत्री सहित मंत्रियों की संख्या विधान सभा की सदस्य-संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती है, लेकिन जिन राज्यों की विधान सभा की सदस्य संख्या कम है, वहां मंत्रियों की संख्या 12 तक हो सकती है। किन्तु दिल्ली विधान सभा की सदस्य-संख्या 70 होने के बावजूद भी, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली अधिनियम (1993) के अनुसार दिल्ली में मुख्य मंत्री सहित मंत्रियों की संख्या सात निर्धारित की गयी है।

शक्तियाँ एवं कार्य (Powers and Functions)

राज्यों में मंत्रि-परिषद (और व्यवहार में मंत्रिमंडल) की शक्तियाँ एवं कार्य निम्नलिखित है-

1. नीतियों का निर्माण (Formulation of Policies)— मंत्रि-परिषद का मुख्य कार्य शासन-संबंधी नीतियों का निर्माण करना है। अन्य शब्दों में, मंत्रि-परिषद यह तय करती है कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों; जैसे कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, उद्योग, खेलकूद के विषय में सरकार की क्या नीतियाँ होंगी। विधान सभा के चुनावों के अवसर पर प्रायः सभी राजनीतिक दल अपने घोषणा-पत्र जारी करते हैं। चुनाव जीतने के बाद सत्तारूढ़ दल इन्हीं नौतियों के माध्यम से चुनावी घोषणा पत्र में वर्णित अपने वादों को पूरा करने का प्रयास करता है।

2. प्रशासन पर नियंत्रण (Control over Administration)- शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रशासन को अनेक विभागों में बांटा जाता है और प्रत्येक विभाग किसी मंत्री को सौंप दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रशासनिक विभाग किसी-न-किसी मंत्री के नियंत्रण में कार्य करता है, जो मंत्रि-परिषद द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार अपने विभाग का संचालन करता है।

3. कानूनों का क्रियान्वयन (Implementation of Laws)- राज्य विधानमंडल द्वारा जिन कानूनों का निर्माण किया जाता है, उनको क्रियान्वित करना मंत्रि-परिषर का दायित्व होता है। यदि मंत्रि-परिषद द्वारा इन कानूनों को सही ढंग से क्रियान्वित नहीं किया जाएगा, तो शासकीय नीति विफल हो जाएगी और राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखना कठिन हो जाएगा।

4. विभिन्न विभागों में तालमेल (Co-ordination among Various Departments)- कुशल शासन-संचालन के लिए, विभिन्न प्रशासनिक विभागों में तालमेल होना आवश्यक है और विभिन्न प्रशासनिक विभागों में तालमेल स्थापित करने का यह

कार्य मंत्रि-परिषद द्वारा किया जाता है। विभिन्न प्रशासनिक विभागों के मध्य उत्पन्न विवाद मंत्रि-परिषद की बैठकों में प्रस्तुत किए जाते हैं, जहां बातचीत द्वारा इनको सुलझा लिया जाता है।

5. नियुक्तियाँ (Appointments)— राज्यपाल द्वारा राज्य में जो भी नियुक्तियाँ की जाती हैं, ये मंत्रि-परिषद के परामर्श से ही की जाती हैं। वस्तुतः उच्च पदों पर नियुक्ति-संबंधी निर्णय मंत्रि-परिषद द्वारा ही लिए जाते हैं. क्योंकि राज्यपाल इसके निर्णयों के अनुसार ही नियुक्तियाँ करता है। इन पदों में मुख्य है-राज्य लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष एवं सदस्य, राज्य महिला आयोग की अध्यक्षा एवं सदस्य, राज्य सूचना आयोग का अध्यक्ष एवं सदस्य, राज्य के महाधिवक्ता एवं विश्वविद्यालयों के कुलपति आदि।

6. कानूनों का निर्माण (Enactment of Laws) - यद्यपि कानून निर्माण का कार्य राज्य विधानमंडल का होता है लेकिन व्यवहार में यह कार्य भी मंत्रि-परिषद द्वारा ही किया जाता है। वस्तुतः सरकारी विधेयक सम्बन्धित मन्त्रालयों द्वारा तैयार किए जाते हैं और राज्य विधानमंडल में प्रस्तुत किए जाते हैं। दलीय समर्थन के कारण मंत्रि-परिषद इन्हें विधानमंडल से आसानी से पारित करा लेती है।

7. वित्तीय कार्य (Financial Functions)- मंत्रि-परिषद का राज्य की वित्त व्यवस्था पर पूरा नियंत्रण होता है। यह राज्य की वित्तीय नीति तय करती है। वित्त मंत्री द्वारा सभी धन विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं। मंत्रि-परिषद द्वारा स्वीकृत वार्षिक बजट वित्त मंत्री द्वारा विधान सभा में प्रस्तुत किया जाता है, जो दलीय समर्थन के कारण आसानी से पारित हो जाता है।

8. न्यायिक कार्य (Judicial Functions)- मंत्रि-परिषद न्यायिक कार्य भी करती है, क्योंकि राज्यपाल अपनी न्यायिक शक्तियों का प्रयोग मंत्रि-परिषद के परामर्श से ही करता है। उदाहरण के लिए जब राज्यपाल मृत्यु दण्ड को छोड़कर किसी अन्य अपराध के लिए सजा प्राप्त व्यक्ति को क्षमा करता है, तो वह यह कार्य मत्रि-परिषद के परामर्श से ही करता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (Important Questions)

1. राज्य के मुख्य मंत्री की नियुक्ति कैसे होती है? मुख्य मंत्री की शक्तियाँ एवं स्थिति का वर्णन कीजिए।
(How the Chief Minister of state is appointed? Discuss the powers and position of Chief Minister)

2. राज्य के मुख्य मंत्री की शक्तियों और स्थिति की व्याख्या कीजिए।(Explain the powers and position of the Chief Minister of State.)

3. किसी राज्य के मुख्य मंत्री की नियुक्ति, एवं उसकी शक्ति का वर्णन करें। (Discuss the appointment and powers of the Chief Minister of a state.)

4. राज्य में मंत्रि-परिषद का निर्माण कैसे होता है? उसकी शक्तियों, कार्यों एवं स्थिति का वर्णन कीजिए। (How is the Council of Ministers in a state formed? Discuss its powers, functions and position.)

Unit-III

संसद : रचना और कार्य (Parliament: composition and Functions)

भारत में केंद्रीय विधानपालिका को संसद कहा जाता है। भारत में संसद के दो सदन हैं — लोकसभा एवं राज्यसभा। भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 79** के अनुसार, "संघ के लिए एक संसद होगी, जिसमें राष्ट्रपति और दो सदन होंगे जिनको क्रमश: राज्यसभा एवं लोकसभा के नाम से जाना जाएगा।" इस प्रकार राष्ट्रपति को भी संसद का हिस्सा माना जाता है। संसद देश में कानून बनाने वाली सर्वोच्च संस्था है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 से लेकर 123 तक संसद से संबंधित हैं।

संसद के दोनों सदनों का वर्णन इस प्रकार है—

राज्यसभा

राज्यसभा संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है। इसे संसद का ऊपरी सदन के साथ - साथ द्वितीय सदन भी कहा जाता है। राज्य सभा का वर्णन इस प्रकार है—

रचना — संविधान के अनुच्छेद 80 के अनुसार आगे सभा के सदस्यों की कुल संख्या ढाई सौ तय की गई है इसमें से 238 सदस्य भारतीय संघ के राज्यों एवं संघ क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं और शेष 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। ये 12 सदस्य वे होते हैं, जिनका साहित्य, विज्ञान, कला एवं समाज सेवा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान होता है।

वर्तमान में राज्यसभा के सदस्यों की संख्या 245 है , जिनमें 233 सदस्य राज्यों एवं संघ क्षेत्रों से चुनकर आते हैं और शेष 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जाते हैं।

चुनाव — राज्यसभा के सदस्यों का चुनाव राज्य विधानसभा के सदस्यों द्वारा अनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (Proportional Representation) के अनुसार एकल संक्रमनीय मत (single Transferable vote) पद्धति द्वारा किया जाता है। अमेरिका , स्विट्जरलैंड एवं रूस के विपरीत, राज्यसभा में भारतीय संघ के सभी राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों को उनकी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है।

सदस्यों की योग्यताएं— संविधान के अनुसार राज्यसभा का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार के पास निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए-

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. वह 30 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
3. वह पागल, दिवालिया या अपराधी ना हो।
4. वह किसी लाभ के पद पर आसीन ना हो ।
5. वह संसद द्वारा बने किसी कानून के द्वारा आरोग्य न ठहराया गया हो

एक राज्य में रहने वाला व्यक्ति किसी दूसरे राज्य से चुनाव लड़ सकता है।

कार्यकाल — राज्य सभा एक स्थाई सदन है। इसलिए अनुच्छेद 83(1) के अनुसार इसको भंग नहीं किया जा सकता है। राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव 6 वर्ष के लिए किया जाता है, लेकिन इसके लगभग एक तिहाई सदस्य हर 2 वर्ष बाद सेवानिवृत हो जाते हैं।

पीठासीन अधिकारी — भारत के उपराष्ट्रपति राज्यसभा के पदेन सभापति के तौर पर कार्य करते हैं। संविधान के **अनुच्छेद 89** के अंतर्गत, **"भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होगा।"** राज्यसभा का एक उपसभापति भी होता है और उसका चुनाव स्वयं राज्य सभा द्वारा किया जाता है। सभापति सदन के बैठकों की अध्यक्षता करता है और सदन में अनुशासन बनाए रखता है। राज्यसभा के सभापति(उप-राष्ट्रपति) का चुनाव 5 वर्ष के लिए किया जाता है।

विरोधी दल के नेता को मान्यता — 1977 से पूर्व राज्यसभा में विरोधी दल के नेता को मान्यता प्राप्त नहीं थी , किंतु 1977 में जनता पार्टी सरकार ने इस सदन में विरोधी दल के नेता को कानूनी मान्यता प्रदान की। विरोधी दल के मान्यता प्राप्त नेता का दर्जा भारत सरकार के कैबिनेट मंत्री के बराबर होता है। इस नाते उसे कैबिनेट मंत्री के बराबर मासिक वेतन , निशुल्क आवास, यात्रा भत्ता, टेलीफोन एवं अन्य सुविधाएं मिलती हैं।

राज्य सभा की शक्तियाँ (Powers of Rajya Sabha)- राज्य सभा भारतीय संसद का दूसरा, किन्तु उच्च सदन है। राज्य सभा को निम्नलिखित शक्तियाँ प्राप्त हैं-

1. वैधानिक शक्तियां (Legislative Powers)- राज्य सभा लोक सभा के साथ मिलकर कानून बनाती है। कोई भी साधारण विधेयक पहले राज्य सभा में पेश किया जा सकता है और यहाँ से पारित होने पर लोक सभा के पास भेजा जाता है। कानून बनने के लिए साधारण विधेयक का दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित होना आवश्यक है। किसी विधेयक पर दोनों सदनों में गतिरोध होने की स्थिति में अर्थात् जब कोई विधेयक एक सदन द्वारा पारित हो जाए और दूसरा सदन छः महीने तक उस पर कोई कार्यवाही न करें, तो राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाता है, जिस में विधेयक पर विचार किया जाता है। संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोक सभा का अध्यक्ष करता है। इस बैठक में जो फैसला साधारण बहुमत से होता है, यह दोनों सदनों का फैसला होता है। 26 मार्च, 2002 को राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने संसद का संयुक्त अधिवेशन बुलाया, क्योंकि 18 मार्च, 2002 को लोक सभा द्वारा पारित किए गए आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002 को 21 मार्च, 2002 को राज्य सभा ने अस्वीकार कर दिया था। संसद के संयुक्त अधिवेशन में विधेयक के समर्थन में 425 और विरोध में 296 मत पड़े। इस संयुक्त अधिवेशन में लोक सभा की इच्छानुसार फैसला हुआ।

2. कार्यपालिका पर नियन्त्रण (Control over Executive)-राज्य सभा की कार्यपालिका पर नियन्त्रण-सम्बन्धी शक्तियां बहुत सीमित हैं। राज्य सभा के सदस्य मंत्रिमंडल में से लिए जा सकते हैं। राज्य सभा के सदस्यों को मंत्रियों से प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार है। इन प्रश्नों द्वारा वे प्रशासन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। राज्य सभा के सदस्य बजट पर विचार अभिव्यक्त करके तथा 'काम रोको प्रस्ताव' व 'ध्यानाकर्षण प्रस्ताव' पेश करके सरकार की कड़ी आलोचना कर सकते हैं तथा सरकार पर प्रभाव डाल सकते हैं; किन्तु राज्य सभा सरकार के विरुद्ध '**अविश्वास प्रस्ताव**' पारित करके इसको अपदस्थ नहीं कर सकती है।

3. न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)-राज्य सभा को कुछ न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं-

(i) वह लोक सभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति के खिलाफ **महाभियोग प्रस्ताव पारित** कर सकती है और उसे अपदस्थ कर सकती है।

(ii) उसको उप-राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग लगाने का अधिकार है।

(iii) वह लोक सभा के साथ मिलकर सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाए जाने का प्रस्ताव पारित कर सकती है।

(iv) वह लोक सभा के साथ मिलकर उच्च अधिकारियों, जैसे-मुख्य चुनाव आयुक्त, महा न्यायवादी, नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक आदि के खिलाफ दोषारोपण का प्रस्ताव पारित करके, उन्हें अपदस्थ कर सकती है।

(v) राज्य सभा अपने विशेषाधिकारों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को दण्ड दे सकती है।

4. वित्तीय शक्तियां (Financial Powers)- वित्तीय क्षेत्र में राज्य सभा की शक्तियां बहुत ही सीमित हैं। कोई भी धन विधेयक राज्य सभा में पेश नहीं किया जा सकता है। राज्य सभा किसी भी धन विधेयक को अपने पास अधिक-से-अधिक 14 दिन तक रख सकती है। इस अवधि के पश्चात् लोक सभा द्वारा पारित विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है।

5. चुनाव सम्बन्धी शक्तियाँ (Electoral Powers)- राज्य सभा को लोक सभा के सामन कई प्रकार की चुनावी शक्तियाँ प्राप्त हैं, जैसे-

(i) राज्य सभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं।
(ii) राज्य सभा के सभी सदस्य उप-राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं।
(iii) राज्य सभा अपने उप-सभापति का निर्वाचन करती है।

6. संशोधन-सम्बन्धी शक्तियां (Amendment Powers)- राज्य सभा को, लोक सभा के समान संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान की गई है। इस विषय में उसको लोक सभा के बराबर शक्तियाँ प्राप्त हैं, क्योंकि संविधान संशोधन विधयेक के विषय में राज्य सभा व लोक सभा के मध्य गतिरोध उत्पन्न होने पर संविधान दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन बुलाने की व्यवस्था नहीं की गई है। अन्य शब्दों में, यदि लोक सभा द्वारा पारित किसी संविधान संशोधन विधेयक को राज्य सभा अस्वीकार कर देती है, तो वह रद्द हो जाता है।

7. विशिष्ट शक्तियां (Special Powers) - उपर्युक्त शक्तियों के अतिरिक्त संविधान द्वारा राज्य सभा को कुछ विशेष शक्तियाँ दी गई हैं, जैसे-

(i) राज्य सभा राज्य सूची में दिए गए किसी विषय को 'राष्ट्रीय महत्त्व' का घोषित कर के उस पर अस्थायी रूप से कानून बनाने की शक्ति संसद को दे सकती है। ऐसा करने के लिए उसे उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पारित करना होता है।

(ii) राज्य सभा नई अखिल भारतीय सेवा(All India Service), जो संघ एवं राज्यों की सांझी सेवा होती है, की स्थापना कर सकती है। इस तरह की सेवा की स्थापना के लिए इसे उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पारित करना होता है। वर्तमान में IAS, IPS, IFoS (Indian Forest Service) ये तीनों अखिल भारतीय सेवाएं हैं।

8. अन्य शक्तियाँ (Other Powers) - उपर्युक्त शक्तियों के अलावा भी राज्य सभा को कुछ शक्तियाँ प्राप्त हैं, जैसे-

(i) राज्य सभा लोक सभा के साथ मिलकर सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के अधिकार क्षेत्रों में परिवर्तन कर सकती है।
(ii) राज्य सभा संविधान के अनुच्छेद तीन के अन्तर्गत लोक सभा के साथ मिलकर राज्यों का पुनर्गठन, राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन तथा राज्यों का नामकरण कर सकती है।
(iii) राज्य सभा अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों एवं समझौतों के क्रियान्वयन हेतु लोक सभा के साथ मिलकर समुचित कानून का निर्माण कर सकती है।
(iv) राज्य सभा लोक सभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेश को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती है।
(v) राज्य सभा लोक सभा के साथ मिलकर नागरिकता सम्बन्धी नियमों का निर्धारण, सांसदों को प्राप्त होने वाले वेतन, भत्तों व अन्य सुविधाओं का निर्धारण, राज्य विधान परिषद् की स्थापना अथवा समाप्ति इत्यादि कार्य भी करती है।

निष्कर्ष (Conclusion) - उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि राज्य सभा को अनेक शक्तियाँ प्राप्त हैं, किन्तु तब भी इसे लोक सभा के बराबर शक्तियाँ प्राप्त नहीं है। इस आधार पर इसे द्वितीय, सदन ही नहीं, बल्कि द्वितीयक सदन भी कहा जाता है।

लोकसभा (House of the people)

लोकसभा जनता का सदन कहलाता है। लोकसभा भारतीय संसद का निम्न , किंतु शक्तिशाली सदन है , क्योंकि यह देश की जनता का प्रतिनिधित्व करता है। सरकार का बनना लोकसभा में उसके बहुमत पर निर्भर करता है।

रचना — प्रारंभ में लोकसभा की सदस्य संख्या 500 थी, लेकिन वर्तमान में इसकी अधिकतम संख्या 550 है, अनुच्छेद 81 एक के अनुसार इन 550 सदस्यों में अधिक से अधिक 530 सदस्य राज्यों से और भी सदस्य केंद्र शासित प्रदेशों से चुने जा सकते हैं। दिसंबर 2019 से पहले राष्ट्रपति दो एंग्लो इंडियन लोगों को लोकसभा में मनोनीत कर सकता था, किंतु 2019 से यह व्यवस्था खत्म कर दी गई है। वर्तमान में लोकसभा के 543 सदस्यों का चुनाव किया जाता है।

प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र (Territorial Constituencies) - लोक सभा का चुनाव प्रत्यक्ष तरीके से होता है। इसके लिए चुनाव सम्पन्न कराने के लिए सम्पूर्ण देश को उचित तरीके से निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है। संविधान का अनुच्छेद 81 (2) विभिन्न राज्यों के मध्य और एक ही राज्य में विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों के मध्य समरूप (Uniform) प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करता है। इसके लिए-

1. प्रत्येक राज्य को लोक सभा की सीटों का आवंटन इस प्रकार से किया जाता है कि सीटों (स्थानों) की संख्या और उस राज्य की जनसंख्या के मध्य अनुपात सभी राज्यों के लिए यथासम्भव बराबर रहे।

2. प्रत्येक राज्य को निर्वाचन क्षेत्रों में इस प्रकार से विभाजित किया जाता है कि समस्त राज्य में प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र की जनसंख्या और उसको आवंटित सीटों की संख्या के मध्य अनुपात यथासम्भव बराबर रहे।

सीटों के आबंटन का आधार (Basis of Allocation of Seats) - पहले भारतीय संघ के राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों की जनसंख्या के आधार पर लोक सभा की सीटों का आबंटन किया जाता था। सीटों की संख्या निर्धारित करते समय पिछली जनगणना के आंकड़े प्रयोग में लाए जाते थे। लेकिन 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा यह व्यवस्था कर दी गयी कि 2001 की जनगणना तक राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों को लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं की सीटें आवंटित करने हेतु 1971 की जनगणना के आंकड़े प्रयोग में लाए जाएंगे और 2026 तक लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं की सीटों की संख्या में वृद्धि नहीं की जाएगी। आगे चलकर 84वें संशोधन अधिनियम (2001) द्वारा यह व्यवस्था कर दी गयी कि लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं की सीटों की संख्या में परिवर्तन किए बिना 1991 की जनगणना के आधार पर निर्वाचन क्षेत्र का पुनर्गठन किया जाएगा, लेकिन 87वें संशोधन अधिनियम (2003) द्वारा 1991 की जनगणना के स्थान पर 2001 की जनगणना को निर्वाचन क्षेत्रों के पुनर्गठन का आधार बना दिया गया। स्पष्ट है कि 84वें एवं 87वें संशोधनों के बावजूद भी 2026 तक लोक सभा की सीटों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

सदस्यों का चुनाव (Election of the Members) - सविधान के अनुच्छेद 83 के अनुसार लोक सभा के सभी सदस्य सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। पहले मताधिकार की आयु 21 वर्ष थी, किन्तु 61वें संशोधन अधिनियम (1989) द्वारा 21 वर्ष की आयु को घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया। लोक सभा के सभी निर्वाचन क्षेत्र एकल-सदस्य रखे गए हैं अर्थात् लोक सभा के लिए प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक सदस्य का चुनाव किया जाता है। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए इनकी जनसंख्या के अनुपात में लोक सभा में कुछ सीटें आरक्षित की गयी हैं लेकिन अल्पसंख्यकों के लिए सीटों के आरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं की गयी है। 104वें संशोधन अधिनियम (2019) द्वारा अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण 2030 तक बढ़ा दिया गया है। वर्तमान में लोक सभा में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए क्रमशः 84 एवं 47 सीटें आरक्षित हैं।

योग्यताएँ (Qualifications)- लोक सभा का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ निर्धारित की गयी हैं-

1. वह भारत का नागरिक हो।

2. वह 25 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।

3. वह पागल, दिवालिया या अपराधी न हो।

4. वह भारत सरकार, या राज्य सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर आसीन न हो।

5. वह संसद द्वारा निर्मित किसी कानून के तहत अयोग्य न ठहराया गया हो।

6. 31 जुलाई, 1996 को निर्मित कानून के अनुसार लोक सभा का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार का नाम दस व्यक्तियों द्वारा प्रस्तावित किया जाना चाहिए।

कार्यकाल (Term of Office)- लोक सभा का चुनाव पांच वर्ष के लिए किया जाता है अर्थात लोक सभा का कार्यकाल पाँच वर्ष है। 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा लोक सभा का कार्यकाल पाँच वर्ष से बढ़ाकर छः वर्ष कर दिया गया था, लेकिन 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा इसे पुनः पाँच वर्ष कर दिया गया। राष्ट्रपति द्वारा पांच वर्ष पूर्ण होने से पूर्व भी लोक सभा को भंग किया जा सकता है, लेकिन वह मंत्रि-परिषद के परामर्श से ही ऐसा कर सकता है; अपनी इच्छा से नहीं। उदाहरण के लिए राष्ट्रपति ने 13 मार्च, 1991 को चन्द्रशेखर सरकार की सिफारिश पर नौवीं लोक सभा भंग कर दी थी। इसी

पीठासीन अधिकारी (Presiding Officers) - आम चुनावों के पश्चात् अपने प्रथम अधिवेशन में लोक सभा अपने एक सदस्य को अध्यक्ष (Speaker) और एक को उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) चुनती है। 18वीं लोक सभा ने अपने प्रथम अधिवेशन में भारतीय जनता पार्टी के सांसद ओम बिरला को सर्वसम्मति से अपना अध्यक्ष चुना, लेकिन दलगत राजनीति के कारण उपाध्यक्ष का चुनाव नहीं हो पाया। लोक सभा अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष को लेकर पिछले काफी समय से यह परम्परा चली आ रही है कि लोक सभा अध्यक्ष सत्तारूढ़ दल अथवा गठबंधन का ही होता है, किन्तु उपाध्यक्ष के पद पर विपक्षी दल के किसी सदस्य को चुन लिया जाता है। किंतु यह आवश्यक नहीं है कि इस परंपरा का हमेशा पालन किया जाए।

विरोधी दल के नेता को मान्यता (Recognition to the Leader of Opposition)— संसदीय लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए 1977 में जनता पार्टी सरकार ने लोक सभा में विरोधी दल के नेता को कानूनी मान्यता प्रदान की थी। विरोधी दल के मान्यता प्राप्त नेता का दर्जा केबिनेट मंत्री के दर्ज के बराबर होता है। इस नाते उसे केबिनेट मंत्री के बराबर वेतन, निःशुल्क आवास एवं अन्य सुविधाएं मिलती हैं। 18वीं लोक सभा के लिए कांग्रेस के सांसद राहुल गाँधी का विपक्ष के मान्यता प्राप्त नेता के रूप में चयन किया गया। जिस विपक्षी पार्टी को लोकसभा की सदस्य संख्या की 10 % सीटें प्राप्त होती हैं, उसी पार्टी के लोकसभा नेता को विरोधी दल के नेता की मान्यता दी जाती है। इसी कारण 17वीं लोक सभा में कांग्रेस के सांसद अधीर रंजन चौधरी भी विपक्ष के नेता तो थे, किन्तु मान्यता प्राप्त नेता नहीं।

लोक सभा की शक्तियाँ तथा कार्य (Powers and Functions of Lok Sabha)-

लोक सभा की शक्तियों तथा कार्यों का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है-

1. वैधानिक शक्तियाँ (Legislative Powers) - लोक सभा का प्रमुख कार्य जनता की इच्छाओं के अनुरूप कानून का निर्माण करना है। संविधान में कानून-निर्माण के सम्बन्ध में संसद के दोनों सदनों को समान अधिकार प्रदान किया गया है। किसी गैर-वित्तीय विधेयक का लोक सभा व राज्य सभा द्वारा अलग-अलग पारित होना जरूरी है। लेकिन किसी विधेयक को लेकर दोनों सदनों के मध्य गतिरोध उत्पन्न होने की स्थिति में लोक सभा राज्य सभा की अपेक्षा श्रेष्ठतर है। इसका कारण यह है कि मतभेद को दूर करने के लिए संसद के जिस संयुक्त अधिवेशन को बुलाया जाता है, उसकी अध्यक्षता लोक सभा का अध्यक्ष करता है। साथ ही विधेयक पर हुए मतदान में अधिक सदस्य संख्या के कारण लोक सभा के पक्ष में फैसला होता है।

2. कार्यपालिका पर नियन्त्रण (Control over Executive) - संविधान के अनुच्छेद 75 के अनुसार कार्यपालिका (मन्त्रि-परिषद्) प्रत्येक कार्य एवं नीति के लिए संसद के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है, किन्तु व्यावहारिक रूप से वह लोक सभा के प्रति ही उत्तरदायी होती है। यदि लोक सभा मन्त्रि-परिषद् के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव' पारित कर दे, तो मन्त्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना पड़ता है। लोक सभा के सदस्य प्रश्न पूछकर, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, काम रोको प्रस्ताव, निन्दा प्रस्ताव पारित

करके भी कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखते हैं।

3. न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers)-लोक सभा को कुछ न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं, जिनका प्रयोग वह राज्य सभा के साथ मिलकर कर सकती है-

(i) लोक सभा राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग पारित करने में भाग लेती है।

(ii) यदि कोई सदस्य, व्यक्ति अथवा संस्था लोक सभा के विशेषाधिकारों का उल्लंघन करता है, तो लोक सभा उसको दंड दे सकती है।

(iii) लोक सभा राज्य सभा के साथ मिलकर सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को अपदस्थ करने के लिए महाभियोग प्रस्ताव पारित कर सकती है।

(iv) उप-राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग लगाने का अधिकार राज्य सभा को है, किन्तु उसमें फैसला देने का अधिकार लोक सभा को है।

(v) लोक सभा राज्य सभा के साथ मिलकर मुख्य चुनाव आयुक्त(CEC), महान्यायवादी (AG) तथा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक(CAG) के खिलाफ दोषारोपण के प्रस्ताव पारित कर सकती है। ऐसा प्रस्ताव पारित होने पर राष्ट्रपति सम्बन्धित अधिकारी को हटा सकता है।

4. वित्तीय शक्तियां (Financial Powers)-लोक सभा को व्यापक वित्तीय शक्तियाँ प्राप्त हैं। धन विधेयक केवल लोक सभा में ही प्रस्तुत किए जाते हैं तथा कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, इसका निर्णय लोक सभा अध्यक्ष ही करता है। लोक सभा द्वारा पारित किए गए धन विधेयक का राज्य सभा द्वारा 14 दिनों के भीतर अनुमोदन करना आवश्यक है। यदि राज्य सभा 14 दिन के अन्दर धन विधेयक पारित नहीं करती है, तो वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है। राज्य सभा को धन विधेयक में संशोधन करने का अधिकार है, किन्तु उसे स्वीकार करना या न करना लोक सभा की इच्छा पर निर्भर करता है। यहीं नहीं, संसद द्वारा पारित धन विधेयक को राष्ट्रपति भी अस्वीकार नहीं कर सकता है। इस प्रकार वित्तीय क्षेत्र में लोक सभा को व्यापक शक्तियों प्राप्त हैं।

5. संवैधानिक शक्तियाँ (Constitutional Powers)- संविधान में लोक सभा एवं राज्य सभा मिलकर संशोधन कर सकती हैं। इस विषय में दोनों सदनों की शक्तियाँ एक समान हैं। संशोधन-सम्बन्धी प्रस्ताव संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। लेकिन वह प्रस्ताव एक सदन द्वारा पारित होने के बाद दूसरे सदन द्वारा भी पारित होना चाहिए। यदि कभी संशोधन प्रस्ताव (विधेयक) पर संसद के दोनों सदनों में मतभेद हो जाए, तो ऐसी स्थिति में संयुक्त अधिवेशन बुलाए जाने का संविधान में कोई प्रावधान नहीं है। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में वह प्रस्ताव रद्द हो जाएगा।

6. चुनाव-सम्बन्धी कार्य (Electoral Powers)-लोक सभा अपने अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का चुनाव करती है। लोक सभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं। लोक सभा के सभी सदस्य उप-राष्ट्रपति के चुनाव में भी भाग लेते हैं।

7. विचारशील शक्तियां (Deliberative Powers)- लोक सभा सम्पूर्ण देश का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसलिए सम्पूर्ण देश की समस्याओं पर इस सदन में व्यापक रूप से विचार-विमर्श किया जाता है। लोक सभा में विभिन्न आयोगों की रिपोर्टों पर भी गंभीरता से विचार किया जाता है और यदि इसे इनमें कहीं कोई कमी नज़र आती है, तो इसमें उसकी भरपूर आलोचना भी की जाती है, जिससे कि उस कमजोरी को दूर किया जा सके।

स्थिति (Position)-लोक सभा की व्यापक शक्तियों को देखते हुए इसकी स्थिति काफी महत्वपूर्ण है। लोक सभा को प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में (वैधानिक, वित्तीय व कार्यकारी) वास्तविक एवं महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं। लोक सभा राज्य सभा से शक्तिशाली एवं प्रभावशाली है। इसलिए यह कहा गया है कि जब हम संसद की बात करते हैं, तो तब व्यावहारिक रूप से संसद से हमारा अभिप्राय लोक सभा से ही होता है।

संसद सदस्यों के वेतन एवं भत्ते (Salary and Allowances of Members of Parliament)- संसद के दोनों सदनों के सदस्यों को समान वेतन, भत्ते, एवं अन्य सुविधाएं मिलती हैं और ये संसद द्वारा तय किए जाते हैं। संसद सदस वेतन, भत्ता एवं पेंशन (संशोधन) अधिनियम, 2010 के अनुसार वर्तमान में संसद के सदस्यों को ₹50,000 मासिक वेतन ₹ 45,000 मासिक निर्वाचन क्षेत्र भता एवं ₹ 24,500 मासिक कार्यालय भत्ता मिलता है। अधिवेशन के दौरान इन्हें ₹2000 प्रति दिन की दर से दैनिक भत्ता भी मिलता है। इसके अलावा सदस्यों को निशुल्क आवास सहित अन्य सुविधाएं एवं भत्ते भी दिए जाते हैं

संसद सदस्यों के विशेषाधिकार (Privileges of the Members of the Parliament)- संसद सदस्य अपने कर्तव्यों का ठीक से निर्वहन कर सके, इसके लिए संविधान द्वारा इन्हें (व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से) निम्नलिखित विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं-

1. संसद या इसकी किसी समिति में कही गयी किसी बात के लिए संसद सदस्यों पर किसी न्यायालय में कोई मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता है।

2. संसद का अधिवेशन आरम्भ होने से 40 दिन पूर्व और अधिवेशन समाप्त होने के 40 दिन बाद तक संसद सदस्यों को दीवानी मामलों में गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। फौजदारी मामलों में इन्हें गिरफ्तार तो किया जा सकत है, लेकिन गिरफ्तारी की सूचना लोक सभा अध्यक्ष को तुरन्त देनी आवश्यक है।

3. ब्रिटिश परम्परा के अनुसार संसद के अधिवेशन के दौरान, सदन की अनुमति के बिना, किसी सदस्य को राय देने के लिए नहीं बुलाया जा सकता है।

4. सामूहिक रूप से भी संसद को कुछ विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं; जैसे-

(i) लोक सभा अध्यक्ष या राज्य सभा का सभापति कभी भी किसी बाहरी व्यक्ति को सदन से बाहर करा सकता है।

(ii) प्रत्येक सदन को अपनी कार्यवाही नियन्त्रित एवं संचालित करने का अधिकार है। वह न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना, अपनी चार दीवारी के अंदर कोई भी निर्णय ले सकता है।

(iii) प्रत्येक सदन अपनी मान हानि या अपने विशेषाधिकारों के उल्लंघन करने वाले व्यक्ति या संस्था को दण्डित कर सकता है। 1990 में भूतपूर्व सदस्य के. के. तिवारी को राज्य सभा ने लताड़ लगायी थी।

संसद के अधिवेशन (Sessions and Quoram of the Parliament) — राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर संसद के अधिवेशन बुलाए जाते हैं। संविधान के अनुच्छेद 85 (1) के अनुसार पिछले अधिवेशन की अन्तिम तिथि और आगामी अधिवेशन की पहली तिथि के मध्य छः माह से अधिक का अंतर नहीं होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि वर्ष में दो बार संसद का अधिवेशन अवश्य बुलाया जाना चाहिए, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति कभी भी संसद का विशेष अधिवेशन बुला सकता है।

गणपूर्ति — संसद के किसी भी सदन की कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए कुल सदस्य संख्या के 1/10 सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य है। इसका अभिप्रायः यह हुआ कि राज्य सभा की कार्यवाही तब ही प्रारम्भ की जा सकती है, जब कम-से-कम 25 सदस्य सदन में मौजूद हों। इसी प्रकार लोक सभा की कार्यवाही शुरू करने के लिए सदन में कम-से-कम 55 सदस्य उपस्थित होने चाहिए।

संसद की सीटों का खाली होना (Vacation of the Seats of the Parliament) संविधान के अनुच्छेद 101 के अनुसार निम्नलिखित स्थितियों में संसद के किसी भी सदन की सीट खाली हो जाती है-

1. यदि कोई व्यक्ति संसद के दोनों सदनों का सदस्य निर्वाचित हो जाता है, तो उसे एक सदन की सीट को छोड़ना होता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति संसद एवं किसी राज्य विधानमंडल का सदस्य चुन लिया जाता है, तो उसे राज्य विधानमंडल की

सदस्यता से त्याग-पत्र दे देना चाहिए अन्यथा संसद में उसकी सीट खाली हो जाती है।

2. यदि अनुच्छेद 102 के तहत संसद किसी सदस्य को किसी आधार (जैसे-मानसिक रूप से अस्वस्थ) पर अयोग्य घोषित कर देती है।

3. यदि कोई सदस्य संबंधित पीठासीन अधिकारी (लोक सभा अध्यक्ष या राज्य सभा के सभापति) को अपना इस्तीफा दे देता है।

4. यदि सदन की अनुमति के बिना कोई सदस्य 60 दिन से अधिक समय तक सदन की बैठकों में उपस्थित नहीं रहता है।

संसद की शक्तियाँ एवं कार्य

(Powers and Functions of the Parliament)

भारत में केन्द्रीय विधानपालिका 'संसद' के नाम से जानी जाती है। इसको संविधान द्वारा व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। हम संसद की शक्तियों एवं कार्यों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं-

1. वैधानिक शक्तियाँ (Legislative Powers) — संविधान के अनुच्छेद 245 द्वारा समस्त विषयों को तीन सूचियों (संघ सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची) में विभक्त किया गया है। संसद को संघ सूची में शामिल 97 विषयों पर कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गयी है। विशेष परिस्थितियों में यह राज्य सूची में दिए गए 66 विषयों पर भी कानून बना सकती है। समवर्ती सूची में शामिल 47 विषयों पर इसके द्वारा बने कानून को ही अधिमान (Preference) दिया जाता है। साधारण विधेयक (गैर-धन विधेयक) संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। आम तौर पर, कम महत्व के विधेयक पहले राज्य सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं। संसद के एक सदन द्वारा पारित किए जाने के पश्चात विधेयक दूसरे सदन में भेजा जाता है। जब उस विधेयक को दूसरा सदन पारित कर देता है, तो उसे स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाने के उपरांत वह विधेयक कानून का रूप धारण कर लेता है। अगर एक सदन द्वारा पारित विधेयक को दूसरा सदन अस्वीकार कर देता है अथवा वह छः महीने के अन्दर उस पर कोई कार्रवाई नहीं करता है, तो संविधान के अनुच्छेद 108 के अन्तर्गत इस गतिरोध को दूर करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलायी जाती है। संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोक सभा अध्यक्ष करता है। यदि इस बैठक में विधेयक उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले दोनों सदनों के सदस्यों के बहुमत से पारित हो जाता है, तो वह राष्ट्रपति को स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है।

2. कार्यपालिका पर नियंत्रण संबंधी शक्तियाँ (Powers related with Control over Executive)-

(i) वाद-विवाद (Debate)- संसद के अधिवेशन के दौरान संसद के दोनों सदनों में विभिन्न मुद्दों पर वाद-विवाद किया जाता है। प्रत्येक सदन में विपक्षी दल सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों की आलोचना करते हैं, तो सत्तारूढ़ दल सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों के पक्ष में दलीलें देते हैं। दोनों सदनों में होने वाल वाद-विवाद समाचार-पत्रों एवं दूरदर्शन द्वारा जनता तक पहुंचता है।

(ii) प्रश्न पूछकर (Questions)- संसद के अधिवेशन के दौरान प्रति दिन की कार्यवाही का प्रथम घण्टा 'प्रश्न काल' (Questions Hour) कहलाता है। प्रश्न काल के दौरान सदस्य नियमानुसार, मंत्रियों से उनके विभाग के सबंध में प्रश्न पूछते हैं। मंत्रियों को सदन में पूछे गए प्रश्नों का उचित उत्तर प्रश्नकर्ता को देना होता है।

(iii) स्थगन प्रस्ताव द्वारा (by Adjournment Motion)- स्थगन का अर्थ है - कार्यवाही रोकना । किसी भी सदन का कोई भी सदस्य सार्वजनिक महत्व के विषय पर बहस करने के लिए स्थगन प्रस्ताव ला सकता है। पीठासीन अधिकारी द्वारा प्रस्ताव की स्वीकृति मिलने पर सदन की कार्यवाही रोककर उस विषय पर चर्चा की जाती है। ज्यादातर विपक्ष के सदस्य स्थगन प्रस्ताव लाते हैं।

(iv) ध्यानाकर्षण प्रस्ताव (Call Attention Motion)- किसी महत्वपूर्ण विषय या घटना की ओर सरकार का ध्यान

दिलाने के लिए कोई भी सदस्य सदन में ध्यानाकर्षण प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है। प्रायः यह प्रस्ताव किसी घटना की ओर संबंधित मंत्री का ध्यान दिलाने के लिए लाया जाता है।

(v) निन्दा प्रस्ताव (Censure Motion)- मंत्रि-परिषद पर नियंत्रण रखने की दृष्टि से निन्दा प्रस्ताव एक प्रभावी साधन है, भले ही इसके पारित होने पर मन्त्रि-परिषद को त्याग-पत्र न देना पड़े। कभी भी कोई भी सदन मन्त्रि-परिषद के विरुद्ध निन्दा प्रस्ताव पारित कर सकता है।ज्यादातर विपक्ष के सदस्य स्थगन प्रस्ताव लाते हैं।

(vi) अविश्वास प्रस्ताव (No-confidence Motion)- संविधान के अनुच्छेद 75(3) के अनुसार "मंत्रि-परिषद सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होगी। इसलिए लोक सभा कभी भी मंत्रि-परिषद (सरकार) के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव पारित करके इसको अपदस्थ कर सकती है। अविश्वास प्रस्ताव के पास होने पर सरकार को अपना इस्तीफा देना पड़ता है। अप्रैल 1999 में वाजपेयी सरकार का इसलिए पतन हो गया था, क्योंकि वह लोक सभा से अपने पक्ष में 'विश्वास प्रस्ताव पारित कराने में सफल नहीं रही थी।

3. वित्तीय शक्तियां — अन्य देशों की तरह, भारत में भी संसद बजट पारित करती है। संसद द्वारा बजट पारित किए बिना सरकार न तो एक भी पैसा खर्च कर सकती है और न ही जनता पर कोई कर लगा सकती है या कर-संग्रह कर सकती है। उल्लेखनीय है कि संविधान द्वारा राज्य सभा की तुलना में लोक सभा को बहुत अधिक वित्तीय शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। संविधान के **अनुच्छेद 109** के अनुसार **"कोई भी धन विधेयक राज्य प्रभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।"** स्पष्ट है कि लोक सभा द्वारा पारित हो जाने के बाद ही धन विधेयक राज्यसभा के पास भेजा जाता है। यदि राज्य सभा लोक सभा द्वारा पारित किसी धन विधेयक को पारित कर देती है तो उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है, किन्तु यदि राज्य सभा लोक सभा द्वारा पारित किसी धन विधेयक को नामंजूर कर देती है या फिर 14 दिन के अन्दर इस पर कोई निर्णय नहीं लेती है, तो भी यह राज्य सभा द्वारा पारित हुआ मान लिया जाता है और इसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाने के बाद विधेयक कानून का रूप धारण कर लेता है। अतः देश के वित्त पर संसद का पूरा नियंत्रण होता है।

4. न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)- संविधान द्वारा संसद को न्यायिक शक्तियों भी दी गयी हैं। अनुच्छेद 61 के तहत संसद राष्ट्रपति के विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताय' (Impeachment Resolution) पारित करके उसे कभी भी अपदस्थ कर सकती है। 'उप-राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने का अधिकार राज्य सभा के पास, और इसकी जांच करने का अधिकार लोक सभा के पास है। लोक सभा एवं राज्य सभा मिलकर महाभियोग प्रस्ताव द्वारा सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को पद से हटा सकती हैं। इसी प्रकार संसद के ये दोनों सदन मिलकर महा न्यायवादी, मुख्य चुनाव आयुक्त एवं नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के विरुद्ध कभी भी महाभियोग प्रस्ताव पारित करके इन्हें अपदस्थ कर सकते हैं। महाभियोग प्रस्ताव पास होने के लिए सदन का दो-तिहाई बहुमत आवश्यक है। लोक सभा एवं राज्य सभा किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा अपनी अवमानना करने या विशेषाधिकारों का उल्लंघन करने पर उसे दण्डित कर सकती हैं।

5. संशोधन की शक्तियाँ (Powers of Amendment)- अनुच्छेद 368 के द्वारा संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति सौंपी गयी है। लेकिन केशवानन्द भारती मुकदमे (1973) में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार संसद 'संविधान के मूलभूत ढांचे' में संशोधन नहीं कर सकती है। संविधान के कुछ अनुच्छेदों में संशोधन के लिए संशोधन विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग साधारण बहुमत से और कुछ अन्य अनुच्छेदों में संशोधन के लिए संशोधन विधेयक दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग विशेष बहुमत से पारित होना चाहिए। संविधान लागू होने के बाद से अब तक, संसद सविधान में 2023 तक 106 संशोधन कर चुकी है।

6. निर्वाचन संबंधी शक्तियां (Electoral Powers)- संविधान द्वारा संसद को कुछ निर्वाचन संबंधी शक्तियाँ भी प्रदान की गयी हैं। संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, राज्य विधान सभाओं के सदस्यों के साथ मिलकर राष्ट्रपति को चुनते हैं. तो राज्य सभा एवं लोक सभा के सभी सदस्य उप-राष्ट्रपति को चुनते हैं। इसके अलावा, लोक सभा अपने अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चुनाव करती है, तो राज्य सभा अपने उप-सभापति को चुनती है।

7. विविध शक्तियाँ (Miscellaneous Powers) — उपर्युक्त शक्तियों के अलावा, संसद को कुछ अन्य शक्तियाँ भी प्राप्त हैं; जैसे-

1. राष्ट्रपति द्वारा घोषित तीनों प्रकार के आपातकालों की पुष्टि संसद द्वारा की जाती है। स्पष्ट है कि यदि संसद इनकी पुष्टि नहीं करेगी, तो ये प्रभावी ही नहीं होंगे। अगर आपातकालीन अवधि बढ़ाने की जरूरत होती है, तब भी इसकी पुष्टि संसद द्वारा की जाती है।

2. संसद राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेशों (Ordinances) की भी पुष्टि करती है। संसद द्वारा पुष्टि न होने पर अध्यादेश छः माह के बाद समाप्त हो जाता है।

3. संसद सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में परिवर्तन कर सकती है।

4. संविधान के अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत संसद राज्यों का पुनर्गठन, राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन और राज्यों के नाम बदल सकती है।

5. संसद अन्तर्राष्ट्रीय संधियों एवं समझौतों के क्रियान्वयन के लिए कानून बना सकती है।

6. संसद राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, राज्यपालों, संघ लोक सेवा आयोग चुनाव आयोग आदि के अध्यक्षों एवं सदस्यों के वेतन एवं भत्तों का निर्धारण करती है।

7. संसद किसी नई विधान परिषद की स्थापना या किसी मौजूदा विधान परिषद की समाप्ति कर सकती है।

8. संसद नागरिकता संबंधी नियमों का निर्धारण करती है।

क्या भारतीय संसद एक सम्प्रभु संस्था है? (Is Indian Parliament a Sovereign Body?)

जब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि क्या भारतीय संसद एक संप्रभु संस्था है, तो हम पाते हैं कि संविधान द्वारा भारतीय संसद को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी है, किन्तु तब भी यह ब्रिटिश संसद की भांति सम्प्रभु संस्था नहीं है। भारतीय संसद सम्प्रभु नहीं है, क्योंकि इसको शक्तियों पर अनेक प्रतिबंध लगे हैं; जैसे-

1. संसद द्वारा निर्मित कानूनों का परीक्षण करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review) की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए यह जाँच करता है कि कोई कानून संविधान का उल्लंघन तो नहीं करता है। यदि सर्वोच्च न्यायालय की दृष्टि में यह कानून संविधान का उल्लंघन करता है, तो वह उसी सीमा तक उस कानून को असंवैधानिक घोषित कर देता है, जिस सीमा तक वह संविधान का उल्लंघन करता है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा असंवैधानिक घोषित किए जाने के बाद कानून निरस्त हो जाता है।

2. सामान्य परिस्थितियों में संसद को 'संघ सूची' में शामिल 97 विषयों पर ही कानून बनाती हैं।

3. भारत में संसद नहीं, बल्कि संविधान सर्वोच्च है और संसद भी इसके तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करती है।

4. भारतीय संसद को संविधान में संशोधन करने की निरपेक्ष शक्ति प्राप्त नहीं है, क्योंकि, प्रथम, तो संविधान के कुछ अनुच्छेदों में संशोधन के लिए आधे से अधिक राज्य विधानमंडलों के अनुमोदन की आवश्यकता होती है और द्वितीय, केशवानन्द भारती मुकदमे (1973) में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार संसद 'संविधान के मूलभूत ढांचे' में संशोधन नहीं कर सकती है।

राज्य सभा एवं लोक सभा के मध्य संबंध (Relationship between Rajya Sabha and Lok Sabha)

अधिकतर कार्य लोकसभा और राज्यसभा मिलकर करते हैं। उनके बीच के संबंधों को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता हैं —

1. कानून-निर्माण (Law-Making)- सैद्धान्तिक रूप से कानून निर्माण के क्षेत्र में राज्य सभा एवं लोक सभा की शक्तियाँ समान हैं, क्योंकि साधारण विधेयक (गैर-धन विधेयक) दोनों में से किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है और यह तब ही संसद द्वारा पारित माना जाता है, जब ये दोनों सदन इसे अलग-अलग पारित कर देते हैं। किन्तु व्यवहार में दोनों सदनों की शक्तियाँ बराबर नहीं हैं। संविधान के अनुच्छेद 108 के अनुसार जब एक सदन द्वारा पारित किसी साधारण विधेयक को दूसरे सदन द्वारा रद्द कर दिया जाए या दोनों सदन विधेयक में संशोधन करने के प्रश्न पर एक दूसरे से असहमत हो जाएं या फिर दूसरा सदन छः महीने के अंदर इस पर कोई निर्णय न ले पाए तो राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक (Joint Siting) बुलाता है। इस संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोक सभा अध्यक्ष करता है। लोक सभा की सदस्य-संख्या राज्य सभा की सदस्य संख्या से दो गुने से भी अधिक होने के कारण से संयुक्त बैठक में निर्णय प्रायः लोक सभा के पक्ष में ही होता है।

2. कार्यपालिका पर नियंत्रण (Control over Executive)— व्यवहार में कार्यपालिका लोक सभा के प्रति ही उत्तरदायी होती है, क्योंकि लोक सभा कभी भी सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव पारित करके इसको अपदस्थ कर सकती है। 1990 में वी.पी. सिंह सरकार और 1999 में वाजपेयी सरकार लोक सभा में विश्वास मत पारित न होने के कारण ही गिरी थीं। राज्य सभा प्रश्न-काल, वाद-विवाद, 'काम रोको प्रस्ताव', 'ध्यानाकर्षण प्रस्ताव' एवं 'निंदा प्रस्ताव' के माध्यम से कार्यपालिका अर्थात सरकार को नियंत्रित अवश्य ही करती है, किन्तु वह सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके इसे पद से नहीं हटा सकती है। स्पष्ट है कि कार्यपालिका पर नियन्त्रण की दृष्टि से राज्य सभा की तुलना में लोक सभा की स्थिति बहुत सुदृढ़ है।

3. धन विधेयकों को पारित करना (Passing of Money Bills) - धन विधेयकों के पारित करने के विषय में लोक सभा की तुलना में राज्य सभा के पास बहुत कम शक्तियां हैं। इस कारण इस मामले में लोक सभा को सर्वोच्चता स्थापित हो गयी है। संविधान के अनुच्छेद 109 के अनुसार धन विधेयक पहले लोक सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं। जब लोक सभा कोई धन विधेयक पारित कर देती है, तो इसे राज्य सभा के पास भेज दिया जाता है। धन विधेयक पारित करने के विषय में राज्य सभा को केवल इतनी ही शक्ति प्राप्त है कि यह इसे अधिक-से-अधिक 14 दिन तक रोके रख सकती है। राज्यसभा इसे पारित करें या न करें धन विधेयक अपने आप ही पारित माना जाता हैं।

4. न्यायिक क्षेत्र में संबंध (Judicial Sphere)- न्यायिक क्षेत्र में लोक सभा एवं राज्य सभा को बराबर शक्तियाँ प्राप्त है क्योंकि दोनों सदन मिलकर राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताव' पारित करती हैं। इस विषय में केवल इतना ही अंतर है कि जहां राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताव' इन दोनों में से किसी भी सदन में लाया जा सकता है और दोनों में से कोई भी सदन आरोपों की जांच कर सकता है, वहां उप-राष्ट्रपति के विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताव' केवल राज्य सभा में लाया जाता है और जांच का कार्य लोक सभा के लिए छोड़ दिया जाता है।

5. संविधान में संशोधन (Amendment in the Constitution)- संविधान के अनुच्छेद 368 के द्वारा संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान की गयी है और केशवानन्द भारती मुकदमे (1973) में सर्वोच्च न्यायलाय द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है कि संसद मूलभूत ढांचे को छोड़कर, संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है। अनुच्छेद 368 में वर्णित संशोधन प्रक्रिया के अनुसार संविधान में संशोधन के लिए संशोधन विधेयक निर्धारित बहुमत द्वारा दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित किया जाना चाहिए। यदि कोई संशोधन विधेयक एक सदन द्वारा पारित और दूसरे सदन द्वारा रद्द कर दिया जाता है, तो वह विधेयक रद्द हो जाता है, क्योंकि ऐसी स्थिति में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाने की व्यवस्था संविधान द्वारा नहीं की गयी है। इसी कारण 1970 में राजाओं के प्रिवी पर्स समाप्त करने वाला संशोधन विधेयक राज्य सभा द्वारा अस्वीकार किए जाने के उपरांत रद्द हो गया था।

6. राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन (Elections of President and Vice-President)- राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन के विषय में राज्य सभा एवं लोक सभा को समान शक्तियाँ प्राप्त हैं, क्योंकि राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति को जिन निर्वाचकमंडलों द्वारा चुना जाता है, उनमें लोक सभा एवं राज्य सभा दोनों के सदस्य शामिल होते हैं। इसके अलावा, जिस

प्रकार लोक सभा अपने अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चुनाव करती है, उसी प्रकार राज्य सभा भी अपने उप-सभापति का चुनाव करती है।

7. राज्य सभा की विशेष शक्तियाँ (Special Powers of Rajya Sabha) —भले ही संविधान में राज्यसभा को काम शक्तियां प्राप्त हैं, लेकिन संविधान द्वारा राज्य सभा को कुछ ऐसी शक्तियाँ सौंपी गयी हैं, जो लोक सभा को प्राप्त नहीं हैं। अनुच्छेद 249 के तहत यदि राज्य सभा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पारित करके 'राज्य सूची' में शामिल किसी विषय को 'राष्ट्रीय महत्व' का घोषित कर देती है, तो एक वर्ष के लिए उस विषय पर कानून बनाने की शक्ति संसद को मिल जाती है। इसी प्रकार अनुच्छेद 312 के तहत राज्य सभा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से नई अखिल भारतीय सेवा स्थापित करने का अधिकार केन्द्र सरकार को दे सकती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राज्य सभा एवं लोक सभा की कानून निर्माण की शक्तियाँ, संविधान में संशोधन की शक्तियाँ, न्यायिक शक्तियाँ एवं निर्वाचन संबंधी शक्तियाँ बराबर हैं, किन्तु वित्तीय शक्तियाँ और कार्यपालिका पर नियंत्रण-संबंधी शक्तियों के विषय में राज्य सभा लोक सभा के मुकाबले कमजोर है। नि:सन्देह, राज्य सभा के पास कुछ विशेष शक्तियाँ हैं, तब भी उसकी तुलना में लोक सभा की स्थिति सुदृढ़ है।

राज्य सभा के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क (Arguments in favour of and against Rajya Sabha)

संविधान द्वारा लोक सभा की तुलना में राज्य सभा को बहुत कम शक्तियाँ दी गयी है। भारतीय संविधान द्वारा राज्य सभा को जो शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं, उनको देखकर स्पष्ट हो जाता है कि यह एक शक्तिहीन सदन है। ऐसे में कुछ विद्वान इसकी प्रासंगिकता पर अंगुली उठाते हैं और कुछ तो इसकी समाप्ति तक की बात करते हैं। राज्य सभा के पक्ष और विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं।

आम तौर पर, विद्वानों द्वारा **राज्य सभा के विरुद्ध (विपक्ष)** निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं-

1. संघवाद के सिद्धांत के विरुद्ध (Against Federalism)- कुछ विद्वानों का कहना है कि भारत में राज्य सभा संघवाद के सिद्धांत की अवहेलना करती है, क्योंकि संघीय व्यवस्था में केन्द्रीय विधानपालिका के ऊपरी सदन में सभी संघीय इकाइयों अथवा राज्यों को समान प्रतिनिधित्व दिया जाता है, लेकिन भारत में राज्य सभा में राज्यों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। राज्य सभा में आठ राज्यों और एक संघीय क्षेत्र को एक-एक सीट आबंटित की गयी है, जब कि इसमें अकेले उतर प्रदेश को 31 सीटें प्राप्त हैं।

2. अलोकतांत्रिक सदन (Un-democratic Chamber)- कुछ विद्वानों का कहना है कि राज्य सभा एक अलोकतांत्रिक सदन है, क्योंकि इसके सदस्यों का चुनाव देश की जनता के द्वारा नहीं, बल्कि राज्य विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। राज्य सभा का अप्रत्यक्ष चुनाव एवं मनोनयन के तत्व मिलकर इसे अलोकतान्त्रिक सदन बना देते हैं।

3. राजनीतिक शरण-स्थल (Place for Political Shelter) आलोचकों का यह भी कहना है कि सत्तारूढ़ दल राज्य सभा का राजनीतिक शरण-स्थल के रूप प्रयोग करता है, क्योंकि सत्तारूढ़ दल के जो सदस्य लोक सभा का चुनाव हार जाते हैं या हारने के डर से लोक सभा का चुनाव नहीं लड़ते हैं, उन्हें सत्तारूढ़ दल द्वारा राज्य सभा का सदस्य निर्वाचित करा दिया जाता है, ताकि ये उपेक्षित अनुभव न करें। राज्य सभा में इन सदस्यों का प्रवेश पिछले दरवाजे से इनको संसद में प्रवेश कराना और इनको राजनीति में जीवित रखना है।

4.राज्यों का प्रतिनिधित्व नहीं ,बल्कि दलगत प्रतिनिधित्व (Not representation of States, but Party Representation)-कुछ विद्वानों का कहना है कि राज्य सभा राज्यों का नहीं, बल्कि राजनीतिक दलों का प्रतिनिधित्व करती है। राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) के आधार पर किया

जाता है, जिसके कारण राज्य सभा के चुनावों में राजनीतिक दल विधान सभाओं में अपनी सीटों के अनुपात में अपने-अपने उम्मीदवार जिताने में सफल रहते हैं। इतना ही नहीं, राज्य सभा की सदस्यता ग्रहण करने के बाद भी ये लोग राज्य सभा में अपने-अपने राज्य के हित में नहीं, बल्कि अपने-अपने दल के हित में कार्य करते हैं। यही कारण है कि राज्य सभा में विपक्षी दलों के सदस्य हमेशा सरकार के निर्णयों की आलोचना करते हैं।

5. हमेशा विधेयकों की दोहराई नहीं (Not Always Revision of Bills)- ऐसा माना जाता है कि राज्य सभा विधेयकों को दोहराई करती है, जिसके कारण विधेयकों में रह गए दोष दूर हो जाते हैं, किन्तु हमेशा ऐसा नहीं होता है, क्योंकि जब लोक सभा एवं राज्य सभा में एक राजनीतिक दल या एक गठबंधन बहुमत में होता है, तब राज्य सभा गुण-दोषों पर विचार किए बिना, विधेयकों को पारित कर देती है।

6. शक्तिहीन सदन (Powerless Chamber) - भारत की राज्य सभा एक प्रकार से शक्तिहीन सदन ही है, क्योंकि कई मामलों में इसे बहुत कम शक्तियाँ प्राप्त हैं। इसके द्वारा धन विधेयकों को अस्वीकार करने या इनमें संशोधन करने या फिर निर्धारित अवधि में इनके विषय में कोई निर्णय न लेने से कोई फर्क नहीं पड़ता है, क्योंकि ऐसे में ये उसी रूप में इसके द्वारा पारित हुए मान लिए जाते हैं, जिस रूप में इन्हें लोक सभा ने पारित किया था। इसी प्रकार राज्य सभा का सरकार पर प्रभावी नियंत्रण नहीं होता है, क्योंकि यह सरकार को अपदस्थ नहीं कर सकती है।

निःसंदेह, संविधान द्वारा लोक सभा की तुलना में राज्य सभा को बहुत कम शक्तियाँ दी गयी हैं और इसकी रचना एवं कार्य प्रणाली में अनेक दोष हैं. फिर भी, हम यह नहीं कह सकते हैं कि यह एक निरर्थक एवं अनुपयोगी सदन है। कुछ बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य सभा एक उपयोगी सदन है। आमतौर पर विद्वानों द्वारा **राज्य सभा के पक्ष** में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं

1. स्थायी सदन (Permanent Chamber)- राज्य सभा एक स्थायी सदन है, एक स्थायी सदन के रूप में राज्य सभा शासन को स्थायित्व प्रदान करती है। वस्तुतः यह उस समय भी कार्यरत होती है, जब लोक सभा भंग होती है। उदाहरण के लिए जब लोक सभा भंग होती है, तो उस समय यही संकट काल की घोषणा की पुष्टि करती है। नव-गठित लोक सभा बाद में इसकी पुष्टि करती है।

2. संघीय व्यवस्था के लिए अनिवार्यता (A Necessity for Federal System) — संघीय व्यवस्था में द्वि-सदनीय विधानपालिका का होना जरूरी है, क्योंकि विधानपालिका के ऊपरी सदन में संघीय इकाइयों(राज्यों) को प्रतिनिधित्व मिल जाता है। इस वजह से भारत में राज्य सभा का होना जरूरी है।

3. लोक सभा के समय की बचत (Saving of Lok Sabha's Time)- राज्य सभा के कारण लोक सभा के समय एवं ऊर्जा की बचत होती है, क्योंकि प्रायः कम महत्व वाले विधेयक राज्य सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं। राज्य सभा इन विधेयकों पर अच्छी तरह विचार-विमर्श करने के उपरांत इन्हें पारित करके लोक सभा के पास भेज देती है। ऐसे में इन्हें पारित करने में लोक सभा अधिक समय नहीं लगाती है।

4. प्रतिभावान नागरिकों को प्रतिनिधित्व (Representation to Talents)—राष्ट्रपति राज्य सभा में ऐसे 12 सदस्यों को मनोनीत करता है, जो साहित्य, कला, विज्ञान एवं समाज-सेवा के क्षेत्रों से जुड़े होते हैं और जिनका इन क्षेत्रों में योगदान होता है। राज्य सभा के माध्यम से देश को ऐसे प्रतिभावान लोगों की सेवाएं प्राप्त हो जाती हैं, जो सक्रिय राजनीति से दूर रहना पसन्द करते हैं।

5. विधेयकों की दोहराई अथवा गहन जांच (Revision of Bills) - लोक सभा द्वारा पारित किए जाने के बाद जो विधेयक राज्य सभा के पास आते हैं, उनकी राज्य सभा द्वारा दोहराई हो जाती है। यदि लोक सभा द्वारा पारित विधेयक में कोई दोष रह जाता है, तो राज्य सभा उसे दूर कर देती है। राज्य सभा द्वारा पारित होने के बाद विधेयकों में दोष रहने की संभावनाएं कम हो जाती हैं।

6. उच्च-स्तरीय वाद-विवाद (High Level of Debates) - राज्यसभा में किसी भी विषय या विधेयक पर जो वाद-विवाद होता है, वह प्रायः उच्च स्तर वाला होता है, क्योंकि लोक सभा के सदस्यों की तुलना में राज्य सभा के सदस्य अधिक अनुभवी एवं प्रतिभावान होते हैं। प्रायः राज्य सभा के सदस्य सक्रिय राजनीति से दूर रहने वाले लोग होते हैं। अतः इनके द्वारा किसी विषय पर जो वाद-विवाद होता है, वह अपेक्षाकृत कम राजनीतिक रंग लिए होता है।

7. महाभियोग के अनुकूल (Compatible with Impeachment)- जिस महाभियोग प्रस्ताव के द्वारा राष्ट्रपति उप-राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों और संवैधानिक पदों पर कार्यरत् अन्य पदाधिकारिखें को गंभीर अपराधों के आरोप में उनके पद से हटाया जाता है. राज्य सभा का होना उसके अनुकूल है। प्राकृतिक न्याय वह मांग करता है कि किसी पर आरोप लगाने वाला व्यक्ति या संस्था उन आरोपों की जांच न करे। यदि कभी लोक सभा व्यक्तिगत कारणों से किसी पदाधिकारी पर महाभियोग लगाएगी, तो मामले की जांच राज्य सभा द्वारा हो जाएगी। यदि आरोप असत्य पाए जाते हैं, तो महाभियोग प्रस्ताव पास नहीं हो पाता है।

8. विशिष्ट कार्य (Special Functions)- संविधान द्वारा राज्य सभा को कुछ ऐसे कार्य सौंपे गए हैं, जो इसकी उपयोगिता सिद्ध करते हैं; जैसे-राज्य सभा अनुच्छेद 249 के अन्तर्गत 'राज्य सूची' में दिए गए किसी महत्व को 'राष्ट्रीय महत्व' का घोषित करके एक वर्ष के लिए इस पर कानून बनाने के लिए संसद को अधिकृत कर सकती है। इसी तरह राज्य सभा अनुच्छेद 312 के तहत नयी अखिल भारतीय सेवा (All India Service) स्थापित करने का अधिकार केन्द्र सरकार को दे सकती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राज्य सभा को एक अनुपयोगी सदन नहीं कहा जा सकता है। निःसंदेह, राज्य सभा को लोक सभा की तुलना में कम शक्तियाँ प्राप्त हैं, किन्तु तब भी यह अपना कार्य करती है। यदि इसके पास कम शक्तियाँ हैं, तो संविधान में संशोधन करके इसकी शक्तियों में वृद्धि की जा सकती है और इसके इस दोष को दूर किया जा सकता है। यदि राज्य सभा अनावश्यक रूप से लोक सभा से टकराती है या आंख मूंदकर लोक सभा के निर्णयों की पुष्टि करती है, तो यह दोष राज्य सभा का नहीं, बल्कि राज्य सभा में बैठे सांसदों का है।

भारतीय संसद के पतन के कारण (Causes for the Decline of Indian Parliament)

संविधान लागू होने के प्रारंभिक वर्षों में भारतीय संसद को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था, लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया, इसकी प्रतिष्ठा में कमी आती गयी। पिछले कुछ दशकों में अनेक ऐसी घटनाएँ , जिन्होंने इसकी मर्यादा को तार-तार कर दिया। भारतीय संसद की प्रतिष्ठा या गरिमा को धक्का पहुंचाने वाले मुख्य कारण निम्नलिखित हैं-

1. सदस्यों की अनुपस्थिति (Absense of the Members)- संसद के सदस्यों की अनुपस्थिति बहुत सीमा तक इसकी प्रतिष्ठा में गिरावट के लिए उत्तरदायी है। सदन की कार्यवाही चलाने के लिए सदस्यों की एक निश्चित संख्या (कोरम) की आवश्यकता होती है। जब तक यह फोरम पूरा नहीं होता, तब तक संसद की कार्यवाही प्रारंभ नहीं की जा सकती है। कोरम पूरा न होने का सष्ट कारण सदस्यों का संसद के सदनों से अनुपस्थित रहना होता है। देश में यह प्रवृत्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। एक समय था, जब संसद भवन सदस्यों से खचाखच भरा रहता था और सदस्य गण संसद की कार्यवाही में गहन रुचि लिया करते थे। आज तो लगभग 10 प्रतिशत सदस्य ही बहस में भाग लेते हैं। जैसे 17 मई, 1982 को 46वें संशोधन विधेयक और 22 अगस्त, 1984 को 47वें संशोधन विधेयक पारित न होने का कारण सदस्यों की अनुपस्थिति था। इसी प्रकार जब 24 नवम्बर, 1988 में मूल्यों की वृद्धि पर संसद में बहस शुरू हुई. तो मात्र 21 सदस्य ही उपस्थित मिले।

2. संसद की बैठकों में कमी (Less Numbers of Sittings of the Parliament)- भारतीय संसद की प्रतिष्ठा में गिरावट का एक अन्य कारण संसद की बैठकों में कमी होना है। प्रारंभिक काल में संसद की बैठकें लगभग 7-8 महीने हुआ करती थीं, लेकिन धीरे-धीरे संसद की बैठकों का समय घटकर 3-4 महीने रह गया। यदि बैठकों के काल को दिनों में गिना जाए, तो प्रारंभ में संसद की बैठकें वर्ष में लगभग 135 दिन तक चलती थी। पण्डित नेहरू के कार्यकाल में एक वर्ष में संसद की औसतन बैठके 120 दिन हुआ करती थीं, लेकिन इन्दिरा गांधी के कार्यकाल में यह संख्या घटकर 92 दिन रह गयी थी। 1992-2001 के मध्य संसद के कार्य दिवसों की संख्या घटकर 70-75 दिन रह गयी। संसदों की बैठकों की संख्या के घटने का प्रभाव

इसकी कार्य प्रणाली पर पड़ता है, क्योंकि संसद के पास साधारण या धन विधेयकों पर विचार करने के लिए पर्याप्त समय नहीं रह जाता है।

3. साधारण व्यक्तित्व के सदस्य (Members of Ordinary Personality)- संसद की प्रतिष्ठा को घटाने या बढ़ाने का श्रेय संसद सदस्यों की योग्यता को जाता है। एक समय संसद में प्रतिभाशाली एवं बुद्धिमान सांसद होते थे। उन्हें संसदीय प्रक्रिया का पूरा ज्ञान होता था और वे गंभीरतापूर्वक संसद की कार्यवाही में भाग लेते थे। तब विपक्ष में डा. राममनोहर लोहिया अटल बिहारी वाजपेयी एवं इन्द्रजीत गुप्त जैसे नेता होते थे, जिनकी सरकार अनदेखी नहीं कर सकती थी। आजकल संसद के अधिकतर सदस्य साधारण योग्यता वाले होते हैं। इन्हें न तो संसद की प्रक्रिया का ज्ञान होता और न ही ये संसद की कार्यवाही में रुचि लेते हैं। 14वीं लोक सभा (2004-09) में 37 सांसद ऐसे थे, जिन्होंने एक भी प्रश्न सदन में नहीं पूछा था।

4. अड़ियल प्रकृति के सदस्य (Members of Obstinate Nature)- सदस्यों की अड़ियल प्रकृति ने भी संसद की गरिमा को प्रभावित किया है। संसद के कुछ सदस्य अड़ियल प्रकृति के होते हैं। ये संसद में हठधर्मिता दिखाते हैं और संसद की कार्यवाही को चलने नहीं देते हैं। ये संसद में हंगामा करते हैं। ये भाषण देते समय असभ्य भाषा का प्रयोग करते हैं। एक बार लोक सभा के पूर्व अध्यक्ष पी.ए, संगमा ने सांसदों को चेतावनी देते हुए कहा था कि आप सबको ध्यान रखना चाहिए कि आपको प्रत्येक गतिविधि को देश ही नहीं, बल्कि समस्त विश्व देख रहा है। 2010 में संसद के 23 दिन चले शीतकालीन अधिवेशन के दौरान केवल 10 घंटे ही कार्य हो पाया था, क्योंकि विपक्ष 2-जी स्पेक्ट्रम घोटाले की संयुक्त संसदीय समिति द्वारा जांच की उस मांग पर अड़ा रहा, जो सरकार को स्वीकार न थी। इसी प्रकार 2023 के शीतकालीन अधिवेशन में विपक्षी दल लम्बे समय तक मणिपुर के मुद्दे पर प्रधान मन्त्री के स्पष्टीकरण की माँग करते रहे और अन्त में सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' ले आए, ताकि प्रधान मन्त्री सदन में आकर इस पर बयान दें।

5. मंत्रियों का अनुत्तरदायी व्यवहार (Irresponsible Behaviour of Ministers) - मंत्रियों का अनुसरणार्थी व्यवा भी संसद के पतन के लिए उत्तरदायी है। किन्तु अनेक बार मंत्री वाद-विवाद के समय संसद में उपस्थित नहीं रहते हैं। कई बार ये जान-बूझकर प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर भी नहीं देते हैं और यह कहकर प्रश्न टाल देते हैं कि प्रश्न का उत्तर देना सार्वजनिक हित में नहीं है। जब 1966 में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर संसद में बहस चल रही थी, तो उस समय 15 कैबिनेट मंत्रियों में से केवल एक मंत्री ही संसद उपस्थित था।

6. प्रदत्त विधायन (Delegated Legislation) — संसद के पास इतना समय नहीं होता कि वह सभी विधेयकों को विस्तारपूर्वक विचार करने के बाद पारित कर सकें। प्रायः संसद कानूनों की रूपरेखा तैयार कर देती है और उन कानूनों के अधीन नियम एवं उप-नियम बनाने की शक्ति मंत्रिपरिषद को दे देती है। इसे ही प्रदत्त विधायन कहते हैं। मंत्री नियम एवं उप-नियम बनाते समय कानून को काफी सीमा तक अपनी इच्छानुसार तोड़-मरोड़ देते हैं। इससे मंत्रिमंडल की शक्तियों में वृद्धि, किन् संसद की स्थिति कमजोर हो जाती है। स्पष्ट है कि प्रदत्त विधायन ने संसद की प्रतिष्ठा को कम किया है।

7. संसद का कार्यपालिका पर नाममात्र का नियंत्रण (Nominal Control of the Parliament over Executive) - भारत में कार्यपालिका अर्थात सरकार संसद के प्रति उत्तरदायी है। सरकार संसद का विश्वास बने रहने तक अपने पद पर बनी रह सकती है। संसद सदस्यों को मंत्रियों से प्रश्न एवं अनुपूरक प्रश्न पूछने का अधिकार है। लोक सभा कभी भी सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव (No-confidence Motion) पारित करके उसे पद से हटा सकती है. किन्तु यह स्थिति सैद्धान्तिक है। व्यावहार में सरकार के विरुद्ध लोक सभा में 'अविश्वास प्रस्ताव पारित होना संभव नहीं होता है, क्योंकि सरकार को लोक सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है और लोक सभा में सत्ता पक्ष के सदस्य अपने दल के आदेशानुसार मतदान करते हैं। यदि कभी सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव पारित भी हो जाए, तो भी सरकार के लिए तुरन्त अपना त्याग-पत्र देना आवश्यक नहीं है। ऐसे में सरकार पहले ही राष्ट्रपति से लोक सभा भंग करने की सिफारिश करके इसको भंग करा सकती है। स्पष्ट है कि संसद के कार्यपालिका अर्थात सरकार पर नाममात्र के नियंत्रण से भी संसद की प्रतिष्ठा में कमी आयी है।

8. दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों का पक्षपातपूर्ण व्यवहार (Partisan Attitude of Presiding Officers of Both the Houses)- संसद के दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों का पक्षपातपूर्ण व्यवहार भी संसद की प्रतिष्ठा में

गिरावट का एक कारण रहा है। लोक सभा अध्यक्ष, का चुनाव दलगत आधार पर होता है और वह चुनाव के बाद भी अपने दल का सदस्य बना रहता है। ऐसे में उससे पूर्ण निष्पक्षता की आशा करना व्यर्थ है। भारत में उप-राष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन सभापति होता है उसका चुनाव भी दलगत आधार पर होता है। समान्यतः शासक दल द्वारा समर्थित व्यक्ति ही इस पद पर निर्वाचित होता है, ऐसे में उससे पूर्ण निष्पक्ष व्यवहार की आशा नहीं की जा सकती है।

9. संसद एक पुष्टि करने वाली संस्था (Parliament as an Approving Body)— आजकल संसद कानूनों का निर्माण करने वाली संस्था कम और इनकी पुष्टि करने वाली संस्था अधिक हो गयी है। इसका तात्पर्य यह है कि अब कानूनों के निर्माण में संसद का विशेष योगदान नहीं रहा है। वस्तुतः यह कार्य मन्त्रालयों द्वारा किया जाता है। मन्त्रालयों द्वारा तैयार विधेयकों को संसद में केवल पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया जाता है। संसद के सदस्यों के पास प्रस्तावित कानूनों की बारीकियों को समझने का न तो समय होता है और न ही क्षमता। इसलिए ये मन्त्रालयों द्वारा तैयार विधेयकों को ज्यों-का-त्यों पारित कर देते हैं। यही कारण है कि एक दिन में कई-कई विधेयक संसद द्वारा पारित कर दिए जाते हैं। 2008 में 14 महत्वपूर्ण विधेयक एक ही दिन और वह भी 20 मिनट में पारित कर दिए गए थे। इसी प्रकार राज्य सभा ने 2020 के वर्षा कालीन अधिवेशन में 22 सितम्बर के दिन साढे तीन घण्टे में सात विधेयक पारित कर डाले थे।

10. शासन कार्य की जटिलता (Complexity of Governance) - वर्तमान समय में शासन का कार्य बहुत जटिल हो गया है और कानून निर्माण एवं शासन के क्षेत्र में ऐसी पेचीदा समस्याएं उत्पन्न होने लगी हैं, जिन्हें भली-भांति समझना संसद के सदस्यों के लिए संभव नहीं होता। संसद सदस्य इतने सक्षम नहीं होते हैं कि राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, - एवं तकनीकी मामलों में मन्त्रियों का पथ-प्रदर्शन कर सकें। इनकी तुलना में मंत्री लोग अधिक योग्य होते हैं। प्रशासनिक अधिकारियों से निरन्तर और निकट संपर्क में रहने के कारण ये कानून-निर्माण एवं प्रशासनिक कार्य ठीक प्रकार से करने की स्थिति में होते हैं। इस प्रकार संसद सदस्यों द्वारा प्रशासन-संबंधी जटिल बातों को पूरी तरह न समझ सकने और मंत्रियों के अपेक्षाकृत अधिक योग्य होने के कारण संसद की शक्तियों एवं गरिमा में कमी आयी है।

11. लोक वित्त पर नाममात्र का नियंत्रण (Nominal Control over Public Finance)- संसद धन-संबंधी मामलों में सर्वोच्च है, क्योंकि संसद की स्वीकृति के बिना न तो कोई कर लगाया जा सकता है और न ही कोई कर समाप्त किया जा सकता है, किन्तु व्यवहार में राष्ट्रीय धन पर संसद का नाममात्र का नियंत्रण रह गया है। धन विधेयक मंत्रिमंडल द्वारा तैयार किए जाते हैं और संसद में प्रस्तुत किए जाते हैं। मंत्रिमंडल के दल का लोक सभा में बहुमत होने के कारण लोक सभा में इन विधेयकों का पारित हो जाना स्वाभाविक है। विरोधी पक्ष धन विधेयकों की आलोचना ही कर सकता है: इनमें कोई संशोधन नहीं कर सकता है। इस प्रकार इसका लोक वित्त पर नाममात्र का ही नियंत्रण रह गया है।

12. महत्त्वपूर्ण निर्णयों में संसद की उपेक्षा (Ignoring Parliament on Important Descisions)- संसदीय प्रणाली की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें सरकार को राष्ट्रीय मुद्दों एवं महत्वपूर्ण निर्णयों पर संसद की स्वीकृति लेनी होती है। संसद के अधिवेशन में होते हुए भी महत्वपूर्ण नीतियों एवं निर्णयों की घोषणा संसद के बाहर की जाती है। भारत द्वारा विश्व बैंक से कर्ज लिया जाना, फ्रांस से ₹ 7500 करोड़ के मिराज हवाई जहाज खरीदना आदि मामलों में सरकार ने संसद को विश्वास में नहीं लिया। ये संसद की उपेक्षा के कुछ उदाहरण हैं। स्पष्ट है कि संसद की उपेक्षा से संसद की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचती है।

13. त्रिशंकु संसद (Hung Parliament)- संसद की गरिमा में गिरावट आना तब शुरू हुआ था. जब त्रिशंक संसदें अस्तित्व में आने लगी थी। त्रिशंकु संसद में किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नहीं होता है। ऐसे में अनेक दल मिलकर सरकार का निर्माण करते हैं; जैसे-1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004 एवं 2009 के लोक सभा चुनावों के बाद हुआ। इन चुनावों में किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ था, जिसके कारण मिली-जुली सरकारों का गठन किया गया था। त्रिशंकु संसद की स्थिति में विचार-विमर्श ठीक प्रकार से नहीं हो पता है। महत्वपूर्ण विधेयक गतिरोध के कारण पास नहीं हो पाते हैं। आता है इससे भी संसद की गरिमा को धक्का लगा है।

14. अध्यादेशों का प्रचलन (Usage of Ordinances)— संविधान के अनुच्छेद 123 (1) के अनुसार जब संसद का अधिवेशन न चल रहा हो, तो राष्ट्रपति अध्यादेश की घोषणा कर सकता है, यदि ऐसा करना आवश्यक हो। वास्तव में अध्यादेश

एक आकस्मिक युक्ति है, जिसका नियमित रूप से प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। लेकिन भारत में सरकार संसद को नजर अन्दाज करके अध्यादेश जारी करके कानूनों में फेर-बदल करती रही है। उदाहरण के लिए राष्ट्रपति द्वारा 1952 से लेकर 1991 तक 368 अध्यादेश जारी किए गए। 1992 में 29 अध्यादेश, 1993 में 34 अध्यादेश, 1994 में 14 अध्यादेश, 1995 में 15 अध्यादेश, 1996 में 32 अध्यादेश, 1997 में 39 अध्यादेश, 1998 में 20 अध्यादेश, 1999 में 10 अध्यादेश, 2000 में 5 अध्यादेश, 2001 में 12 अध्यादेश, 2002 में 7 अध्यादेश, 2003 में 8 अध्यादेश, 2004 में 8 अध्यादेश, 2005 में 4 अध्यादेश और 2006 में 3 अध्यादेश राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए। अध्यादेशों का सहारा लेने से संसद की उपेक्षा होती हैं।

अत: कहा जा सकता है कि पिछले कुछ 30-35 वर्षों में संसद की कार्य प्रणाली में परिवर्तन आया है और उपर्युक्त कुछ प्रमुख कारणों से संसद की प्रतिष्ठा में कमी आई है।

भारत में कानून बनाने की विधि (Law-Making Procedure in India)

संसद का मुख्य कार्य कानून बनाना है। कानून बनाने के लिए संसद के सामने जो प्रस्ताव या मसौदा (Draft) प्रस्तुत किया जाता है, उसे 'विधेयक' (Bill) कहा जाता है। जब संसद के दोनों सदन विधेयक को अलग-अलग पारित कर देते है और उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाती है, तो यह अधिनियम (Act) बन जाता है अर्थात कानून बन जाता है। संसद में जो भी विधेयक प्रस्तुत किए जाते हैं, उन्हें प्रायः दो भागों में बांटा जाता है— (i) साधारण विधेयक (Ordinary Bill) एवं (ii) धन विधेयक (Money Bill)

साधारण विधेयक एवं धन विधेयक के पारित होने की प्रक्रिया में अंतर है। धन विधेयक की परिभाषा संविधान के अनुच्छेद 110 में दी गयी है। इसके अनुसार यदि कोई विधेयक निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित है, तो वह धन विधेयक कहलाता है।

(i) किसी कर का लगाना, हटाना, कम करना, परिवर्तित करना अथवा विनियमित करना।

(ii) भारत सरकार द्वारा ऋण लेने का नियम बनाना या कोई गारंटी देना या भारत सरकार के किसी वित्तीय उत्तरदायित के संबंध में नियम बनाना।

(iii) भारत की संचित निधि (Consolidated Fund) अथवा आकस्मिक निधि (Contingency Fund) का साक्षर किसी भी निधि से धन निकालना अथवा उसमें जमा करना।

(iv) भारत की संचित निधि से धन का विनियोजन करना।

(v) किसी व्यय को संचित निधि से होने वाला व्यय घोषित करना या किसी ऐसे व्यय की राशि में वृद्धि करना।

(vi) संचित निधि के लिए धन प्राप्त करना अथवा भारत के सार्वजनिक लेख या ऐसे व्यय को संरक्षण देना या संघ अथवा राज्य के लेखों का निरीक्षण करना।

कोई विधेयक धन विधेयक है अथवा नहीं, यह लोकसभा अध्यक्ष तय करता है। उपर्युक्त विषयों से संबंधित विधेयकों के अतिरिक्त अन्य सभी विधेयक साधारण विधेयक की श्रेणी में आते हैं।

(अ) साधारण विधेयक के लिए विधि (Procedure for Ordinary Bill)- प्रत्येक साधारण विधेयक को पांति होने के लिए क्रमवार निम्नलिखित चरणों से गुजरना होता है।

1. परिचय एवं प्रथम वाचन (Introduction and First Reading)- साधारण विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है, किन्तु धन विधेयक केवल लोक सभा में ही लाया जा सकता है। यद्यपि संसद का कॉ भी सदस्य सदन में विधेयक प्रस्तुत कर सकता है, किन्तु ज्यादातर विधेयक (लगभग 80%) मत्रियों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। इसका कारण यह है कि जो विधेयक किसी मंत्री के द्वारा प्रस्तुत न किया जाए या जिसे मंत्रिमंडल का समर्थन प्राप्त न हो, उसके पारित होने की

बहुत ही कम संभावना होती है, क्योंकि सांसदों का बहुमत मंत्रिमंडल के साथ होता है।

साधारण विधेयक जिस सदन में प्रस्तुत किया जाता है, उस सदन को इसके लिए कम-से-कम एक महीना पहले सूचना देना आवश्यक है। सदन के कार्य को देखते हुए पीठासीन अधिकारी उस विधेयक को प्रस्तुत करने के लिए तिथि निश्चित करता है। उस तिथि को सदन का सदस्य सदन से विधेयक को प्रस्तुत करने की आज्ञा मांगता है, जो प्रय जाती है। किन्तु यदि उस विधेयक के प्रस्तुत किए जाने के बारे में कुछ सदस्यों द्वारा विरोध प्रकट किया जाए, तो पीठासीन अधिकारी सदस्यों को उसके पक्ष-विपक्ष में अपना मत प्रकट करने के लिए कहता है। इसके पश्चात् मत लिए जाते हैं और यदि बहुमत उस विधेयक के पक्ष में होता है, तो वह विधेयक प्रस्तुत हुआ समझा जाता है। सरकारी विधेयकों अर्थात् मंत्रियों इरा प्रस्तुत विधेयकों के लिए इस प्रकार की स्वीकृति केवल औपचारिकता मात्र है। सदन की आज्ञा मिलने के पश्चात् विधेयक प्रस्तुत करने वाला सदस्य उस समय विधेयक का शीर्षक (Heading) का परिचय देता है और इसके पश्चात् वह विधेयक राजकीय पत्र (गजट) में छाप दिया जाता है। इसके साथ विधेयक के पारित होने का पहला चरण समाप्त हो जाता है।

2. द्वितीय वाचन (Second Reading)- विधेयक के सदन में प्रस्तुत हो जाने के पश्चात् सदस्यों में उसकी प्रतियाँ (कापियां) वितरित कर दी जाती है। इसके साथ उस विधेयक का दूसरा वाचन आरंभ होता है। प्रायः किसी विधेयक के प्रस्तुत होने और द्वितीय वाचन में दो दिन का अंतर रहता है, किन्तु यदि पीठासीन अधिकारी उस विधेयक को अति आवश्यक समझे, तो वह इससे पहले भी उस पर द्वितीय वाचन की आज्ञा दे सकता है। इस अवस्था के आरंभ होने पर विधेयक प्रस्तुत करने वाला सदस्य निम्नलिखित तीन प्रस्तावों में से कोई एक प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है-

(i) विधेयक को विचार के लिए प्रवर समिति (Select Committee) के पास भेज दिया जाए,

(ii) विधेयक पर तुरन्त विचार किया जाए,

(iii) विधेयक को जनमत जानने के लिए प्रकाशित कर दिया जाए।

इस चरण में सदन में विधेयक के मुख्य सिद्धांतों पर विचार किया जाता है: न कि उसकी प्रत्येक धारा पर विस्तार पूर्वक वाद-विवाद।

3. समिति स्तर (Committee Stage)- द्वितीय वाचन के पश्चात् विधेयक को प्रवर समिति के पास भेज दिया बाता है। सदन का पीठासीन अधिकारी प्रवर समिति के सभापति को नियुक्त करता है। इस समिति के अन्य सदस्यों का चुनाव सदन के द्वारा किया जाता है। विधेयक का प्रस्तावक भी इस समिति का सदस्य होता है। इस समिति में सदस्यों की संख्या 20 से 30 तक होती है और इस समिति में विषय के विशेषज्ञ होते हैं, इसलिए इस स्तर पर विधेयक की प्रत्येक धारा पर सूक्ष्म तरीके से विचार किया जाता है। प्राइवेट समिति विधायक पर गहन विचार करती है और एक रिपोर्ट तैयार करती है।

4. रिपोर्ट स्तर (Report Stage)- प्रवर समिति द्वारा तैयार की गयी रिपोर्ट समिति के अध्यक्ष अथवा उसकी अनुपस्थिति में किसी सदस्य द्वारा सदन में प्रस्तुत की जाती है। इस रिपोर्ट को छपवा दिया जाता है और उसकी प्रतियां सदन में वितरित कर दी जाती हैं। इस रिपोर्ट के आधार पर सदन में विधेयक की प्रत्येक धारा पर सूक्ष्म तरीके से विचार किया जाता है। विधेयक के समर्थक उसके पक्ष में भाषण देते हैं और विरोधी उसके दोषों को सदन के सामने रखते हैं। इस स्तर पर विधेयक की प्रत्येक धारा पर अलग-अलग विचार किया जाता है और प्रत्येक धारा पर मतदान कराया जाता है। यदि विधेयक सदन में पारित हो जाता है, तो कुछ समय पश्चात् उसका तृतीय वाचन शुरू होता है।

5. तृतीय वाचन (Third Reading)- तृतीय वाचन पहले सदन में विधेयक के पारित होने का अन्तिम चरण है।इस चरण में विधेयक पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया जाता है, बल्कि विधेयक के सामान्य सिद्धांतों पर ही विचार होता है और उसकी भाषा-संबंधी अशुद्धियों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। इसके पश्चात् मतदान होता है और बहुमत प्राप्त कर लेने पर विधेयक को सदन द्वारा पारित समझा जाता है।

6. विधेयक दूसरे सदन में (Bill in Other House)- जब कोई विधेयक एक सदन द्वारा पारित हो जाता है, तो उसे विचार के

लिए दूसरे सदन में भेज दिया जाता है। यहां विधेयक को उन्हों चरणों से गुजरना होता है, जिनसे वह पहले सदन में गुजरा था। यदि दूसरा सदन विधेयक को पारित कर देता है, तो उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है।

यदि एक सदन द्वारा पारित किया गया विधेयक दूसरे सदन द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है, या दूसरा सदन उसमें ऐसे संशोधन कर देता है, जो पहले सदन को स्वीकार न हों, तो दोनों सदनों में उस विधेयक के संबंध में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है। यदि यह गतिरोध छह महीने तक जारी रहता है, तो इस अवधि के समाप्त होने पर राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाता है। इस बैठक की अध्यक्षता लोक सभा अध्यक्ष करता है। यदि इस बैठक में विधेयक उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के बहुमत से पारित हो जाता है, तो वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है। इसके पश्चात् उसे राष्ट्रपति को स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है।

जब लोक सभा किसी धन विधेयक को पारित कर देती है, तो उसे राज्य सभा के पास भेजा जाता है। यदि राज्य सभा उसे 14 दिन के अंदर पारित न करे या उसमें ऐसे संशोधन कर दे, जो लोक सभा को स्वीकार न हों, तो 14 दिन समाप्त होने पर वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित हुआ समझा जाता है, चाहे राज्य सभा ने उसे पारित न भी किया हो। दूसरे शब्दों में, राज्य सभा किसी धन विधेयक को अधिक-से-अधिक 14 दिन तक रोक सकती है।

7. राष्ट्रपति की स्वीकृति (Assent of the President)- संसद के दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित होने के पश्चात् विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यदि राष्ट्रपति उस पर अपने हस्ताक्षर करके उसको अपने स्वीकृति दे देता है, तो वह विधेयक कानून बन जाता है। किन्तु राष्ट्रपति चाहे, तो उसके विषय में अपने सुझाव देकर उस संसद के पास पुनःविचार के लिए वापस भेज सकता है। यदि संसद के दोनों सदन उसे दोबारा अलग-अलग पारित करके राष्ट्रपति के पास भेज दें, तो राष्ट्रपति को उस विधेयक को अपनी स्वीकृति देनी पड़ती है। संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित होने और राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने पर विधेयक कानून का रूप धारण कर लेता है।

(ब) बजट को पारित करने की प्रक्रिया (Procedure of Passing the Budget)- संविधान के अनुच्छेद 112 के अनुसार राष्ट्रपति का यह दायित्व है कि वह प्रत्येक वर्ष संसद के सामने 'वार्षिक वित्तीय विवरण' (Annual Financial Statement) प्रस्तुत करवाए। इस विवरण को ही 'बजट' (Budget) कहा जाता है। इसमें सरकार की एक वर्ष की आय एवं व्यय का अनुमानित विवरण होता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति से वित्त मंत्री द्वारा बजट लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। बजट प्रति वर्ष प्रायः फरवरी की पहली तारीख को प्रस्तुत किया जाता है। पहले संसद में दो प्रकार के बजट प्रस्तुत किए जाते थे-(1) सामान्य बजट एवं (ii) रेलवे बजट। किन्तु सरकार ने 92 वर्ष से चली आ रही परम्परा को विराम देते हुए 21 मार्च, 2016 को रेलवे बजट को सामान्य बजट में विलय करने का ऐतिहासिक निर्णय लिया।

बजट में खर्च दो भागों में प्रस्तुत किया जाता है—

भारत की संचित निधि से होने वाला व्यय (Expenditures Chargel Upon the Consolidated Fund of India) एवं **अन्य खर्च** (Other Expenditures)।

संचित निधि से होने वाले व्यय के विषयों पर संसद में मतदान नहीं किया जाता है, क्योंकि ये संविधान के द्वारा संरक्षित किए गए हैं, अतः ये लोक सभा में मतदान के बिना ही पारित कर दिए जाते हैं। इस श्रेणी में निम्नलिखित विषय शामिल हैं-

(i) राष्ट्रपति का वेतन, भत्ते एवं पद से संबंधित अन्य खर्च।

(ii) राज्य सभा के सभापति एवं उप-सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के वेतन एवं भतों में संबंधित खर्च।

(iii) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते एवं पेंशन आदि से संबंधित खर्च।

(iv) भारत सरकार पर ऋण अथवा उसके व्याज आदि से संबंधित खर्च।

(v) उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को या उसके संबंधी को दी जाने वाली पेंशन से संबंधित खर्च।

(vi) कोई ऐसी राशि, जो किसी न्यायालय के निर्णय अथवा आदेश को लागू करने के लिए आवश्यक हो।

(vii) ऐसा कोई खर्च, जिसे संविधान अथवा संसद के किसी कानून द्वारा इस श्रेणी में रख दिया जाए।

उपर्युक्त खचों को छोड़कर शेष भाग पर सदन को मतदान करने का अधिकार प्राप्त है। इन्हें वित्त मंत्री सदन के सामने '**अनुदान के लिए मांग' (Demands for Grant)** के रूप में रखता है। सदन में बाद-विवाद वित्त मंत्री के भाषण से आरंभ होता है और इसके पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दिए जाते हैं। यदि सदन इन मांगों को अस्वीकार कर दे, तो सरकार को अपना त्याग-पत्र देना पड़ता है, क्योंकि इनकी अस्वीकृति यह सिद्ध करती है कि सरकार को सदन का समर्थन प्राप्त नहीं है। जब ये मांगें लोक सभा के द्वारा पारित हो जाती हैं, तो संचित निधि से होने वाले खचों सहित इन्हें एक **'विनियोग विधेयक' (Appropriation Bill)** के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसके पारित होने से सरकार को देश की निधि से धन निकालने एवं खर्च करने की स्वीकृति मिल जाती है।

सरकार की आय के लिए कर आदि लगाने के प्रस्तावों को लोक सभा के सामने एक **'वित्त विधेयक' (Finance Bill)** के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इन प्रस्तावों को लोक सभा स्वीकार कर सकती है; अस्वीकार कर सकती है कम कर सकती है, किन्तु सरकार इन्हें बढ़ा नहीं सकती है। इसके पारित होने के बाद सरकार को नए कर लगाने औ इनके संग्रह करने का अधिकार मिल जाता है।

राज्य सभा में बजट (Budget in Rajya Sabha)- जब विनियोग विधेयक एवं वित्त विधेयक लोक सभा द्वारा पारित हो जाते हैं, तो इन्हें राज्य सभा में भेज दिया जाता है। राज्य सभा में भी इन पर उसी प्रकार से विचार किया जाता है, जिस प्रकार से लोक सभा में। राज्य सभा द्वारा इनमें कुछ परिवर्तन करने के लिए सिफारिश की जा सकती है, किन्तु इनके संबंध में अन्तिम शक्ति लोक सभा के ही पास है, इसलिए यह उसी की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह इन सिफारिशों को माने या न माने। राज्य सभा इन विधेयकों को केवल 14 दिन के लिए ही अपने पास रोक सकती है। इस अवधि के समाप्त होने पर ये दोनों विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझे जाते हैं, चाहे राज्य सभा ने इन्हें अपनी स्वीकृति दे या न दे।

राष्ट्रपति की स्वीकृति (Assent of the President)- संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात् विनियोग विधेयक एवं वित्त विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिए जाते हैं। राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने पर ये पूरी तरह पारित हो जाते हैं। इस प्रकार पारित बजट अगले वित्तीय वर्ष में लागू हो जाता है।

संसद की समिति प्रणाली

(Committee System of the Parliament)

संसदीय समितियाँ विधानपालिका का अभिन्न अंग होती है। मौरिस जॉन्स के अनुसार, "वास्तव में विधानपालिका को इसकी समितियों द्वारा जाना जाता है।" विधानपालिका कानून निर्माण एवं कार्यपालिका पर नियंत्रण रखने के कार्य इन समितियों के द्वारा करती है। प्रशासकीय कार्यों के अत्यधिक तकनीकी हो जाने एवं समय की कमी होने के कारण संसद विभिन्न विषयों पर विस्तार से विचार नहीं कर पाती है। यह अपने कार्य की पूर्ति अपनी समितियों द्वारा करती है, जो विभिन्न समस्याओं पर विस्तारपूर्वक विचार-विमर्श करती हैं और संसद को सही परामर्श देती हैं। भारत में संसद द्वारा अपने कार्यों के कुशल निष्पादन के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया जाता है। इन समितियों का गठन संसद के दोनों सदनों-लोक सभा एवं राज्य सभा से किया जाता है।

संसदीय समितियों की नियुक्ति (Appointment of Parliamentary Committees)- संसदीय समितियों के सदस्यों को साधारणतः दो प्रकार से नियुक्त किया जाता है।

कुछ समितियों के सदस्यों को संबंधित सदन द्वारा निर्वाचित किया जाता है और कुछ समितियों के सदस्यों को लोक सभा अध्यक्ष या राज्य सभा के सभापति द्वारा मनोनीत किया जाता है, किन्तु मंत्रियों को इन समितियों का सदस्य नहीं बनाया जाता है। प्रत्येक समिति का सभापति समिति के सदस्यों में से मनोनीत किया जाता है। यदि उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) किसी समिति का सदस्य हो, तो यह उस समिति का पदेन (Ex-officio) सभापति होता है। इन समितियों के सदस्यों की संख्या समान नहीं होती है। अधिकांश समितियों की सदस्य- संख्या 15 है। सबसे कम सदस्य पुस्तकालय समिति में हैं, जिनको संख्या नौ है और सबसे अधिक सदस्य अनुमान समिति (Estimate Committee) में हैं, जिनकी संख्या 30 है।

संसदीय समितियों की कार्य प्रणाली (Working of Parliamentary Committees)— संसदीय समितियाँ अपना कार्य निर्धारित नियमानुसार करती है। इनकी बैठके अध्यक्ष द्वारा बुलायी जाती है, किन्तु किसी भी समिति की बैठक उस समय नहीं हो सकती है, जब संसद का अधिवेशन चल रहा हो। इन समितियों की बैठक संसद भवन में ही होती है, किन्तु यदि कोई समिति किसी विशेष कारण से संसद भवन के बाहर बैठक करना चाहे, तो वह लोक सभा अध्यक्ष की अनुमति से ऐसा कर सकती है। ये समितियाँ सरकार से किसी भी विषय के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण या अभिलेख मांग सकती हैं। ये किसी व्यक्ति को अपने समक्ष प्रस्तुत होकर बयान देने के लिए बुला सकती है। ये सरकारी पत्र, रिपोर्ट एवं अभिलेखों का निरीक्षण कर सकती हैं। ये अपना कार्य सदन के सचिवालय के कर्मचारियों की सहायता से करती हैं।

प्रत्येक समिति की गणपूर्ति (Quorum) सदन द्वारा उसकी नियुक्ति के समय तय की जाती है। साधारणतः सभी समितियों की गणपूर्ति इनके समस्त सदस्यों की आधी संख्या होती है। ये समितियाँ बहुमत के आधार पर निर्णय लेती हैं। किसी विषय पर बराबर मत आने पर इनके सभापति को 'निर्णायक मत' (Casting Vote) देने का अधिकार होता है। कोई समिति कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए उप-समितियाँ नियुक्त कर सकती है। सभापति समिति द्वारा लिए गए निर्णयों की रिपोर्ट लोक सभा अध्यक्ष (Speaker) को प्रस्तुत करता है। लोक सभा अध्यक्ष समय-समय पर इन समितियों की कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में नियम तय करता है।

संसदीय समितियों का वर्गीकरण (Classification of Parliamentary Committees)

भारत में संसदीय समितियों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है-

(क) स्थायी समितियाँ (Standing Committees) एवं (ख) तदर्थ समितियाँ (Ad-hoc Committees)।

प्रथम प्रकार की समितियाँ स्थायी समितियाँ होती है, क्योंकि इनकी स्थापना प्रति वर्ष की जाती है और ये नियमित रूप से कार्यरत् रहती हैं, जब कि दूसरे प्रकार की समितियों का गठन किसी विशेष कार्य के लिए किया जाता है और जैसे ही वह कार्य पूरा हो जाता है, इन्हें भंग कर दिया जाता है। यहाँ इन दोनों प्रकार की संसदीय समितियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

(क) स्थायी समितियाँ (Standing Committees)-स्थायी समितियों द्वारा किए जाने वाले कार्यों की प्रकृति एवं आधार पर ये निम्नलिखित छह प्रकार की हैं-

(1) वित्तीय समितियाँ (Financial Committees)-इस श्रेणी में आने वाली मुख्य समितियाँ हैं-

(i) सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee)- जिस तरह अनुमान समिति विभिन्न विभाएं द्वारा प्रस्तुत अनुमानों की जांच-पड़ताल करती है, उसी प्रकार यह समिति प्रशासनिक विभागों द्वारा पिछले वर्ष में किए गए खचर्चा की जांच-पड़ताल करती है। यह समिति इस बात की जाँच करती है कि किसी विभाग ने उतना ही धन खर्च किय है या नहीं जितने धन की संसद ने उसे स्वीकृति दी थी और खर्च निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किया गया है या नहीं।

आरम्भ में इस समिति के सदस्यों की संख्या 15 थीं, लेकिन 1955 में इनकी संख्या बढ़ाकर 22 कर दी गयी, जिसमें 15 सदस्य लोक सभा द्वारा और सात सदस्य राज्य सभा के । कोई मंत्री इस समिति का सदस्य नहीं हो सकता है। लोक सभा अध्यक्ष द्वारा इसके सदस्यों में से इस समिति का सभापति नियुक्त किया जाता है।

सार्वजनिक लेखा समिति निम्नलिखित कार्य करती है-

1. यह समिति यह देखती है कि जिस अधिकारी ने जो धन राशि खर्च की है, वह संसद द्वारा स्वीकृत है या नहीं।

2. यह समिति यह भी देखती है कि जिस अधिकारी ने जो धन-राशि खर्च की है उसे ऐसा करने का अधिकार है या नहीं।

3. यह समिति 'नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक' की रिपोर्ट के आधार पर सार्वजनिक नियमों के अनुसार किए गए खर्चों की जांच-पड़ताल करती है।

4. यह समिति सरकार के अधीन किसी भी संस्था के व्यय की जांच-पड़ताल कर सकती है।

5. यह समिति विभिन्न प्रशासनिक विभागों द्वारा संसद के सम्मुख प्रस्तुत लेखों (Accounts) की जांच-पड़ताल करती है।

6. यह समिति वित्तीय मामलों में धन के दुरुपयोग अथवा किसी अनुचित खर्च अथवा खर्च संबंधी भ्रष्टाचार, घुसखोरी, अनियमितता आदि बातों का ब्यौरा तैयार करती है, और इस ब्यौरे को संसद के सामने प्रस्तुत करती है। सार्वजनिक लेखा समिति संसद की अति महत्वपूर्ण समिति है। अपनी स्थापना से लेकर अब तक इसने विभिन प्रशासनिक विभागों की कमियों को उजागर किया है।

(ii) अनुमान समिति (Estimates Committees)- अनुमान समिति लोक वित्त पर संसदीय नियंत्रण का एक अन्य साधन है। इस समिति का मुख्य कार्य सरकारी कायों पर कम खर्च के बारे में संसद को परामर्श देना है। यह समिति सरकार के विभागों द्वारा होने वाले खर्चो का आंकलन करती है और सरकार को परामर्श देती है। इस समिति में 30 सदस्य होते हैं , जो लोक सभा द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एक वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इन सदस्यों में से एक सदस्य को लोक सभा अध्यक्ष इस समिति का सभापति मनोनीत करता है। यदि लोक सभा का उपाध्यक्ष इस समिति का सदस्य है. तो वहीं इस समिति का सभापति होता है। इस समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष है। परम्परा के अनुसार प्रति वर्ष इसके केवल एक -तिहाई नए सदस्य और बाकी दो-तिहाई पुराने सदस्य ही चुन लिए जाते हैं। कोई भी मंत्री इस समिति का सदस्य नहीं होता है। अगर आगे चलकर इस समिति का कोई सदस्य मंत्री नियुक्त हो जाता है, तो उसे इस समिति की सदस्यता छोड़नी होती है।

कार्य (Functions)- अनुमान समिति का मुख्य कार्य विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा बजट के लिए प्रस्तुत आय एवं व्यय के अनुमानों (Estimates) के औचित्य की जांच-पड़ताल करना है। लोक सभा के नियम 310 के अनुसार इस समिति का कार्य सरकार के व्यय के उन अनुमानों का अध्ययन करना है, जो लोक सभा अध्यक्ष अथवा इस सदन द्वारा इसे सौंपे जाएं। यह समिति निम्नलिखित विषयों पर लोक सभा को सुझाव देती है-

1. प्रशासन में बचत एवं कुशलता लाने के लिए सुझाव।

2. प्रशासन में सुधार एवं कुशलता लाने के लिए सरकार की वर्तमान नीति के स्थान पर अन्य नीति का सुझाव।

3. इस बात की जांच करना कि प्रशासकीय कार्य में खर्च किया गया धन अनुमानों में बतायी गयी नीति की सीमा के अधीन है अथवा नहीं।

4. अनुमानों को संसद के सम्मुख रखने के संबंध में सुझाव।

अनुमान समिति विभिन्न विभागों द्वारा प्रस्तुत अनुमानों के संबंध में अपनी रिपोर्ट लोक सभा को सौंपती है। लोक सभा द्वारा इस रिपोर्ट की कापियाँ संबंधित मंत्री को भेज दी जाती हैं और उसे छह माह के अन्दर-अन्दर इस रिपोर्ट में वर्णित सुझावों पर अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए कहा जाता है।

इस समिति ने विभिन्न प्रशासकीय विभागों की कमियों को बताया और सुझाव दिया कि खचों में किस प्रकार कमी की जा सकती है।

(iii) सार्वजनिक उपक्रम समिति (Committee on Public Undertakings)- सार्वजनिक उपक्रमों(सरकारी उद्योग) की निगरानी के लिए इस समिति की स्थापना संसद द्वारा 1 मई, 1964 को की गयी थी। इससे पहले सार्वजनिक उद्यमों के विषय में यह कार्य अनुमान समिति एवं सार्वजनिक लेखा समिति द्वारा किया जाता था। इस समिति के सदस्यों की संख्या 15 है, जिनमें से 10 सदस्य लोक सभा द्वारा और पाँच सदस्य राज्य सभा द्वारा चुने जाते हैं। इसके सदस्यों में से एक-तिहाई सदस्य प्रति वर्ष सेवा निवृति हो जाते हैं और इनके स्थान पर नए सदस्य निर्वाचित किए जाते हैं। यह समिति सरकार द्वारा स्थापित उपक्रमों के हिसाब-किताब की जाँच करती है। यह समिति यह भी देखती है कि सरकारी उपक्रम कुशलतापूर्वक एवं व्यापारिक सिद्धांतों के आधार पर चलाए जा रहे हैं या नहीं।

(व) विभाग-सम्बन्धित स्थायी समितियों (Department-Related Standing Committees)— मन्त्रालयों अथवा विभागों पर निगरानी एवं उनकी नीतियों की समीक्षा करने के लिए विभागीय समितियों की स्थापना की जाती है। भारत में जब 1993 में इनकी स्थापना की जा रही थी, तो राज्य सभा के तत्कालीन सभापति के. आर. नारायणन ने इन पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि इनका मुख्य उद्देश्य सरकार के संसद के प्रति उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करना है तथा प्रशासन को सुदृढ़ता प्रदान करना है। इनका कार्यकाल एक वर्ष होता है। एक वर्ष के पश्चात् इनका फिर से गठन किया जाता है। इस प्रकार इनका कार्य लोक सभा के पूरे कार्यकाल तक जारी रहता है। विभागीय स्थायी समितियों में 31 सदस्य होते हैं, जिनमें से 21 सदस्य लोक सभा से और 10 सदस्य राज्य सभा से लिए जाते हैं। उल्लेखनीय है कि मन्त्री इन समितियों के सदस्य नहीं होते हैं। इनकी अध्यक्षता प्रायः विपक्षी दल के सांसद करते हैं। वर्तमान में इनकी संख्या 24 है। इन 24 समितियों में से आठ समितियाँ राज्य सभा के सभापति के, जब कि शेष 16 समितियाँ लोक सभा अध्यक्ष के प्रशासकीय नियन्त्रण में कार्य करती हैं। कुछ प्रमुख विभागीय समितियां इस प्रकार हैं — गृह मामले, मानव संसाधन विकास, वाणिज्य, उद्योग, परिवहन, संस्कृति एवं पर्यटन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, कार्मिक एवं सार्वजनिक शिकायत और विधि एवं न्याय, कृषि, वन, ऊर्जा, कोयला एवं स्टील, पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस, रसायन एवं उर्वरक, वित्त, प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, सूचना प्रौद्योगिकी, खाद्यान्न, उपभोक्ता मामले , श्रम, रेलवे, शहरी विकास, ग्रामीण विकास एवं सामाजिक न्याय एवं शक्तिकरण आदि।

3. जाँच-पड़ताल समितियाँ (Inquiry Committees)-इस श्रेणी में आने वाली मुख्य संसदीय समितियाँ हैं-

(i) याचिका समिति (Committee on Petititions)- इस समिति की सदस्य संख्या 15 है। इनमें 10 सदस्य लोक सभा के और पाँच सदस्य राज्य सभा के होते हैं। इन्हें लोक सभा अध्यक्ष एक वर्ष के लिए मनोनीत करता है। इस समिति में कोई भी मंत्री शामिल नहीं होता है। यह जनता द्वारा लोक सभा को भेजी गयी याचिकाओं, प्रार्थना-पत्रों आदि पर विचार करके अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती है और संबंधित मंत्रालय को जनता को सुझाव देती है।

(ii) विशेषाधिकार समिति (Privileges Committee) - लोक सभा अध्यक्ष इस समिति के 15 सदस्यों की नियुक्ति करता है। सामान्यतया, सदन के नेता एवं कानून मन्त्री को इस समिति में शामिल किया जाता है। यदि लोक सभा उपाध्यक्ष इस समिति का सदस्य होता है, तो वही इस समिति के सभापति के रूप में कार्य करता है। संसद के सदस्यों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं, जिनका उल्लंघन करना दण्डनीय अपराध होता है। जब सदन की मान-हानि का या किसी सदस्य के विशेषाधिकार के उल्लंघन का प्रश्न सदन में लाया जाता है, तो सदन के अनुरोध पर यह समिति मामले पर विचार करती है। यह निर्णय लेने से पूर्व कथित दोषी व्यक्ति से पूछ-ताछ करती है और दोषों पाए जाने पर उसे दण्ड देती है।

(iii) आचार समिति (Ethics Committee)-इस समिति का राज्य सभा के लिए 1997 में और लोक सभा के लिए 2000 में गठन किया गया था। यह समिति संसद के सदस्यों के आचार- व्यवहार संबंधी विषय करती पर विचार करती है। यह कदाचार के मामलों की जाँच-पड़ताल करती है और उचित कार्रवाई की सिफारिश करती है। इस प्रकार यह समिति संसद में अनुशासन एवं मर्यादा लागू करती है।

4. छान-बीन एवं नियन्त्रण समितियाँ (Scrutiny and Control Committees)-इस श्रेणी में आने वाली मुख्य समितियाँ है

(1) सरकारी आश्वासनों-सम्बन्धी समिति (Committee on Government Assurances)- इस समिति की स्थापना

1953 में की गयी थी। इस समिति में 25 सदस्य होते हैं-15 सदस्य लोक सभा से और 10 सदस्य राज्य सभा से। ये सदस्य लोक सभा अध्यक्ष द्वारा एक वर्ष के लिए मनोनीत किए जाते हैं। इस समिति का मुख्य कार्य यह देखना है कि सरकार ने जनता को जो आश्वासन दिए हैं. वे उसके द्वारा समय-सीमा के अन्तर्गत कहां तक पूरे किए गए हैं। यह समिति इस विषय में अपनी रिपोर्ट सदन को भेजती है। इस समिति का सरकार पर थोड़ा-बहुत नियंत्रण अवश्य रहता है। हालांकि सरकार इसकी सिफारिशें मानने के लिए बाध्य नहीं है।

(ii) अधीनस्थ विधायन समिति (Committee on Subordinate Legislation)-इस समिति की स्थापन में की गयी थी। हालाकि कानून निर्माण का कार्य संसद द्वारा किया जाता है, लेकिन अत्यधिक कार्यभार और आपात स्थिति का सामना करने एवं प्रशासन को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए संसद नियम एवं उप-नियम बनाने का अधिकार संसद कार्यपालिका को सौंप देती है। संसद द्वारा कार्यपालिका को वैधानिक शक्तियों के हस्तारण करने की प्रथा को अधीनस्थ विधायन (Subordinate Legislation) कहा जाता है। ऐसे में यह देखना आवश्यक हो जाता है कि क्या कार्यपालिका इल शक्ति का दुरुपयोग तो नहीं कर रही हैं। अधीनस्थ विधायन पर विचार करने के लिए अधीनस्थ विधायन समिति की स्थापन की जाती है। इस समिति में दोनों सदनों के 15 सदस्य होते हैं, जो लोक सभा अध्यक्ष द्वारा प्रति वर्ष नियुक्त किए जाते हैं। मंत्रियों को इस समिति में शामिल नहीं किया जाता है।

(iii) अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण-संबंधी समिति (Committee on the Welfare of Scheduled Castes and Scheduled Tribes)- इस समिति की स्थापना 1968 में की गयी थी। इस समिति में 30 सदस्य होते हैं, जिनमें 20 सदस्य लोक सभा से और 10 सदस्य राज्य सभा से लिए जाते हैं। इस समिति का प्रमुख कार्य अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए सरकार द्वारा किए जा रहे कार्यों की जांच-पड़ताल करना और इस संबंध में सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना है।

(iv) लाभ के पदों-संबंधी संयुक्त समिति (Joint Committee on Offices of Profit)- इस समिति की स्थापना 1959 की गयी थी। इस समिति में 15 सदस्य होते हैं, जिनमें से 10 सदस्य लोक सभा से और पांच सदस्य राज्य सभा से लिए जाते हैं। यह समिति केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों एवं केंद्र शासित क्षेत्रों में कौन से पद लाभ के हैं और कौन से नहीं, ताकि विभिन्न शासकीय पदों के लिए योग्यताएँ तय की जा सकें।

(D) महिला सशक्तिकरण समिति (Committee on Empowerment of Women)-इस समिति की स्थापना 29 प्रेत, 1997 को की गयी थी। इस समिति में 30 सदस्य होते हैं, जिनमें 20 सदस्य लोक सभा से और 10 सदस्य राज्य सभा से लिए जाते हैं। यह समिति राष्ट्रीय महिला आयोग की रिपोर्ट पर विचार करती है और केन्द्र सरकार द्वारा महिलाओं की सुरक्षा, सम्मान एवं समानता स्थापित करने के लिए उठाए गए उपायों की समीक्षा करती है।

5. सदन के रोज़-मर्रा के कार्यों से सम्बन्धित समितियाँ (Committees Relating to the Day-to-Day Business of the House)- इस श्रेणी में निम्नलिखित संसदीय समितियाँ शामिल हैं-

(i) कार्य-मन्त्रणा समिति (Business Advisory Committee)- इस समिति का गठन लोक सभा के कार्यक्रम को तय करने के लिए किया जाता है। इस समिति का गठन लोक सभा चुनावों के तुरंत बाद किया जाता है। इसमें लोक सभा अध्यक्ष द्वारा मनोनीत 15 सदस्य शामिल होते हैं और लोक सभा अध्यक्ष स्वयं इसका सभापति होता है। यह समिति सदन का कार्यक्रम निश्चित करती है। सदन के नेता और विरोधी दल के नेता की सलाह से लोक सभा अध्यक्ष सदन का कार्यक्रम तैयार करता है। राज्य सभा की अपनी अलग कार्य-मन्त्रणा समिति होती है, जिसमें राज्य सभा के सभापति के अतिरिक्त 10 सदस्य शामिल होते हैं। यह समिति भी अपने सदन का कार्यक्रम तय करती है।

(ii) निजी सदस्य विधेयकों एवं प्रस्तावों पर समिति (Committee on Private Members Bills and Resolutions)- यह लोक सभा की एक विशेष समिति होती है। इस समिति में 15 सदस्य होते हैं, जिन्हें लोक सभा अध्यक्ष मनोनीत करता है। इसका कार्यकाल एक वर्ष होता है, जो प्रत्येक वर्ष 1 मई को शुरू और अगले वर्ष 30 अप्रैल को समाप्त होता है। लोक सभा उपाध्यक्ष को इस समिति में अवश्य शामिल किया जाता है। वही इस समिति का सभापति होता है। सदन में गैर-सरकारी

सदस्य जो विधेयक प्रस्तुत करते हैं, यह समिति उन पर विचार करके उन विधेयकों पर बहस के लिए समय निश्चित करती है।
(iii) नियम समिति (Rules Committee)- इस समिति में 15 सदस्य होते हैं, जिनमें लोक सभा अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष भी शामिल होते हैं। इसके सदस्यों को लोक सभा अध्यक्ष मनोनीत करता है। वह स्वयं इस समिति का सभापति होता है। यह समिति सदन के कार्य-संचालन संबंधित नियमों एवं प्रक्रिया पर विचार-विमर्श करके इनमें संशोधन या परिवर्तन का सुझाव देती है। राज्य सभा की नियम समिति भी लोक सभा की नियम समिति जैसे ही हैं।

(iv) सदन की बैठकों से अनुपस्थित रहने वाले सदस्यों पर समिति (Committee on Absence of Members from Sittings of the House)- यह लोक सभा की विशेष समिति है। इस समिति में 15 सदस्य होते हैं, जिनको लोक सभा का अध्यक्ष एक वर्ष के लिए मनोनीत करता है। यह समिति सदन से अनुपस्थित रहने वाले सदस्यों को छुट्टी के प्रार्थना-पत्रों पर विचार करती है। यह उन सदस्यों के मामलों पर विचार करती है, जो लोक सभा अध्यक्ष की अनुमति के बिना 60 दिन या इससे अधिक समय से अनुपस्थित चल रहे होते हैं।

6. गृह-व्यवस्था समितियाँ (House-Keeping Committees)-इस श्रेणी में निम्नलिखित संसदीय समितियों आती है.

(i) सामान्य प्रयोजन समिति (General Purposes Committee)- इस समिति की स्थापना नवम्बर, 1954 में को गयी थी। इस समिति में 20 सदस्य होते हैं। इस समिति में लोक सभा अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं विभिन्न दलों के नेता सम्मिलित होते हैं। यह समिति सदन के संगठन एवं कार्यप्रणाली में सुधार करने पर विचार करती है और इस संबंध में लोक सभा अध्यक्ष को अपने सुझाव देती है। यह समिति उन विषयों पर विचार करती हैं, जो अन्य समितियों के क्षेत्राधिकार में नहीं आते हैं; जैसे संसद के कार्यों के लिए अधिक स्थान या बिल्डिंग आदि का प्रबंध करना, संसद में दर्शकों को आज्ञा देने-संबंधी विषय आदि।

(ii) संसद सदस्यों के वेतन एवं भत्तों पर संयुक्त समिति (Joint Committee on Salaries and Allowances of Members of Parliament)- इस समिति की स्थापना 'संसद सदस्यों के वेतन, भत्ते एवं पेंशन अधिनियम', 1954 के तहत की गयी थी। इस समिति में 15 सदस्य होते हैं, जिनमें से 10 सदस्य लोक सभा के और पाँच सदस्य राज्य सभा के होते हैं। लोक सभा के सदस्य लोक सभा अध्यक्ष द्वारा और राज्य सभा के सदस्य राज्य सभा के सभापति द्वारा एक वर्ष के लिए मनोनीत किए जाते हैं। यह समिति सरकार से परामर्श करके संसद सदस्यों के वेतन, भत्तों एवं अन्य सुविधाओं-संबंधी अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करती हैं।

(iii) आवास समिति (House Committee)-संसद के दोनों सदनों की अलग-अलग आवास समितियाँ होती हैं। लोक सभा की आवास समिति में 12 सदस्य होते हैं। ये समितियाँ अपने-अपने सदस्यों के मकानों और उनके मकानों, एवं छात्रावासों में प्रदान की जाने वाली अन्य सुविधाओं; जैसे-भोजन एवं चिकित्सा सहायता आदि काम संभालती है।

(iv) पुस्तकालय समिति (Library Committee)-यह समिति संसद के पुस्तकालय-सम्बन्धी सभी मामलों को देखती है और सदस्यों की पुस्तकालय सेवाओं को उपयोग करने में सहायता करती है। इस समिति में नौ सदस्य होते हैं, जिनमें से छह सदस्य लोक सभा द्वारा और तीन सदस्य राज्य सभा द्वारा मनोनीत किए जाते हैं।

2. तदर्थ समितियाँ (Ad-hoc Committees)— तदर्थ समितियां , वे समितियां होती है, जिनका गठन किसी विशेष उद्देश्य के लिए किया जाता है और जैसे ही इनका कार्य पूरा हो जाता है, अर्थात ये अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर देती हैं, इन्हें भंग कर दिया जाता है। तदर्थ समिति दो प्रकार की होती हैं-

(i) प्रवर समितियाँ (Select Committees) - स्थायी समितियों के अतिरिक्त, संसद के दोनों सदनों द्वारा विभिन्न विधेयकों पर विचार के लिए प्रवर समितियाँ गठित की जाती हैं। किसी सदन में विधेयक पर विचार करने के पश्चात् उसे सदन की प्रथा समिति अथवा दोनों सदनों की संयुक्त प्रवर समिति के पास भेजा जाता है। सदन की प्रवर समिति में 30- 35 सदस्य तक होते हैं, जब कि दोनों सदनों की संयुक्त प्रवर समिति में 45 सदस्य (30 लोक सभा के और 15 राज्य सभा के) होते हैं। ये समितियां अस्थायी समितियाँ होती है। किसी विधेयक पर रिपोर्ट देने के बाद ये समितियाँ भंग हो जाती हैं। सदन किसी प्रवर समिति की स्थापना करते समय इसको विधेयक पर रिपोर्ट देने का समय निश्चित कर देता है।

(ii) जाँच-पड़ताल समितियाँ (Inquiry Committees)- वे समितियों, जो समय-समय पर किसी विशेष मामले की जाँच-पड़ताल के लिए गठित की जाती है, जाँच-पड़ताल समितियाँ कहलाती हैं। इन समितियों का गठन प तो इस विषय में संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित प्रस्ताव के द्वारा या फिर लोक सभा अध्यक्ष राज्य सभा के सभापति के द्वारा किया जाता है। बोफोर्स घोटाले एवं 2-जो स्पेक्ट्रम घोटाले की जाँच करने के लिए जिन संयुक्त समितियों का गठन किया गया था, वे इसी श्रेणी में आती हैं।

संसदीय समितियाँ की रिपोर्ट बाध्यकारी नहीं होती हैं, हालाँकि इनकी अधिकांश सिफारिशें संसद द्वारा स्वीकार कर सो जाती हैं और सरकार द्वारा लागू कर दी जाती हैं। यदि किसी समिति की रिपोर्ट को लेकर समिति एवं सरकार में मतभेद होता है और इसका कोई समाधान नहीं होता है, तो मामला अन्तिम निर्णय के लिए संसद को सौंपा जाता है। ऐसे में, संसद सरकार के वैकल्पिक सुझावों पर विचार करती है। भारत में संसदीय समितियाँ सरकार को संसद के प्रति उत्तरदायी बनाने का कार्य अवश्य ही करती हैं।

आलोचनात्मक मूल्याँकन (Critical Appraisal)- संसद अपना अधिकांश कार्य अपनी समितियों के माध्यम से करती है। संसदीय समितियाँ ही संसद को चलाती हैं, इसके बावजूद भी संसदीय समितियों में अनेक दोष हैं; जैसे-

1. दलीय राजनीति से प्रभावित (Influenced by Party Politics)- संसदीय समितियों का मुख्य दोष यह है कि इन समितियों के सदस्य दलीय आधार पर नियुक्त किए जाते हैं और नियुक्त किए जाने बाद भी ये सदस्य दलीय आधार पर ही कार्य करते हैं। समितियों के गठन में दलीय प्रभाव इतना हावी होता है कि योग्य सदस्य इन समितियों में नियुक्त नहीं हो पाते हैं। इन समितियों में होने वाला वाद-विवाद भी दलीय वाद-विवाद बन जाता है।

2. सदस्यों का अल्प कार्यकाल (Short Tenure of the Members)- संसदीय समितियों के सदस्यों का कार्यकाल बहुत कम होता है, क्योंकि इनके अधिकतर सदस्य केवल एक वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते हैं। जब सदस्यों को समिति को कार्य-प्रणाली समझ आने लगती है और वे अपने कार्य में रुचि लेने लगते हैं, तो उन्हें पद से हटा दिया जाता है और उनके स्थान पर नए सदस्यों को नियुक्त कर दिया जाता है।

3. स्थायी समितियों का अभाव (Lack of Permanent Committees) भारत में स्थायी संसदीय समितियों का अभाव है। यहां ऐसी कोई स्थायी समिति नहीं है, जिसका कार्य सदन में प्रस्तुत किए जाने वाले विधेयकों पर विचार करना हो। संसद किसी विधेयक को प्रवर समिति को भेजे बिना भी पारित कर सकती है। यह बात सदन को इच्छा पर निर्भर करती है कि किसी विधेयक को प्रवर समिति के पास भेजा जाए या न भेजा जाए।

4. वित्तीय समितियों की रिपोटों पर विचार-विमर्श नहीं (No Discussion on the Reports of Finance Committees)- संसद की तीन वित्तीय समितियाँ हैं और ये समितियाँ कार्यपालिका पर संसदीय नियंत्रण का प्रभावी साधन पी है, किन्तु समय के अभाव के कारण ये समितियाँ अपना कार्य ठीक से नहीं कर पाती हैं। ये तीनों समितियाँ अपनी रिपोर्ट संसर को भेजती हैं. किन्तु इनकी रिपोटों पर विचार करने के लिए संसद के पास समय ही नहीं होता है।

5. समितियों के संगठन में सदन की विशेष भूमिका नहीं (No Special Role of a House in the Formation of Committees) - संसदीय समितियों के गठन में किसी भी सदन की कोई विशेष भूमिका नहीं होती है, क्योंकि अधिकांश समितियों के सदस्य सदनों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। अनेक समितियों का सभापतित्व भी सदन का पीठासीन अधिकारी ही करता है। समितियों एवं सदन के मध्य मात्र इतना संबंध होता है कि ये समितियाँ अपना प्रतिवेदन सदन के समक्ष रखती हैं।

6. बैठकों में सदस्यों की कम रुचि (Less Interest of the Members in the Meetings)- प्रायः संसद समितियों की बैठकों में संसद सदस्य कम दिलचस्पी रखते हैं। लगभग एक-तिहाई सदस्य इन समितियों की बैठकों में भाग नहीं लेते हैं और लगभग एक-तिहाई सदस्य समिति की बैठकों में केवल अपनी नाममात्र की उपस्थिति दर्ज कराने के लिए शामिल होते हैं।

7. समितियों की कार्यवाहियों का प्रकाशित न होना (Proceedings of the Committee are not published)--

संसदीय समितियों की कार्यवाही गुप्त होनी चाहिए अथवा खुली, यह वाद-विवाद का एक विषय है। इन समितियों की कार्यवाही को गुप्त रखने के कारण आम जनता समितियों की कार्यवाही में रुचि नहीं लेती, क्योंकि उसको इन समितियों के बारे में कोई ज्ञान ही नहीं होता है। यह माना जा सकता है कि समितियों की कार्यवाही का संचालन गुप्त रूप से किया जाए, किन्तु इनकी कार्यवाहों के संबंध में प्रेस को अवश्य ही कुछ जानकारी होनी चाहिए, ताकि आम जनता को समितियों के महत्व का पता चल सके।

8. समितियों की सहायता के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति नहीं (No Appointment of Experts to Assist Committees)— कुछ समितियाँ ऐसी है, जिनका संबंध तकनीकी विषयों से है। ऐसी समितियाँ तभी कुशलतापूर्वक कार्य कर सकती हैं, जब इन्हें अपने-अपने विषय से संबंधित विशेषज्ञों (Experts) की सहायता प्राप्त हो जाए। सार्वजनिक उपक्रम समिति तब तक अपना काम सफलतापूर्वक नहीं कर सकती है, जब तक कि विभिन्न सार्वजनिक उपक्रमों से संबंधित विशेषज्ञ इस समिति की सहायता न करें, लेकिन इनकी सहायता के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति नहीं होती है।

9. परामर्शदात्री समितियों में सुधार (Reform in Consultative Committees) भारतीय संसद की अनेक परामर्शदात्री समितियाँ हैं, जो भिन्न-भिन्न मंत्रालयों से संबंधित हैं। इन समितियों की अध्यक्षता संबंधित मंत्री करता है औ इन समितियों में संसद द्वारा मनोनीत कोई भी सदस्य नहीं होता है। इसी कारण इन्हें संसदीय समितियाँ नहीं कहा जा सकत है। इन समितियों की बैठक संबंधित मंत्री की इच्छा से बुलायी जाती है, अतः इनकी बैठकें बहुत कम होती हैं। इन समितियं के अस्तित्व को कायम रखने के लिए इनमें सुधार किए जाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)- भारत में संसदीय समितियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है, इनकी कार्यप्रणाली में सुधार किए जाने की आवश्यकता है ताकि भारतीय लोकतंत्र में संसद अपनी प्रभावशाली भूमिका निभा सके।

लोक सभा अध्यक्ष

(Speaker of Lok Sabha)

लोक सभा संसद का निम्न, किन्तु जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदन है। वास्तव में लोक सभा ही संसद की शक्तियों का प्रयोग करती है। लोक सभा की बैठकों की अध्यक्षता इसके अध्यक्ष (Speaker) द्वारा की जाती है, जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 93 में किया गया है। लोक सभा अपने अध्यक्ष के नेतृत्व में कार्य करती है। लोक सभा के भंग होने पर भी अध्यक्ष नई लोक सभा के अस्तित्व में आने तक कार्यरत् रहता है।

चुनाव (Election)-लोक सभा अपने सदस्यों में से एक को अध्यक्ष और एक को उपाध्यक्ष चुनती है। लोक स आम चुनावों के पश्चात् अपनी पहली बैठक में इन दोनों पदाधिकारियों का चुनाव करती है। संविधान के **अनुच्छेद 93 के अनुसा**र, "लोक सभा यथाशीघ्र सदन के दो सदस्यों को अपना अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष चुनेगी।"

अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चुनाव या तो सर्वसम्मति से किया जाता है या फिर मतदान करवाया जाता है। 18वीं लोकसभा में श्री ओम बिरला जी को अध्यक्ष चुना गया है।

कार्यकाल (Tenure) - लोक सभा के समान लोक सभा अध्यक्ष का कार्यकाल पांच वर्ष है, किन्तु लोक सभा भंग होने पर भी अध्यक्ष तब तक अपने पद पर बना रहता है, जब तक नई लोक सभा अपने अध्यक्ष का चुनाव न कर ले। यदि अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष लोक सभा के सदस्य न रहें, तो उन्हें अपना पद त्यागना पड़ता है। अनुच्छेद 94 के अनुसार लोक सभा सभी सदस्यों के बहुमत से प्रस्ताव पारित करके लोक सभा अध्यक्ष को पांच वर्ष की अवधि से पहले भी पद से हटा सकती है। इसके लिए अध्यक्ष को 14 दिन पहले इस आशय का नोटिस देना जरूरी है। जब लोक सभा अध्यक्ष के विरुद्ध इस तरह के प्रस्ताव पर सदन में चर्चा हो रही होती है, तो उस समय बैठक की अध्यक्षता उपाध्यक्ष करता है। लोक सभा अध्यक्ष के विरूद्ध कई बार सदन में 'अविश्वास प्रस्ताव' प्रस्तुत किए गए।, किन्तु अभी तक एक बार भी उसके विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित नहीं हो पाया।

वेतन एवं भत्ते (Salary and Allowances) - लोक सभा अध्यक्ष का पद अति महत्त्वपूर्ण पद है। लोकसभा अध्यक्ष को 4,50,000 लाख रुपए मासिक वेतन मिलता है । इसके अलावा, उसको दैनिक भत्ता और रहने के लिए निःशुल्क आवास की सुविधाएं भी प्राप्त हैं। लोक सभा अध्यक्ष का वेतन भारत की संचित निधि से दिया जाता है।

शक्तियाँ एवं कार्य (Powers and Functions)

लोक सभा अध्यक्ष को अनेक कार्य करने पड़ते हैं। उसको शक्तियाँ और कार्यों को निम्नलिखित श्रेणियों में रखा जा सकता है-

1. प्रशासकीय शक्तियाँ (Administrative Powers)- लोक सभा अध्यक्ष को निम्नलिखित प्रशासकीय शक्तियां प्राप्त हैं-

(i) वह सदन की कार्यवाहियों एवं अभिलेखों की सुरक्षा का प्रबंध करता है।

(ii) वह लोक सभा में दर्शकों एवं प्रेस प्रतिनिधियों के प्रवेश को नियंत्रित करता है।

(iii) सदन में कार्य करने वाले सभी अधिकारी एवं कर्मचारी उसके अधीन कार्य करते हैं।

(iv) वह सदन के सदस्यों को प्राप्त विशेषाधिकारों की रक्षा करता है।

(v) वह सदन की बैठकों के लिए, विभिन्न समितियों के कार्य-संचालन के लिए और सदन के सदस्यों के लिए उपयुक्त स्थानों की व्यवस्था करता है।

2. नियन्त्रणात्मक शक्तियाँ (Regulatory Powers)- लोक सभा अध्यक्ष को निम्नलिखित नियंत्रणात्मक शक्तियां प्राप्त हैं-

(i) यह सदन के नेता की सलाह पर सदन की गुप्त बैठकों की आज्ञा देता है।

(ii) वह यह सुनिश्चित करता है कि सदन की गणपूर्ति के लिए आवश्यक संख्या में सदस्य उपस्थित है या नहीं।

(iii) वह सदन में सदस्यों को उनकी मातृ-भाषा में बोलने की आज्ञा देता है।

(iv) वह सदन में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखता है।

(v) वह सदन के नेता से सलाह करके सदन का कार्यक्रम निर्धारित करता है।

(vi) यदि किसी प्रस्ताव पर बराबर मत आ जाएं तो वह उस पर अपना निर्णायक मत (Casting Vote) डाल सकता है।

(vii) वह सदन के सदस्यों की जानकारी के लिए किसी विशेष महत्व के मामले पर सदन को सम्बोधित करता है।

(viii) जब किसी विधेयक पर वाद-विवाद समाप्त हो जाता है, तो वह उस पर मतदान करवाता है; मतों की गिनती करता है और परिणाम घोषित करता है।

(ix) वह दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता करता है।

3. न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)- लोक सभा अध्यक्ष को कुछ न्यायिक कार्य भी करने होते हैं; जैसे-

(i) वह किसी भी विषय की महत्ता पर अन्तिम फैसला देता है।

(ii) सदन में भिन्न प्रकार के नोटिसों, प्रश्नों, संशोधनों एवं स्थगन प्रस्तावों पर उसका फैसला अन्तिम होता है।

(iii) वह किसी विषय पर निर्णय लेने के लिए किसी भी सरकारी अधिकारी से कोई भी सूचना प्राप्त कर सकता है।

(iv) वह नियम-संबंधी आपत्तियों (Points of Order) पर फैसला देता है।

(v) वह अनुच्छेद 110 के अन्तर्गत विवाट होने पर धन विधेयकों को प्रमाणित करता है।

4. काट-छांट-संबंधी शक्तियाँ (Censoring Powers)- लोक सभा अध्यक्ष के पास कई कांट-छांट-संबंधी शक्तियों भी हैं: जैसे-

(i) यदि कोई सदस्य सदन की कार्यवाही में बाधा डालता है, तो वह उसे निलम्बित कर सकता है।

(ii) वह सदन की कार्यवाही से ऐसे शब्दों को निकाल देने का आदेश दे सकता है, जो उसके मतानुसार अशिष्ट, असंगत, अनुचित एवं अपमानजनक हों। वह सदस्यों को अपमानजनक शब्द वापस लेने के लिए भी कह सकता है।

5. निरीक्षणात्मक शक्तियाँ (Supervisory Powers)- लोक सभा अध्यक्ष के पास निरीक्षण संबंधी शक्तियाँ भी है: जैसे-

(i) वह सदन में भिन्न-भिन्न प्रकार की समितियों के कार्य का निरीक्षण करता है।

(ii) वह सदन की कुछ समितियों का सभापतित्व करता है। इनमें नियम समिति (Rules Committee), कार्य-मन्त्रणा समिति (Business Advisory Committee), सामान्य प्रयोजन समिति (General Purposes Committee) आदि उल्लेखनीय है।

(ii) वह कुछ समितियों के सभापतियों एवं सदस्यों को मनोनीत करता है। इनमें निजी सदस्य विधेयक समिति (Private Members' Bill Committee), याचिका समिति (Committee on Petitions) विशेषाधिकार समिति (Committee on Privileges), सरकारी आश्वासन समिति (Committee on Government Assurance) आदि उल्लेखनीय हैं।

6. पुलिस-संबंधी शक्तियाँ (Police Powers) अपने अधिकारों को उचित प्रकार से लागू करने के लिए लोक सभा अध्यक्ष को कुछ पुलिस शक्तियाँ भी प्राप्त हैं; जैसे-

(i) वह आवश्यकता पड़ने पर दर्शकों एवं प्रेस प्रतिनिधियों को सदन से बाहर जाने का आदेश दे सकता है।

(ii) यदि कोई सदस्य सदन की कार्यवाही में बाधा डालता है और उसके कहने पर वह सदन से बाहर नहीं जाता है. तो वह उस सदस्य को जबरन बाहर निकलवा सकता है।

(iii) सदन में अनुशासन एवं व्यवस्था की जिम्मेदारी उसी की होती है।

7. दल-बदल संबंधी शक्तियाँ (Powers regarding Anti-defection)- लोक सभा अध्यक्ष 52वें संशोधन अधिनियम (1985) के अन्तर्गत दल-बदल संबंधी मामले तय करता है। एक जून, 1999 को लोक सभा अध्यक्ष शिवराज पाटिल ने जनता दल (अ) के शेष 16 सदस्यों को एक गुट के रूप में मान्यता दी थी। आगे चलकर 91वें संशोधन अधिनियम (2003) द्वारा 1/3 सदस्यों की व्यवस्था को अवैध कर दिया गया और केवल संपूर्ण दल के विलय को मान्यता दी गयी। वह दल-बदल करने वाले सदस्यों की सदस्यता रद्द कर सकता है।

अध्यक्ष की स्थिति (Position of the Speaker)- भारत में लोक सभा अध्यक्ष का पद अति महत्वपूर्ण एवं सम्मानजनक पद है। यह सत्य है कि भारत में लोक सभा अध्यक्ष का पद इतना सम्मानजनक नहीं है, जितना कि ब्रिटेन की कॉमन संभा (House of Commons) के अध्यक्ष का। फिर भी, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि लोक सभा के अध्यक्ष का पद बहुत प्रभावशाली एवं सम्मानित है। वस्तुतः लोक सभा अध्यक्ष की स्थिति तभी महत्वपूर्ण एवं सम्मानजनक हो सकती है, जब इस पद पर आसीन व्यक्ति अपने दल से संबंध न रखे। ब्रिटेन में जब कॉमन सभा के किसी सदस्य को अध्यक्ष के पद पर चुन लिया जाता है, तो वह अपने दल से संबंध तोड़ देता है। लोक सभा अध्यक्ष सम्पूर्ण सदन का प्रतिनिधि होता है. इसलिए उसको दलगत राजनीति में कोई रुचि नहीं रखनी चाहिए। वस्तुतः किसी पद का महत्व पद से संबंधित शक्तियों पर इतना निर्भर

नहीं होता है, जितना कि उस पद पर आसीन व्यक्ति के व्यक्तित्व पर। यदि लोक सभा अध्यक्ष उच्च विचारों एवं उच्च चरित्र वाला व्यक्ति होगा, तो उसे ब्रिटिश कॉमन सभा के अध्यक्ष जैसा सम्मान अवश्य मिलेगा।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. "राज्य सभा न केवल दूसरा सदन, वरन् दूसरे दर्जे का सदन भी है।" इस कथन के संदर्भ में राज्य सभा के पक्ष एवं विपक्ष में अपने तर्क दें। ("Rajya Sabha is not only a second chamber but also a secondary chamber." In the light of this statement give your arguments in favour and against Rajya Sabha.)

2. राज्य सभा की संरचना, शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन कीजिए। (Describe the composition, powers and functions of Rajya Sabha.)

3. भारतीय संसद की रचना एवं शक्तियों का वर्णन कीजिए। (Describe the composition and powers of the Indian Parliament.)

4. लोक सभा के अध्यक्ष को शक्तियों एवं स्थिति का वर्णन करो। (Describe the powers and position of the Speaker of Lok Sabha.)

5. लोक सभा एवं राज्य सभा की शक्तियों की तुलना कीजिए और अन्तर बताइए।

(Compare and contrast the powers of Lok Sabha with those of Rajya Sabha.)

6. लोक सभा की रचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।

(Discuss the composition and functions of Lok Sabha.)

7. भारतीय संसद की शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन कीजिए। क्या यह एक सम्प्रभुतासम्पन्न संस्था है? (Discuss the powers and functions of the Indian Parliament. Is it a sovereign body?)

8. भारतीय संसद की प्रतिष्ठा में पतन के कारणों का वर्णन कीजिए।

(Describe the causes of the decline in the prestige of the Indian Parliament.)

9. भारतीय संसद की कार्य प्रणाली के दोषों का वर्णन कीजिए।

(Describe the defects in the workings of the Indian Parliament.)

10. लोक सभा की संरचना, शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन करें।

राज्य विधानमण्डल [State Legislature]

भारतीय संविधान के द्वारा प्रत्येक राज्य के लिए एक विधानमंडल की व्यवस्था की गयी है, जिसमें राज्यपाल, विधान परिषद (Legislative Council) एवं विधान सभा (Legislative Assembly) शामिल होते हैं। वर्तमान में भारत में अधिकांश राज्यों में एक-सदनीय विधानमंडल हैं। इस समय 28 राज्यों में से केवल छः राज्यों— आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, कर्नाटक,

महाराष्ट्र एवं तेलंगाना में द्वि-सदनीय विधानमंडल हैं अर्थात केवल इन छः राज्यों में ही विधान परिषद एवं विधान सभा मौजूद हैं। बाकी राज्यों में अकेली विधान सभाएँ हैं। यहाँ राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों- विधान सभा एवं विधान परिषद का विवरण प्रस्तुत है-

विधान सभा (Legislative Assembly)

गठन (Composition)- विधान सभा को जनता का सदन कहा जाता है। इस सदन के सदस्यों की संख्या राज्य की जनसंख्या पर निर्भर करती है। संविधान के अनुसार किसी राज्य की विधान सभा की अधिकतम संख्या 500 एवं न्यूनतम संख्या 60 हो सकती है। फिर भी, सिक्किम विधान सभा की सदस्य संख्या 32, मिजोरम विधान सभा की सदस्य-संख्या 30 और गोवा विधान सभा की सदस्य संख्या 40 है, जब कि उत्तर प्रदेश विधान सभा को सदस्य संख्या 403 है। उल्लेखनीय है कि सभी विधान सभाओं के सदस्यों की संख्या में 2026 तक कोई वृद्धि नहीं की जाएगी। वर्तमान में हरियाणा विधान सभा की सदस्य संख्या 90 है।

योग्यताएँ (Qualification)- विधान सभा का सदस्य बनने के लिए उम्मीदवार के पास निम्नलिखित योगयताएँ होनी चाहिए-

1. वह भारत का नागरिक हो।

2. वह कम-से-कम 25 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।

3. वह केन्द्र सरकार या राज्य सरकार के अधीन लाभ के किसी पद पर आसीन न हो।

4. वह न्यायालय द्वारा पागल या दिवालिया घोषित न किया गया हो।

5. वह संसद द्वारा निर्धारित अन्य योग्यताएँ रखता हो।

कार्यकाल (Tenure)- विधान सभा का कार्यकाल पाँच वर्ष होता है, किन्तु, मुख्य मन्त्री की सिफारिश पर राज्यपाल द्वारा इसे पाँच वर्ष पूरा होने से पहले भी भंग किया जा सकता है।

चुनाव (Election)- विधान सभा के सदस्यों का चुनाव सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर राज्य के मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इसके लिए सम्पूर्ण राज्य को अनेक निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त किया जात है और प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से स्थानीय मतदाताओं द्वारा एक व्यक्ति (उम्मीदवार) का चुनाव किया जाता है। अनुच्छे 333 के अनुसार यदि राज्यपाल को ऐसा लगे कि एंग्लो-इण्डियन समुदाय को विधान सभा में समुचित प्रतिनिधित्व नहाँ मिला है , तो वह इस समुदाय के एक व्यक्ति को विधान सभा में मनोनीत कर सकता था, किन्तु दिसम्बर, 2019 में यह व्यवस्था समाप्त कर दी गयी है।

अधिवेशन (Session)- विधान सभा का अधिवेशन राज्यपाल द्वारा बुलाया जाता है। संविधान के अनुसार विधान सभा के दो अधिवेशनों के मध्य छः महीने से अधिक का अन्तराल नहीं होना चाहिए । जरूरत पड़ने पर राज्यपाल विधान सभा का विशेष अधिवेशन भी बुला सकता है।

गणपूर्ति (Quorum)- विधान सभा की कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए यह आवश्यक है कि इसकी कुल सदस्य-संख्या का 1/10वां भाग सदन में मौजूद हो।

अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष (Speaker and Deputy Speaker)- विधान सभा की कार्यवाही के संचालन के लिए विधान सभा के सदस्य अपने में से एक अध्यक्ष एवं एक उपाध्यक्ष चुनते हैं। यह कार्य नयी विधान सभा की पहली बैठक में किया जाता है। विधान सभा के अध्यक्ष का यह कार्य होता है कि वह इस सदन की कार्यवाही का सुचारू रूप से संचालन करें । अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसके कार्य उपाध्यक्ष द्वारा किए जाते हैं।

विधान परिषद (Legislative Council)

गठन (Composition)- राज्य विधानमंडल के ऊपरी सदन को 'विधान परिषद्' (Legislative Council) कहा कता है। यह सदन राज्यों में अल्पसंख्यकों एवं विशेष हितों के लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। भारत में इस समय केवल 6 राज्यों (उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, महाराष्ट्र, एवं तेलंगाना) में ही विधान परिषद् कार्यरत् हैं। संविधान के अनुच्छेद 169 के अनुसार कोई भी राज्य, विधान सभा के विशेष बहुमत से एक प्रस्ताव पारित करके विधान परिषद् को स्थापित करने अथवा मौजूदा विधान सभा को समाप्त करने की मांग कर सकता है। इस प्रस्ताव के आधार पर संसद साधारण बहुमत से संशोधन विधेयक पारित कर सकती है। विधान परिषद् का गठन प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर किया जाता है। इसके सदस्यों की संख्या विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या के 1/3 भाग से अधिक और 40 से कम नहीं हो सकती है। विधान परिषद् के सदस्य निम्नलिखित प्रकार में चुने जाते हैं-

1. इसके 1/3 सदस्य राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं।

2. इसके 1/3 सदस्य राज्य की स्थानीय शासन संस्थाओं(पंचायत एवं नगरपालिका) के सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं।

3. इसके 1/12 सदस्य उन अध्यापकों के द्वारा चुने जाते हैं, जो राज्य के सीनियर सेकेण्डरी स्कूलों या उच्च शिक्षण संस्थाओं अर्थात् कालेजों में कम-से-कम तीन वर्षों से पढ़ा रहे हों।

4. इसके 1/12 सदस्य राज्य के उन निवासियों द्वारा चुने जाते हैं, जो भारत के किसी विश्वविद्यालय से स्नातक उपाधि-धारक हों और कम-से-कम तीन वर्ष पहले स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हों।

5. इसके शेष 1/6 सदस्य राज्यपाल उन व्यक्तियों में से मनोनीत करता है, जो साहित्य, कला, विज्ञान एवं समाज-सेवा के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त किए हों।

योग्यताएँ (Qualifications)- विधान परिषद् का सदस्य बनने के लिए उम्मीदवार के पास निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिए-

1. वह भारत का नागरिक हो।

2. उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो।

3. वह राज्य का निवासी होना चाहिए और उसका नाम राज्य की मतदाता सूची में अंकित होना चाहिए।

4. वह केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन लाभ के किसी पद पर आसीन नहीं होना चाहिए।

5. वह किसी न्यायालय द्वारा दिवालिया अथवा पागल घोषित नहीं होना चाहिए।

अवधि (Tenure)- विधान परिषद् एक स्थायी सदन होता है, इसलिए यह कभी भी भंग नहीं किया जाता है। विधान परिषद के एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष के बाद अवकाश ग्रहण करते रहते हैं और उनका स्थान नए सदस्य लेते रहते हैं। इसके प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल छः वर्ष का होता है। उसको दोबारा भी चुना जा सकता है।

अधिवेशन (Session) - राज्यपाल मुख्य मंत्री के परामर्श से विधान सभा के साथ-साथ विधान परिषद् का अधिवेशन भी बुलाता है। एक वर्ष में इसका दो बार अधिवेशन बुलाना आवश्यक है क्योंकि इसके दो अधिवेशनों के बीच छः महीने में अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर राज्यपाल द्वारा इसका विशेष अधिवेशन भी बुलाया जा सकता है।

गणपूर्ति (Quorum) - विधान परिषद् की कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए इसके कुल सदस्यों का 1/10वां भाग उपस्थित होना आवश्यक है। स्पष्ट है कि गणपूर्ति के अभाव में इसकी कार्यवाही प्रारंभ नहीं की जा सकती है।

सभापति एवं उप-सभापति (Chairman and Deputy Chairman)- विधान परिषद् के सदस्य अपने में से एक सभापति

एवं एक उप-सभापति चुनते हैं। सभापति सदन की कार्यवाही को सुचारू रूप से चलाता है। सभापति की अनुपस्थिति में उसके कार्य उप-सभापति द्वारा किए जाते हैं।

राज्य विधानमण्डल के कार्य
(Functions of State Legislature)

राज्य विधानमंडल के कार्यों का वर्णन इस प्रकार निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है-

1. वैधानिक कार्य (Legislative Functions)- राज्य विधानमण्डल का प्रमुख कार्य कानून बनाना है। राज्य विधानमण्डल 'राज्य सूची' में दिए गए 66 विषयों पर कानून बनाता है। राज्य विधानमण्डल 'समवर्ती सूची' में शामिल 47 विषयों पर भी कानून बना सकता है, किन्तु इसके द्वारा निर्मित कानून एवं संसद द्वारा निर्मित कानून में टकराव होर पर संसद का कानून ही मान्य होता है। साधारण विधेयक अर्थात गैर-धन विधेयक राज्य विधानमण्डल के किसी भी सदर में प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि कोई साधारण विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत किया जाता है, तो उसका विधान सभा द्वारा पारित होना अनिवार्य है। जब विधेयक विधान सभा द्वारा पारित हो जाने के बाद विधान परिषद में भेजा जाता है, तो अनुच्छेद 197(1) के अनुसार विधान परिषद उसको अधिक-से-अधिक तीन महीने तक रोके रख सकती है। यदि वह उस विधेयक को पारित कर देती है, तो उसे राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। यदि वह तीन महीने तक उस पर कोई निर्णय नहीं लेती है या उसको अस्वीकार कर देती है या फिर उसमें ऐसे संशोधन कर देती है, जो विधान सभा को स्वीकार न हों, और विधान सभा उसको पुनःपारित करके विधान परिषद के पास भेज देती है, तो अनुच्छेद 197 (2) के अंतर्गत विधान परिषद उस विधेयक को एक महीने तक रोकने के सिवा कुछ नहीं कर सकती है। यदि इस एक महीने की अवधि में वह उसे पारित नहीं करती है य उसमें ऐसे संशोधन कर देती है, जो विधान सभा को स्वीकार न हों, तो भी वह विधेयक राज्य विधानमण्डल के दोनों सदने द्वा पारित मान लिया जाता है, क्योंकि संविधान में राज्य विधानमण्डल के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को व्यवस्था नहीं की गयी है।

2. वित्तीय कार्य (Financial Functions)- राज्य के वित्त पर विधानमण्डल का नियन्त्रण होता है। सभी धन विधेयक एवं बजट वित्त मन्त्री के द्वारा तैयार कराए जाते हैं। कोई धन विधेयक विधान सभा में ही प्रस्तुत किया जा सकड है। जब धन विधेयक विधान सभा द्वारा पारित हो जाता है, तो यह विधान परिषद् में भेजा जाता है (अगर उस राज्य में विधान परिषद् हो)। विधान परिषद धन विधेयक को अधिक से अधिक 14 दिन तक रोक सकती है। यदि यह 14 दिन के अन्दर किसी विधेयक को अस्वीकार कर देती है या फिर 14 दिन तक इस पर कोई निर्णय नहीं लेती है, तो भी था विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया जाता है और राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। राज्यपात को स्वीकृति के बाद विधेयक कानून बन जाता है। उल्लेखनीय है कि कोई भी धन विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति के बिन विधान सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

3. कार्यपालिका-सम्बन्धी कार्य (Executive Functions) -भारत में केन्द्र के समान राज्यों में भी संसदीय शासन प्रणाली लागू है, अतः राज्यों में भी मन्त्रि-परिषद अर्थात सरकार विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होती है। विधानमंडल के सदान कार्यपालिका के सदस्यों अर्थात मन्त्रियों से प्रश्न पूछते हैं; उनकी आलोचना करते हैं और कभी-कभी उनका बहिष्कार भी कर देते हैं। इस प्रकार ये सदस्य कार्यपालिका पर अपना दबाव बनाए रखते हैं। संसदीय प्रणाली के तहत कार्यपालिका, विधानमंडत के निचले सदन अर्थात विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होती है और विधान सभा कार्यपालिका के विरुद्ध कभी भी 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके इसे पद से हटा सकती है। वस्तुतः कार्यपालिका अपने पद पर तब तक ही बनी रहती है, जब तक उसे विधान सभा का विश्वास प्राप्त होता है।

4. सवैधानिक कार्य (Constitutional Functions) - अनुच्छेद 368 के तहत संविधान में संशोधन के मामले में राज्य विधानमण्डलों को बहुत ही सीमित शक्तियाँ दी गयी हैं. क्योंकि कोई भी सशोधन विधेयक राज्य विधानमण्डल में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। केवल कुछ संशोधन विधेयकों (जिनसे राज्यों के अधिकार प्रभावित होते हैं) पर ही आधे में अधिक राज्यों के विधानमण्डलों के अनुमोदन की आवश्यकता होती है।

5. चुनाव-संबंधी कार्य (Electoral Functions)- राज्य विधानमण्डल को कुछ चुनावी कार्य भी करने होते हैं।

इसके चुनाव-संबंधी प्रमुख कार्य इस प्रकार है-

(i) विधान सभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं। (a) विधान सभा के सदस्य राज्य सभा के सदस्यों के चुनावों में भाग लेते हैं।
(ii) विधान सभा के सदस्य विधान परिषद् के एक-तिहाई सदस्यों के चुनाव में भाग लेते हैं।
(iii) विधान सभा एवं विधान परिषद् के सदस्य अपने-अपने पौठासीन अधिकारियों का चुनाव करते हैं।

6. विचार-विमर्श का मंच (Forum of Discussion)- राज्य विधानमण्डल विचार-विमर्श का एक ऐसा मंच है। जिसमें राज्य-संबंधी विभिन्न विषयों पर खुलकर चर्चा या वाद-विवाद किया जाता है। इससे स्वस्थ्य जनमत का निर्माण होता है।

स्थिति (Position)- राज्य विधानमण्डल का अपना महत्त्व है। यह 'राज्य सूची' में दिए गए सभी विषयों पर कानून बनाता है और वित्त पर प्रभावी नियन्त्रण रखता है। संसदीय प्रणाली के अनुसार राज्य विधानमण्डल का राज्य सरकार (कार्यपालिका) पर पूरा नियन्त्रण होता है, क्योंकि सरकार अपने पद पर तब तक बनी रहती है, जब तक कि उसको विधानमण्डल के निम्न सदन अर्थात विधान सभा का समर्थन प्राप्त होता है। इस दृष्टि से राज्य की शासन-प्रणाली में राज्य विधानमण्डल का महत्वूपर्ण स्थान है, किन्तु दलीय प्रणाली के चलते अब उलटे राज्य सरकार राज्य विधानमण्डल को नियन्त्रित करने लगी है। जब तक सत्तारूद दल का विधान सभा में स्पष्ट बहुमत होता है. तब तक सरकार विधान सभा को नियन्त्रित करती रहती है, लेकिन जब सरकार विधान सभा में अल्पमत में आ जाती है या वह विधान सभा का विश्वास खो बैठती है. तो उसका पतन हो जाता है।

विधान परिषद का गठन या समाप्ति (Formation or Abolition of Legislative Council)

संविधान के अनुच्छेद 169 में विधान परिषद का गठन एवं समाप्ति की व्यवस्था की गयी है। इसी कारण देश में विधान परिषदों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है। इस अनुच्छेद के अनुसार किसी राज्य की विधानसभा विशेष बहुमत अर्थात उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत और कुल सदस्यों के स्पष्ट बहुमत से प्रस्ताव पारित करके विधान परिषद की स्थापना या समाप्ति के लिए संसद से अनुरोध कर सकती है और संसद उसके अनुरोध पर साधारण बहुमत से एक प्रस्ताव पारित करके विधान परिषद की स्थापना या समाप्ति के लिए कानून बना सकती है। वह विधान सभा के अनुरोध को स्वीकार भी कर सकती है और नहीं भी कर सकती है। इसी आधार पर 1969 में पंजाब एवं पश्चिम बंगाल की विधान परिषदें समाप्त कर दी गयी थीं।

आन्ध्र प्रदेश विधान परिषद् की पुनःस्थापना (Revival of Andhra Pradesh Legislative Council)- आन्ध्र प्रदेश विधान परिषद् समाप्ति अधिनियम 1985 के द्वारा आन्ध्र प्रदेश की विधान परिषद समाप्त कर दी गयी थी। लेकिन 2005 में आन्ध्र प्रदेश की विधान सभा ने विधान परिषद की स्थापना के लिए निर्धारित बहुमत से एक प्रस्ताव पारित करके संसद के पास भेज दिया था। इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए संसद ने दिसम्बर 2005 में इस आशय का विधेयक पारित करके राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया था। इस विधेयक को 7 फरवरी 2007 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने के उपरान्त विधान परिषद के लिए मार्च 2007 में चुनाव हुए थे। वर्तमान में आंध्र प्रदेश में विधान परिषद कार्यरत है।

तमिल नाडु में विधान परिषद् की पुनःस्थापना के लिए प्रयास (Effort for Revival of Legislative Council in Tamil Nadu) - तमिल नाडु विधान परिषद समाप्ति अधिनियम, 1986, के अन्तर्गत अगस्त, 1986 में तमिल नाडु विधान परिषद समाप्त कर दी गयी थी। किन्तु अप्रैल, 2010 में तमिल नाडु विधान सभा ने निर्धारित बहुमत से प्रस्ताव पारित करके संसद के पास भेजा था, जिसमें राज्य में विधान परिषद की फिर से स्थापना की माँग की गयी थी। संसद ने मई, 2010 को इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति दे दी थी। तमिल नाडु में 78-सदस्यीय विधान परिषद का गठन किया जाना था और इसके लिए अक्टूबर, 2010 में मतदाता सूचियाँ भी तैयार कर ली गयी थीं, किन्तु इसी बीच तमिल नाडु में सत्ता-परिवर्तन हो गया और नव-नियुक्त मुख्य मन्त्री जयललिता ने विधान परिषद का गठन न किए जाने की घोषणा कर डाली। इस प्रकार तमिल नाडु में विधान परिषद के गठन का मामला अधर में लटक गया। इसी क्रम में पश्चिम बंगाल विधान सभा ने 6 जुलाई, 2021 को विधान परिषद की स्थापना के विषय में प्रस्ताव पारित करके, इसको संसद के पास भेज दिया।

स्पष्ट है कि विधान परिषद की स्थापना या समाप्ति एक राजनीतिक मामला है, क्योंकि राज्य की विधान सभाएं एव संसद अपनी-अपनों सुविधानुसार इस विषय पर निर्णय लेती हैं। यही कारण है कि लम्बे अरसे बाद भी मध्य प्रदेश में विधान परिषद की स्थापना नहीं हो पायी है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. राज्य विधानमण्डल की रचना, शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन कीजिए। powers and functions of State Legislature) (Describe the composition,

2. राज्य विधानमण्डल की शक्तियों, कार्यों एवं स्थिति पर प्रकाश डलिए। (Throw light on the powers, functions and position of State Legislature.)

3 . कोई विधान सभा मन्त्रि-परिषद पर किस प्रकार नियन्त्रण रखती है ? (How does a Legislative Assembly control the Council of Ministers?

4. विधान सभा एवं विधान परिषद की शक्तियों की तुलना कीजिए? (Make a comparision between the powers of Legislative Assembly and those of Legislative Council)

5. राज्य विधान सभा की रचना, शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन कीजिए। (Discuss the composition, powers and functions of State Legislative Assembly.)

संशोधन प्रक्रिया (Amendment Process)

परिवर्तन संसार का नियम है। समय बदलने के साथ राष्ट्र की सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाता है। ऐसे में बदलती हुई सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार प्रत्येक राज्य के संविधान में संशोधन करना आवश्यक हो जाता है। यदि संविधान में संशोधन नहीं किया जाएगा तो संविधान अप्रासंगिक हो जाता है। और राज्य का संचालन ठीक प्रकार से नहीं हो पता है। भारतीय संविधान को बनाते समय संविधान निर्माताओं ने इस बात का ध्यान रखा और इसमें संशोधन प्रक्रिया का वर्णन किया ।

संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान को न तो इतना कठोर बनाया है, जितना कि अमेरिका का संविधान और न ही इतना लवीला बनाया, जितना कि ब्रिटेन का संविधान; बल्कि इन दोनों के बीच का रास्ता अपनाया है। अन्य शब्दों में, भारतीय संविधान की संशोधन पद्धति में कठोरता एवं लचीलापन दोनों तत्वों का समावेश किया गया है।

भारतीय संविधान में संशोधन की विधियाँ (Amendment Procedures in Indian Constitution)

भारतीय संविधान में संशोधन की विधियों का उल्लेख अनुच्छेद 368 में किया गया है। अनुच्छेद 368 में संशोधन को दो विधियों का हो उल्लेख किया गया है-

(i) संसद के विशेष बहुमत द्वारा संशोधन एवं (ii) संसद के विशेष बहुमत एवं आधे से अधिक राज्यों के विधानमण्डलों के अनुमोदन द्वारा संशोधन।

किन्तु सविधान में एक अन्य विधि से भी संशोधन किया जा सकता है और वह विधि है-संसद के साधारण बहुमत द्वारा संशोधन। यह विधि अनुच्छेद 368 में वर्णित विधियों में शामिल नहीं की गयी है। वस्तुतः यह वही विधि है, जिसके द्वारा साधारण कानूनों का निर्माण किया जाता है अर्थात संविधान के कुछ भागों में संशोधन के लिए अलग से किसी विधि को नहीं अपनाया जाता है।

कुल मिलकर भारतीय संविधान में **निम्नलिखित तीन विधियों द्वा**रा संशोधन किया जा सकता है—

1. संसद के साधारण बहुमत द्वारा (by Simple Majority of Parliament)- संविधान के कुछ प्रावधानों ऐसे हैं, जो इसके संघीय स्वरूप को प्रभावित नहीं करते हैं, उनमें संसद साधारण बहुमत से संशोधन कर सकती है। अनेक विषयों में संसद साधारण बहुमत से संशोधन कर सकती हैं। इसके लिए संशोधन विधेयक संसद के दोनों सदनों (लोक सभा एवं राज्य सभा) द्वारा अलग-अलग साधारण बहुमत द्वारा पारित किया जाना चाहिए। निम्नलिखित विषयों में संसद साधारण बहुमत से संशोधन कर सकती है —
(i) नए राज्यों का निर्माण करना और उन्हें भारतीय संघ में शामिल करना
(ii) मौजूदा राज्यों का पुनर्गठन करना और उनकी सीमाओं एवं नामों में परिवर्तन करना,
(iii) नागरिकता सम्बन्धी विषय,
(iv) किसी विधान परिषद की स्थापना करना या इसे समाप्त करना,
(v) राष्ट्र भाषा-सम्बन्धी विषय,
(vi) सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का विस्तार करना और न्यायाधीशों की संख्या तय करना,
(vii) संसद सदस्यों के वेतन, भत्ते एवं अन्य सुविधाएँ तय करना.
(viii) अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े हुए वर्गों से सम्बन्धित विषय,
(ix) संसद एवं राज्य विधानमण्डलों के सदस्यों की योग्यताएँ तय करना,
(x) संघ लोक सेवा आयोग को अतिरिक्त कार्य सौंपना,
(xi) संसद के दोनों सदनों की गणपूर्ति (कोरम) से सम्बन्धित विषय,
(xii) संसद की कार्य-विधि से सम्बन्धित नियम बनाना।

2. संसद के विशेष बहुमत द्वारा (Special Majority of Parliament)- इस विधि का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 368

में किया गया है। इस विधि के द्वारा संविधान के अधिकांश अनुच्छेदों में संशोधन किया जाता है। संविधान के तीसरे भाग (मौलिक अधिकारों) और चौथे भाग (राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्तों) में इस विधि से संशोधन किया जा सकता है। संविधान के कुछ निश्चित अनुच्छेदों के सम्बन्ध में संसद में प्रस्तुत संशोधन विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग विशेष बहुमत अर्थात कुल सदस्य संख्या के स्पष्ट बहुमत और उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से पारित होना चाहिए।

3. संसद का विशेष बहुमत एवं आधे से अधिक राज्य विधानमण्डलों का अनुमोदन (Special Majority of Parliament Along with Ratification of Half of the State Legislatures)- संविधान के कुछ अनुच्छेदों में संशोधन इस विधि से किया जाता है। इस विधि का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 368 में किया गया है और यह विधि संविधान की कठोरता को दर्शाती है। इस विधि के द्वारा संविधान के उन अनुच्छेदों में संशोधन किया जाता है, जिनका संबंध संविधान के संघात्मक ढांचे से है। इस विधि के अन्तर्गत संशोधन विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग कुल सदस्य-संख्या के स्पष्ट बहुमत और उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से पारित होने के बाद राज्य विधानमण्डलों को स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। आधे-से-अधिक राज्य विधानमण्डलों के अनुमोदन करने के बाद संशोधन विधेयक पारित हुआ माना जाता है।

इस विधि से संविधान के जिन अनुच्छेदों में संशोधन किया जाता है, उनका सम्बन्ध निम्नलिखित बातों से होना चाहिए-
(i) राष्ट्रपति के निर्वाचन की विधि,
(ii) संघ अथवा राज्यों की कार्यपालिका शक्तियों का विस्तार,
(iii) संघीय न्यायपालिका (सर्वोच्च न्यायालय) से सम्बन्धित अनुच्छेद,
(iv) राज्यों के उच्च न्यायालयों से सम्बन्धित अनुच्छेद,
(v) संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व,
(vi) संघ एवं राज्यों के वैधानिक सम्बन्ध,
(vii) संघीय क्षेत्रों के लिए उच्च न्यायालय की स्थापना,
(viii) संविधान की सातवीं अनुसूची,
(ix) संविधान में संशोधन की प्रक्रिया।

राष्ट्रपति की स्वीकृति (Assent of President)- संसद द्वारा प्रत्येक संशोधन विधेयक निर्धारित बहुमत से पारित होने और यदि आवश्यक हो तो राज्य विधानमण्डलों द्वारा अनुमोदित किए जाने के बाद, राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त होने के साथ संशोधन प्रक्रिया पूरी हो जाती है। उल्लेखनीय है कि संशोधन विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलना मात्र एक औपचारिकता ही है, क्योंकि 24वें संशोधन अधिनियम (1971) के अनुसार राष्ट्रपति सशोधन विधेयक को अपनी स्वीकृति देने से इनकार नहीं कर सकता है और न ही इसे पुनर्विचार के लिए संसद को लौटा सकता है। फिर भी, प्रत्येक संशोधन विधेयक के लिए राष्ट्रपति की मंजूरी आवश्यक है।

संशोधन विधि की मुख्य विशेषताएं (Main Features of Amendment Procedure)
संशोधन विधि की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. संसद की व्यापक शक्तियाँ (Enormous Powers of Parliament)- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत संसद को संविधान में संशोधन करने की व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। भारत में संविधान में संशोधन के लिए किसी सम्मेलन (Convention) या जनमत-संग्रह (Refrendum) की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि विश्व के कुछ अन्य देशों में किया जाता है।

2. संशोधन विधेयक की संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है (Initiation of Amendment Bill in Either House of Parliament)- भारतीय संविधान के अनुसार संशोधन विधेयक राज्य विधानमण्डलों में प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं। इनकी शुरुआत राज्य विधानमण्डलों में नहीं बल्कि संसद के किसी भी सदन में की जा सकती है, किन्तु प्रत्येक

संशोधन विधेयक का दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग निर्धारित बहुमत से पारित होना आवश्यक है।

3. राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक (Essentiality of President's Assent)- प्रत्येक संशोधन विधेयक के लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है। यद्यपि संशोधन विधेयकों के लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति मात्र एक औपचारिकता है, क्योंकि 24वें संशोधन अधिनियम (1971) के तहत राष्ट्रपति संशोधन विधेयकों को अपनी स्वीकृति देने से इनकार नहीं कर सकता है।

4. संसद की संयुक्त बैठक की व्यवस्था नहीं (No Provision for Joint Sitting of Parliament) - संशोधन विधेयकों पर संसद के दोनों सदनों में गतिरोध उत्पन्न होने की स्थिति में संविधान द्वारा संसद की संयुक्त बैठक बुलाने की व्यवस्था नहीं की गयी है। यदि किसी संशोधन विधेयक को लेकर संसद के दोनों सदनों के बीच गतिरोध उत्पन्न हो जाता है, तो वह विधेयक निरस्त हो जाता है। जैसा कि 1970 में राजाओं के प्रिवी पर्स समाप्त करने सम्बन्धी संशोधन विधेयक और 1989 में पंचायत राज व्यवस्था से सम्बन्धित 64वें व 65वें संशोधन विधेयक निरस्त हो गए थे।

5. राष्ट्रपति की पूर्व-अनुमति जरूरी नहीं (No Prior Permission of President)- संविधान के अनुसार संशोधन विधेयक को संसद में प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति की स्वीकृति लेना आवश्यक नहीं है, जैसा कि धन विधेयक के मामले में राष्ट्रपति की स्वीकृति लेना आवश्यक है।

6. संविधान के मूलभूत ढाँचे में संशोधन नहीं (No Amendment in the Basic Structure of the Constitution)- सर्वोच्च न्यायालय के केशवानन्द भारती मुकदमे (1973) में दिए गए निर्णय के अनुसार अनुच्छेद 368 के तहत संसद संविधान में संशोधन तो कर सकती है, किन्तु यह संविधान के मूलभूत ढांचे में संशोधन नहीं कर सकती है।

7. संशोधन अधिनियमों की न्यायिक समीक्षा (Judicial Scrutiny of Amendment Acts)- भारतीय संविधान में यह व्यवस्था की गयी थी कि सर्वोच्च न्यायालय/उच्च न्यायालयों द्वारा संशोधन अधिनियमों की समीक्षा की जा सकती है। इसी आधार पर सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानन्द भारती मुकदमे (1973) में 24 वें संशोधन अधिनियम (1971) को वैध ठहराया था। लेकिन 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा यह व्यवस्था कर दी गयी थी कि संशोधन अधिनियमों को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है। किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने मिनर्वा मिल्स मुकदमे (1980) में दिए अपने निर्णय में 42वें संशोधन अधिनियम की इस व्यवस्था को निरस्त कर दिया। इसका अभिप्रायः यह है कि न्यायपालिका संशोधन अधिनियमों की समीक्षा कर सकती है।

संशोधन विधि की आलोचना (Criticism of Amendment Procedure)

फिर भी, भारतीय संविधान में वर्णित संशोधन विधि में कई दोष रह गए हैं; जैसे-

1. दोनों सदनों के मध्य गतिरोध का दूर करने की व्यवस्था का अभाव (Lack of Provision to Remove Deadlock between Two Houses)- जब किसी साधारण विधेयक को पारित करने के विषय में संसद के दोनों सदनों-राज्य सभा एवं लोक सभा में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है, तो इसको दूर करने के लिए अनुच्छेद 108 के तहत राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है, किन्तु संशोधन विधेयक के बारे में संविधान में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं की गयी है। ऐसे में यदि किसी संशोधन विधेयक को लेकर दोनों सदनों में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है, तो वह विधेयक रद्द हो जाता है। यही कारण है कि राज्य सभा द्वारा 1970 में प्रिवी पर्स समाप्ति-सम्बन्धी संशोधन विधेयक और 1989 में 64वें एवं 65वें संशोधन विधेयकों को अस्वीकार किए जाने पर वे निरस्त हो गए थे।

2. राज्य विधानमण्डलों द्वारा अनुमोदन के लिए समय-सीमा तय नहीं (No Fixed Time-Limit for Ratification by State Legislatures)- संशोधन विधि में एक दोष यह है कि जब किसी संशोधन विधेयक को संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित करने के उपरान्त राज्य विधानमण्डलों के पास अनुमोदन के लिए भेजा जाता है, तो राज्य विधानमण्डल उसके अनुमोदन में लम्बा समय लगा सकते हैं, क्योंकि सविधान में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि विधानमण्डलों को यह कार्य कितने समय में पूरा करना चाहिए।

3. राज्यों के पास पहल करने की शक्ति नहीं (States Having No Power for Initiative) - आम तौर पर संघात्मक व्यवस्था वाले देशों में संघीय इकाइयों को संविधान में संशोधन के विषय में पहल करने का अधिकार दिया गया है किन्तु भारत में राज्यों को संविधान में संशोधन के लिए पहल करने का अधिकार नहीं दिया गया है। भारतीय संविधान द्वारा। संशोधन के विषय में पहल करने की शक्ति संसद को दी गयी है।

4. जनमत-संग्रह की व्यवस्था का अभाव (Lack of Provision of Referendum) - लोकतन्त्र की यह माँग है कि संविधान में संशोधन के विषय में जनमत-संग्रह कराया जाए। यही कारण है कि स्विट्जरलैण्ड में प्रत्येक संशोधन विधेयक पर जनमत-संग्रह कराया जाता है. लेकिन भारतीय संविधान में संशोधन अधिनियमों के विषय में जनमत-संग्रह कराने की व्यवस्था नहीं की गयी है। ऐसे में सत्तारूढ़ दल मनमाने ढंग से संविधान में संशोधन करके इसको तहस-नहस कर सकता है। उल्लेखनीय है कि 45वें संशोधन विधेयक में यह व्यवस्था की गयी थी कि संविधान की मूलभूत बातों में जनमत-संग्रह द्वारा ही संशोधन किया जाए, किन्तु राज्य सभा ने इस संशोधन विधेयक की जनमत-संग्रह वाली धारा को अस्वीकार कर दिया था।

5. अस्पष्टता (Ambiguity)- संशोधन विधि की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि इसमें कई बातें अस्पष्ट है। उदाहरण के लिए 24वें संशोधन अधिनियम (1971) द्वारा यह तो स्पष्ट कर दिया गया था कि राष्ट्रपति संशोधन विधेयक को अपनी स्वीकृति देने से इनकार नहीं कर सकता है, किन्तु यह बात अभी भी स्पष्ट नहीं है कि राष्ट्रपति इसे अपनी स्वीकृति देने में कितना समय लगा सकता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. भारतीय संविधान में संशोधन की विधि की आलोचनात्मक समीक्षा करें। (Critically examine the procedure of amendment of the Indian Constitution.)

2. भारतीय संविधान की संशोधन प्रक्रिया पर एक निबन्ध लिखें। (Write an essay on Amendment process of Indian Constitution.)

3. भारतीय संविधान में संशोधन प्रक्रिया की आलोचनात्मक समीक्षा करें। (Critically examine the amendment process of the Indian Constitution.)

4. भारतीय संविधान में संशोधन करने की विधि की आलोचनात्मक व्याख्या करें। (Discuss critically the Amendment Procedure of the Indian Constitution.)

पंचायती राज संस्थाएँ (Panchayati Raj Institutions)

भारत में पंचायती राज संस्थाओं का इतिहास एवं विकास

पंचायत राज्य व्यवस्था (प्रणाली) का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में स्थानीय लोकतन्त्र को सुदृढ़ करना और लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं को राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रयास से पूरा करना है। भारत में स्थानीय शासन का एक इतिहास रहा है। ब्रिटिश शासन के दौरान **लॉर्ड रिपन (1880-84)** ने स्थानीय शासन को मजबूत करने का सराहनीय प्रयास किया था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद इस विषय को प्राथमिकता के आधार पर लिया गया। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि भारत गाँवों में निवास करता है, यह तय किया गया कि ग्रामीण क्षेत्रों के विकास को सुनिश्चित करने और लोकतन्त्र के लिए जनता को प्रशिक्षित करने के लिए ऐसी संस्थाओं का गठन किया जाए, जिनमें ग्रामीण जनता की अधिक-से-अधिक भागीदारी हो। भारतीय संविधान के **चौथे भाग में** दिए गए राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्तों में ग्राम पंचायतों के गठन और इनको प्रभावकारी बनाने की बात कही गयी।

भारत में पंचायती राज प्रणाली को लागू करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने **1956 में बलवन्त राय मेहता समिति** का गठन किया। जनवरी, 1957 में बलवन्त राय मेहता समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में **तीन-स्तरीय** (Three-tiered) स्थानीय शासन संस्थाओं के गठन की सिफारिश की (i) गाँव के स्तर पर ग्राम पंचायत (ii) खण्ड के स्तर पर ब्लाक समिति या पंचायत समिति और (iii) जिले के स्तर पर जिला परिषद। इस प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य शासन-प्रणाली का विकेन्द्रीकरण करना और स्थानीय लोगों की शासन में भागीदारी को बढ़ाना था। इस समिति की सिफारिशों के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना सबसे पहले राजस्थान में 2 अक्टूबर, 1959 को की गयी। 1960 के मध्य तक देश के अधिकांश राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना हो चुकी थी, किन्तु इनके स्तरों की संख्या, कार्यकाल, संगठन, कायों आदि में काफी अन्तर था। अतः दिसम्बर, 1977 में जनता पार्टी सरकार ने इनमें सुधार लाने की दृष्टि से **अशोक मेहता समिति** का गठन किया। इस समिति ने अगस्त, 1978 में सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपी, जिसमें 132 सुझाव शामिल थे। इसके थोड़े समय पश्चात् जनता पार्टी सरकार का पतन हो गया, जिसके कारण इस समिति द्वारा प्रस्तुत सिफारिशें लागू नहीं हो पायी। 1986 में राजीव गाँधी सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं के पुनरुत्थान के लिए **एल.एम. सिंघवी समिति** का गठन किया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने और इन्हें अधिक वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने की सिफारिश की। इस समिति की सिफारिशों को क्रियान्वित करने की दृष्ट से सरकार ने जुलाई, 1989 में लोक सभा में 64वां संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। अगस्त 1989 में लोक सभा ने इसे पारित कर दिया, किन्तु राज्य सभा ने इसे नामंजूर कर दिया, जिसके कारण यह विधेयक रद हो गया। नवम्बर, 1989 में वी.पी. सिंह सरकार सत्ता में आयी। जून, 1990 में पंचायती राज संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से मुख्य मन्त्रियों के दो दिवसीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में नए संशोधन विधेयक को प्रस्तुत करने पर सहमति हुई। इसलिए सितम्बर, 1990 में लोक सभा में एक संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया गया, किन्तु वी. पी. सिंह सरकार के पतन के साथ यह विधेयक भी समाप्त हो गया।

सन् 1991 में नरसिम्हा राव सरकार ने पंचायत राज प्रणाली पर गम्भीरता से विचार किया और इसमें सुधार का संकल्प लिया। पंचायत राज प्रणाली के दोषों को दूर करने के उद्देश्य से लोक सभा में एक संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया गया, जिसे लोक सभा ने 22 दिसम्बर, 1992 को पारित कर दिया। इसे राज्य सभा ने अगले दिन अपनी स्वीकृति दे दी। राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने के बाद 24 अप्रैल, 1993 को यह संशोधन विधेयक 73वें संशोधन अधिनियम के रूप में देश में लागू हो गया।

73वें संशोधन अधिनियम (1992) की मुख्य विशेषताएँ (Main Features of 73rd Amendment Act, (1992)

24 अप्रैल, 1993 को लागू 73वें संशोधन अधिनियम (1992) की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा (Constitutional Status to Panchayati Raj Institutions)- 73वें संशोधन अधिनियम द्वारा तीनों स्तर की पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। इस अधिनियम से

पहले इन्हें केवल कानूनी दर्जा प्राप्त था, क्योंकि इनका गठन राज्य विधानमण्डलों द्वारा निर्मित अधिनियमों के तहत किया गया था। पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने के उद्देश्य से संविधान के नौवें भाग के अनुच्छेद 243 से तेकर 243-0 तक और 11वीं अनुसूची में पंचायती राज संस्थाओं से सम्बन्धित मामले शामिल किए गए हैं।

2. त्रि-स्तरीय संरचना (Three-Tiered Structure)- इस संशोधन अधिनियम में पंचायती राज्य संस्थाओं के त्रि-सारीय संगठन की व्यवस्था की गयी है। ये तीन स्तर हैं— (i) गांव स्तर पर ग्राम पंचायत (ii) खण्ड (ब्लाक) स्तर पर पंचायत समिति और (iii) जिला स्तर पर जिला परिषद। किन्तु ऐसे राज्यों में, जिनकी जनसंख्या 20 लाख से कम है, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति की स्थापना नहीं की जाएगी।

3. प्रत्यक्ष चुनाव (Direct Election)- इस संशोधन अधिनियम के तहत तीनों स्तर की पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इसका अभिप्राय: यह हुआ कि ग्राम पंचायत, पंचायत समिति एवं जिला परिषद के सदस्यों का चुनाव गाँवों में रहने वाले मतदाताओं द्वारा किया जाएगा। इसके लिए प्रत्येक गाँव, खंड एवं जिले को अनेक वार्डों में बांटा जाता है और प्रत्येक वार्ड से ग्राम पंचायत, पंचायत समिति एवं जिला परिषद के लिए एक-एक सदस्य का चुनाव किया जाता है। ग्राम पंचायत के प्रमुख अर्थात सरपंच/प्रधान का चुनाव ग्राम सभा के सदस्यों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाएगा, लेकिन पंचायत समिति एवं जिला परिषद के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के चुनाव इनके सदस्यों द्वारा किए जाएँगे और इन सदस्यों में से ही एक सदस्य अध्यक्ष और एक सदस्य उपाध्यक्ष चुना जाएगा।

4. मनोनीत सदस्य (Nominated Members)- इस संशोधन अधिनियम के अनुसार राज्य विधानमण्डल कानून बनाकर निम्नलिखित पदाधिकारियों को पंचायत समिति एवं जिला परिषद में मनोनीत करने की व्यवस्था कर सकता है-
(i) सरपंचों का पंचायत समिति एवं जिला परिषद में मनोनयन
(ii) पंचायत समितियों के अध्यक्षों का जिला परिषद में मनोनयन
(iii) क्षेत्र के विधायकों एवं सांसदों का पंचायत समिति एवं जिला परिषद में मनोनयन।

5. सीटों का आरक्षण (Reservation of Seats)- इस संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत तीनों स्तर की पंचायती राज संस्थाओं में एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित करने की व्यवस्था की गयी है। इसी प्रकार तीनों स्तर की पंचायती यह संस्थाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण इनकी जनसंख्या के अनुपात में करने की व्यवस्था भी गयी है। इन आरक्षित सीटों में से एक-तिहाई सीटें इन्हीं वर्गों की महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी। इन संस्थाओं में पिछड़े वर्गों के लिए सीटों का आरक्षण राज्य सरकारों द्वारा किए जाने की व्यवस्था भी की गयी है। हरियाणा में पंचायत संस्थाओं में पिछड़े वर्ग के आरक्षण की व्यवस्था कर दी गई है।

6. अवधि (Term)- इस संशोधन अधिनियम के द्वारा तीनों स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं की अवधि पाँच वर्ष तय की गयी है, किन्तु इससे पूर्व भी राज्य सरकार इन्हें भंग कर सकती है। ऐसी स्थिति में छः महीने के अन्दर इनका चुनाव कराना अनिवार्य कर दिया गया है। यदि किसी पंचायती राज संस्था का कार्यकाल सिर्फ छः महीने बचा हो और इस दौरान उसको भंग कर दिया जाए, तो उसका चुनाव अन्य पंचायती राज संस्थाओं के साथ किया जाएगा।

7. पंचायतों का उत्तरदायित्व (Responsibilities of Panchayats)- इस संशोधन अधिनियम के द्वारा राज्य विधानमण्डलों को यह दायित्व सौंपा गया है कि वे 11वीं अनुसूची में शामिल 29 विषयों को पंचायती राज संस्थाओं को हस्तान्तरित करें, ताकि पंचायती राज संस्थाएँ उपयुक्त कानून बनाकर आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय सम्बन्धी योजनाओं को लागू कर सकें और ग्रामीण विकास में योगदान दे सके।

8. वित्त आयोग के लिए प्रावधान (Provision for Finance Commission)- इस संशोधन अधिनियम के द्वारा पंचायती राज संस्थाओं की वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए वित्तीय आयोग के गठन की व्यवस्था की गयी है। राज्यपाल द्वारा पाँच वर्ष के लिए वित्तीय आयोग की नियुक्ति की जाएगी। यह आयोग अपनी रिपोर्ट राज्यपाल को प्रस्तुत करेगा, जिसे राज्यपाल राज्य विधानमण्डल के समक्ष रखेगा। वित्तीय आयोग निम्नलिखित विषयों के बारे में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करेगा-

(i) राज्य सरकार एवं पंचायती राज संस्थाओं के मध्य करों का बंटवारा।
(ii) पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तरों पर करों का बंटवारा।
(iii) पंचायती राज संस्थाओं द्वारा लिए जाने वाले करों एवं शुल्कों का निर्धारण।
(iv) राज्य की संचित निधि से पंचायती राज संस्थाओं को दिए जाने वाले अनुदान।
(v) अन्य विषय, जो इसे राज्यपाल द्वारा सौंपे जाएँ।

9. राज्य निर्वाचन आयोग की व्यवस्था (Provision for State Election Commission)- इस संशोधन अधिनियम द्वारा पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव कराने के लिए राज्य निर्वाचन आयोग की व्यवस्था की गयी है।

10. अधिनियम विशेष क्षेत्रों में लागू नहीं (No Implementation of the Act in Specific Areas)-73वां संशोधन अधिनियम (1992) नागालैण्ड, मिजोरम, मेघालय एवं मणिपुर राज्यों के पर्वतीय क्षेत्रों और पश्चिम बंगाल के दार्जलिंग पर्वतीय क्षेत्र पर लागू नहीं होता है, क्योंकि इन क्षेत्रों को इसके दायरे से बाहर रखा गया है। संसद एवं राज्य विधानमण्डल दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके इस अधिनियम का दायरा बढ़ा सकती हैं।

11. निर्वाचन सम्बन्धी कुछ विवाद न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के बाहर (Certain Election Disputes Out of the Jurisdiction of Courts)-73वें संशोधन अधिनियम के तहत निर्वाचन सम्बन्धी कुछ विशेष मामलों का निबटारा राज्य सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी द्वारा किया जाएगा। अन्य शब्दों में, निर्वाचन सम्बन्धी कुछ मामलों में न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेंगे। इन मामलों में निर्वाचन क्षेत्रों का सीमांकन एवं निर्वाचन क्षेत्रों में सीटों का बंटवारा शामिल होगा।

12. 11वीं अनुसूची (11th Schedule)- इस संशोधन अधिनियम के द्वारा संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़ी गयी है। इस अनुसूची में 29 विषय शामिल हैं। इस अनुसूची में अंकित विषयों पर कानून बनाने की शक्ति पंचायती राज संस्थाओं को हस्तान्तरित करने का दायित्व राज्य सरकारों का होगा। इस अनुसूची में शामिल कुछ विषय हैं- कृषि , भूमि सुधार कानून , लघु सिंचाई एवं जल प्रबन्ध , पशुपालन एवं मुर्गीपालन मत्स्य , सामाजिक वानिकीकरण , लघु उद्योग , खादी ग्राम उद्योग , ग्रामीण आवास , पेयजल , इंधन एवं चारा , सड़कें, जल मार्ग एवं संचार के माध्यम , विद्युत का वितरण , गैरपारम्परिक ऊर्जा , गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम , शिक्षा प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूल , तकनीकी प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक शिक्षा , प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय , सांस्कृतिक गतिविधियाँ , बाजार एवं मेले , स्वास्थ्य एवं सफाई , परिवार कल्याण , महिला एवं बाल विकास , कमजोर वर्गों, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का कल्याण , सामुदायिक सम्पत्तियों का रख-रखाव , समाज कल्याण , लघु वन उद्योग आदि।

बलवन्त राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर पंचायत राज प्रणाली को त्रि-स्तरीय (Three-tier) प्रणाली बनाया गया था। इसमें गाँव के स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड के स्तर पर पंचायत समिति और जिले के स्तर पर जिला परिषद को स्थापना की सिफारिश की गयी थी। 73वें संशोधन अधिनियम, 1992 में यह व्यवस्था कायम रखी गयी है। यहाँ इन तीनों स्तरों पर स्थापित पंचायती राज संस्थाओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

गाँव ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायत (Gram Sabha and Gram Panchayat)

गाँव के स्तर पर जिन पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना की गयी है, उनका विवरण इस प्रकार है-

1. ग्राम सभा (Gram Sabha)- ग्राम सभा, एक प्रकार से गाँव की विधानपालिका होती है। गाँव के सभी लोग, जिसका नाम विधान सभा की मतदाता सूची में होता है, ग्राम सभा के सदस्य होते हैं। जिस गाँव की जनसंख्या 200 या इससे अधिक होती है, उसकी एक ग्राम सभा होती है, लेकिन अगर किसी गाँव की जनसंख्या 200 से कम हो. तो उसको दूसरे गाँव की ग्राम सभा के साथ जोड़ दिया जाता है। ग्राम पंचायत ग्राम सभा की कार्यकारिणी होती है, जो ग्राम सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। ग्राम पंचायत अपनी सत्ता एवं शक्ति ग्राम सभा से प्राप्त करती है।

2. ग्राम पंचायत (Gram Panchayat)- ग्राम पंचायत एक प्रकार से ग्राम सभा की कार्यकरिणी एवं प्रमुख प्रशासनिक इकाई

है। इस समय देश में 2,25,832 ग्राम पंचायतें हैं। किसी ग्राम पंचायत का अस्तित्व एवं आकार उस गाँव की जनसंख्या पर निर्भर करता है। ग्राम पंचायत में एक सरपंच एवं कुछ पंच शामिल होते हैं। गाँव की जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक गाँव को कुछ वार्डों में बाँटा जाता है और प्रत्येक वार्ड से एक पंच निर्वाचित किया जाता है। ग्राम पंचायत के सरपंच एवं पंचों का चुनाव ग्राम सभा के सदस्यों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।

कार्यकाल (Tenure)- ग्राम पंचायत का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है, किन्तु इसको सक्षम अधिकारी द्वारा पहले भी भंग किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में छः महीने में इसका चुनाव कराना अनिवार्य है।

कार्य (Functions)-ग्राम पंचायत मुख्य रूप से दो प्रकार के कार्य करती है-

(i) न्यायिक कार्य एवं (ii) प्रशासनिक एवं विकास संबंधी कार्य।

(i) न्यायायिक कार्य (Judicial Functions)- ग्राम पंचायत को निम्नलिखित न्यायिक कार्य करती है।

1. यह गाँव के झगड़ों में निर्णय देती है।
2. यह अपराधी पर 1000 रुपए तक जुर्माना लगा सकती है।
3. यह ग्राम में होने वाले छोटे-छोटे अपराधों जैसे- जुआ खेलना , कम तोलना, वृक्षों को नुकसान पहुँचाना आदि के लिए दण्ड दे सकती है।
4. यह गाँव की सम्पत्ति की रक्षा करती है।
5. यह गाँव के अन्दर समाज-विरोधी कार्यों को रोकती है।

(ii) प्रशासनिक एवं विकास कार्य (Administrative and Development Functions)- ग्राम पंचायत के प्रशासनिक एवं विकास संबंधी कार्यों में निम्नलिखित कार्य शामिल है-
1. कृषि का विकास करना।
2. उद्योगों का विकास करना।
3. सड़कें एवं गलियाँ बनाना।
4. शिक्षा, स्वास्थ्य एवं खेल का विकास करना।
5. मनोरंजन का विकास करना एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ाना
6. फसलों की देख-रेख के लिए दवाइयाँ एवं खाद उपलब्ध कराना।
7. नई कृषि एवं उद्योग तकनीकी को गाँव तक लाना।
8. सरकारी कार्यक्रमों को गाँव में लागू करना।
9. गाँव में पशु-कल्याण केन्द्र स्थापित करना।
10. सफाई के प्रति ग्रामवासियों में आगरूकता पैदा करना।
11. गाँव के चौकीदार की नियुक्ति करना।

आय के साधन (Source of Income)- ग्राम पंचायतों की आय के निम्नलिखित स्रोत हैं-
1. राज्य सरकार से प्राप्त अनुदान, 2. राजस्व में हिस्सा,
3. बिक्री से आय, 4. मछली तालाब से आय , 5. ग्राम पंचायत की अपनी सम्पत्ति, 6. लोगों की ओर से दान,
7. गृह कर (House Tax), 8. रजिस्ट्री फीस से आदमनी, 9. विभिन्न प्रकार के कर, 10. जुर्माने से प्राप्त धन।

पंचायत समिति (Panchayat Samiti)

पंचायत राज प्रणाली में पंचायत समिति ब्लाक स्तर की संस्था है, जो ग्राम पंचायत एवं जिला परिषद् के मध्य कड़ी का कार्य करती है। यह एक मध्य-स्तरीय प्रशासनिक संस्था है। अलग-अलग राज्यों में इसे अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। इसे उत्तर प्रदेश में क्षेत्र समिति, हरियाणा में पंचायत समिति, गुजरात में तालुका समिति और मध्य प्रदेश में जन परिषद् कहा जाता

है।

पंचायत समिति के कुछ सदस्य प्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण लोगों द्वारा चुने जाते हैं, जिनकी संख्या 10 - 30 तक हो सकती है। जिस पंचायत समिति के क्षेत्र की जनसंख्या 40,000 से अधिक होती है, उसमें 30 तक सदस्य हो सकते हैं। पंचायत समिति के सम्पूर्ण क्षेत्र को वार्डों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक वार्ड से एक सदस्य प्रत्यक्ष रूप में ग्रामीण मतदाताओं द्वारा चुना जाता है। पंचायत समिति के क्षेत्र से लोक सभा एवं विधान सभा के लिए चुने गए प्रतिनिधि भी इस समिति के सदस्य होते हैं। पंचायत समिति के क्षेत्र के उपमंडल अधिकारी एवं खण्ड विकास अधिकारी पंचायत समिति के पदेन (Ex-officio) सदस्य होते हैं।

अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष (Chairman and Vice-Chairman)- पंचायत समिति के सदस्य अपने में से एक अध्यक्ष एवं एक उपाध्यक्ष चुनते हैं। पंचायत समिति का अध्यक्ष इसकी बैठकों की अध्यक्षता करता है। उसकी अनुपस्थिति में यह कार्य उपाध्यक्ष द्वारा किया जाता है।

कार्यकाल (Tenure)- पंचायत समिति का कार्यकाल पाँच वर्ष है, किन्तु पाँच वर्ष से पहले भी सक्षम प्राधिकारी द्वारा इसे भंग किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में छः माह में इसका चुनाव कराना आवश्यक है।

पंचायत समिति के कार्य (Functions of Panchayat Samiti)- पंचायत समिति के निम्नलिखित कार्य होते हैं-

1. यह अपने क्षेत्र की ग्राम पंचायतों पर प्रशासनिक नियन्त्रण बनाए रखती है।
2. यह अपने क्षेत्र की ग्राम पंचायतों में तालमेल स्थापित करती है।
3. यह अपने क्षेत्र की ग्राम पंचायतों की समस्याओं को सुनती है।
4. यह अपने क्षेत्र की ग्राम पंचायतों को देखभाल करती है।
5. यह अपने क्षेत्र में कृषि, उद्योग, पशुपालन एवं अन्य मामलों में विकास सुनिश्चित करती है।
6. यह अपने क्षेत्र में सड़कों, नहरों एवं पुलों का निर्माण करती है।
7. वह अपने क्षेत्र में खेल, मनोरंजन एवं अन्य प्रकार की सांस्कृतिक गतिविधियों का आयोजन करती है। खाद, बिजली, दवाइयाँ आदि का प्रबन्ध करती है।
8. यह अपने क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करती है।
9. यह अपने क्षेत्र की ग्राम पंचायतों की वित्तीय स्थिति को नियन्त्रित करती है।
10. यह सरकार से मिलने वालो सहायता एवं योजनाएँ ग्राम पंचायतों तक पहुंचाती है।

आय के स्रोत (Sources of Income)- पंचायत समिति की आय के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं-
1. स्थानीय कर। 2. मंडियों से प्राप्त शुल्क।
3. क्षेत्र में लगने वाले पशु मेले एवं अन्य मेलों से होने वाली आय।
4. क्षेत्र के विश्राम घरों से आय। 5. पंचायत समिति की अपनी सम्पत्ति से आय।
6. राज्य सरकार से मिलने वाला अनुदान। 7. राज्य के व्यक्तियों द्वारा दिया गया दान।
8. राज्य सरकार से मिलने वाली विभिन्न योजनाओं के लिए आर्थिक सहायता।

जिला परिषद (Zila Parishad)

जिला परिषद् पंचायत राज प्रणाली के शीर्ष पर स्थित संस्था है। यह जिला स्तर की संस्था होती है। इस नाते प्रत्येक जिले में एक जिला परिषद् होती है। जिला परिषद् का क्षेत्र एवं दायित्व अधिक होते हैं।

रचना (Composition)- जिला परिषद् में कई प्रकार के सदस्य शामिल होते हैं। इसमें अधिकतर निर्वाचित सदस्य होते है, जिनकी संख्या 10 - 30 तक होती है। जिला परिषद के सदस्यों के चुनाव हेतु सम्पूर्ण जिले को जनसंख्या के आधार अनेक

वार्डों में बांट दिया जाता है और प्रत्येक वार्ड से एक सदस्य ग्रामीण जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुना जाता है। इस चुनाव में प्रत्येक वयस्क मतदाता, जिसका नाम मतदाता सूची में शामिल होता है, हिस्सा लेता है। इस प्रकार जिला परिषद् के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से होता है। जिला परिषद् में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लोगों के लिए स्थान आरक्षित होते हैं। साथ ही महिलाओं के लिए भी इसके एक-तिहाई स्थान आरक्षित होते हैं। इसके अलावा, जिला परिषद् के क्षेत्र में आने वाले लोक सभा एवं विधान सभा के सदस्य भी जिला परिषद् के सदस्य होते हैं। इसके साथ-साथ जिले की पंचायत समितियों के अध्यक्ष जिला परिषद् के सदस्य होते हैं। जिले का डिप्टी कमिश्नर अथवा जिला मजिस्ट्रेट जिला परिषद् का पदेन सदस्य होता है।

सचिव (Secretary)-जिला परिषद् की मांग पर राज्य सरकार द्वारा इसका एक सचिव नियुक्त किया जाता है। यह जिला परिषद् का मुख्य प्रशासकीय अधिकारी होता है और इसका जिला परिषद के समस्त कर्मचारियों पर प्रशासनिक नियन्त्रण होता है। सचिव जिला परिषद् का बजट तैयार करता है और इसे जिला परिषद् की बैठक में प्रस्तुत करता है। वह सरकार की ओर से धन एवं अनुदान प्राप्त करता है।

मुख्य कार्यकारी अधिकारी (Chief Executive Officer)- जिला परिषद् में एक मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है। वह राज्य सरकार द्वारा अपने अधिकारियों में से चुना जाता है और उसकी स्थिति डिप्टी कमिश्नर के समान होती है। वह हर प्रकार के विवादों एवं कार्यक्रमों के लिए उत्तरदायी होता है, इसलिए समस्त विभाग कृषि, पशुपालन, शिक्षा आदि-उसके अधीन होते हैं और सभी कर्मचारियों पर उसका प्रशासनिक नियन्त्रण होता है। इस प्रकार जनता के द्वारा चुने गए पार्षदों एवं शासन के आपसी सहयोग से जिले का विकास किया जाता है।

जिला परिषद् के कार्य (Functions of Zila Parishad)- जिला परिषद् के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-
1. जिले की पंचायत समितियों एवं ग्राम पंचायतों की देखभाल करना और इन पर नियन्त्रण रखना।
2. अपने अधीन क्षेत्र के विकास के लिए पंचायत समितियों एवं ग्राम पंचायतों को आवश्यक निर्देश एवं सहायता प्रदान करना।
3. अपने अधीन क्षेत्र की सभी पंचायत समितियों एवं ग्राम पंचायतों में समन्वय स्थापित करना।
4. अपने अधीन क्षेत्र की पंचायत समितियों एवं ग्राम पंचायतों की समस्याओं को सुनना और उनका उचित प्रबन्धन करना।
5. सरकार एवं जिला स्तर पर ग्रामीण क्षेत्र में काम करने वाली स्थानीय शासन संस्थाओं के मध्य कड़ी का काम करना।
6. पंचायत समितियों एवं ग्राम पंचायतों के बजट पर नियन्त्रण रखना।
7. राज्य सरकार से विभिन्न योजनाओं के लिए तकनीकों एवं आर्थिक सहायता लेकर पंचायत समितियों एवं ग्राम पंचायतों तक पहुँचाना।
8. सम्पूर्ण जिले के विकास के लिए कृषि, उद्योग, पशुपालन, बिजली एवं सिचाई सुविधाओं को विकसित करना।
9. शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन एवं सांस्कृतिक विकास के लिए आवश्यक कदम उठाना।
10. जिले का भौतिक विकास करना अर्थात् सड़कें, यातायात एवं जन संचार की सुविधाओं का विकास करना।
11. अपने अधीन क्षेत्र में सरकार की नीतियों को सफलतापूर्वक लागू करवाना।
12. पंचायत समितियों एवं ग्राम पंचायतों को आवश्यक परामर्श देना।

आय के स्रोत (Sources of Income)- जिला परिषद् को जिले के विकास के लिए धन की आवश्यकता होती है , जिला परिषद के आय के प्रमुख स्रोत इस प्रकार हैं-
1. केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा किया जाने वाला अनुदान।
2. अखिल भारतीय सस्थाओं के विकास कार्यों के लिए दिया जाने वाला अनुदान।
3. संग्रहित राजस्व में जिला परिषद् का अपना हिस्सा।
4. जिला परिषदों द्वारा प्रशासनिक ट्रस्टों से आय।
5. पंचायत समितियों से की गयी प्राप्ति।
6. जिला परिषद् की अपनी सम्पत्ति से होने वाली आय।
7. जिला परिषद् सरकार से ऋण भी ले सकती है।
8. विभिन्न प्रकार के जुर्माने एवं करों से प्राप्त होने वाली आय।

पंचायती राज संस्थाओं की कार्य प्रणाली में दोष
(Defects in the Working of Pancyayat Raj Institutions)

आज देश में पंचायत राज संस्थाएँ समुचित रूप से कार्य नहीं कर पा रही है, क्योंकि
इनकी कार्य-प्रणाली (Working) में अनेक दोष मौजूद हैं; जैसे-

1. जनता की उदासीता (Apathy of People)- गांव के शिक्षित व्यक्ति इन संस्थाओं में अधिक रुचि नहीं लेते हैं और स्थानीय शासन के बारे में इनका रवैया उदासीन ही रहता है। अधिकतर मामलों में ग्राम सभा की बैठकें वास्तव में होती ही नहीं है, और इन्हें ऐसे ही कागजों पर दिखा दिया जाता है।

2. धन का अभाव (Lack of Funds)- पंचायती राज संस्थाओं की आर्थिक स्थिति इतनी सुदृढ़ नहीं होती है कि ये संतोषजनक ढंग से अपना कार्य कर सकें। इसका कारण यह है कि स्वतन्त्रतापूर्वक धन इकट्ठा नहीं कर सकती हैं। वैसे भी ग्रामीण जनता अधिक कर देने की स्थिति में नहीं होती है, तो राज्य सरकारें इन्हें नियमित अनुदान नहीं देती हैं। इनकी आय के साधन इतने नहीं हैं कि ये अपने कार्यों को ठीक ढंग से सम्पन्न कर पाएं। धन की कमी के कारण ये संस्थाएँ ग्रामीण क्षेत्रों के विकास का कार्य पूरा नहीं कर पाती हैं।

3. अयोग्य व्यक्तियों का चुनाव (Election of Incapable People) - प्रायः पंचायती राज संस्थाओं में अधिकतर अयोग्य व्यक्ति चुने जाते हैं। गाँव के अधिकतर वे व्यक्ति इनके सदस्य बन जाते हैं, जो सही अर्थों में शिक्षित नहीं होते हैं, क्योंकि ग्रामीण जनता अपने मत का सही ढंग से प्रयोग नहीं कर पाती।

4. निष्पक्षता का अभाव (Lack of Impartiality)- पंचायती राज संस्थाएँ अपना कार्य करते समय भेदभाव की भावना रखती हैं, क्योंकि इनके सदस्य जाति एवं सम्प्रदाय के आधार पर चुने जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप लोगों का इनमें विश्वास नहीं रहता है। इनके सदस्य पूर्ण निष्पक्ष भाव से काम नहीं कर पाते हैं।

5. दलबंदी की भावना (Partisan Spirit)- यह बात सही है कि पंचायती राज संस्थाओं में राजनीतिक दलों का कोई मुख्य स्थान नहीं होता है, क्योंकि इन संस्थाओं का संबंध एक गाँव या क्षेत्र से होता है, जिसमें दलगत मतभेद स्पष्ट नहीं होते हैं, किन्तु राजनीतिक दल इन संस्थाओं की कार्य प्रणाली को न केवल प्रभावित करते हैं, बल्कि इनके कार्यों में हस्तक्षेप भी करते हैं । उत्तर प्रदेश जैसे कई राज्यों में इन संस्थाओं के चुनाव दलगत आधार पर होते हैं।

6. अयोग्य कर्मचारी (Inefficient Officials)- पंचायती राज संस्थाओं में प्रायः अयोग्य कर्मचारी होते हैं। इन संस्थाओं में कार्य करने वाले कर्मचारियों के वेतन एवं भत्ते कम होते हैं, इसलिए योग्य व्यक्ति इनकी ओर आकर्षित नहीं होते हैं। इन्हें अपने कार्यों के बारे में अधिक जानकारी नहीं होती है।

7. राज्य सरकार द्वारा हस्तक्षेप (Interference by State Government)- राज्य सरकारें पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों में बहुत अधिक हस्तक्षेप करती हैं, जिसके कारण ये अपना कार्य ठीक से नहीं कर पाती हैं। संवैधानिक दर्जा मिलने के बाद भी पंचायती राज संस्थाएँ राज्य सरकारों के अधीन हैं, जो इन्हें समय-समय पर आदेश देती रहती हैं। राज्य सरकारें इनके पदाधिकारियों को निलम्बित कर देती हैं

8. जातिवाद एवं सम्प्रदायवाद (Casteism and Communalism)- भारत में सभी राज्यों में पंचायत राज संस्थाएँ जाति एवं साम्प्रदायिकता के आधार पर कार्य करती है। इनको जातिवाद एवं सम्प्रदायवाद ने इतना अधिक जकड़ रखा है कि ये स्वतंत्र रूप से अपना कार्य नहीं कर पा रही हैं।

पंचायत राज प्रणाली का महत्त्व
(Significance of Panchayat Raj System)

पंचायत राज प्रणाली को सभी कालों में महत्त्वपूर्ण समझा गया है। यहां तक कि ब्रिटिश शासन में भी लॉर्ड रिपन ने स्थानीय

संस्थाओं के महत्त्व को समझते हुए इनके गठन एवं अधिकारों के लिए आवश्यक कदम उठाए थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद गाँधी जी के विचारों का सम्मान करते हुए राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों में ग्राम पंचायतों को सुदृढ़ बनाने की बात कही गयी है। गाँधी जी स्वराज एवं स्थानीय शासन के माध्यम से लोकतन्त्र को सुदृढ़ करना चाहते थे। कांग्रेस सरकार ने स्थानीय शासन के महत्त्व को समझते हुए इसका प्रारूप निश्चित करने के लिए 1956 में बलवन्त राय मेहता समिति गठित की थी। बाद में 1978 में इसी विषय पर अशोक मेहता समिति गठित की गयी। फिर भी, पंचायत राज संस्थाएँ प्रभावकारी तरीके से कार्य नहीं कर पायीं। इन संस्थाओं को प्रभावशाली बनाने के लिए सरकार द्वारा 73वां संशोधन अधिनियम (1992) लाया गया। इन संस्थाओं में संगठनात्मक सुधार किए गए और इनकी शक्तियों एवं क्षेत्रों में विस्तार किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत इन संस्थाओं में महिलाओं एवं कमजोर वर्गों के सदस्यों को उचित प्रतिनिधित्व दिया गया। इस संशोधन अधिनियम द्वारा इन संस्थाओं को और अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए इन्हें संवैधानिक दर्जा दिया गया।

निम्नलिखित बातों से हमें पंचायती राज संस्थाओं का महत्व पता चलता है-

1. इनसे लोकतन्त्र सुदृढ़ होता है और ग्रामीण लोगों को लोकतन्त्र का प्रशिक्षण मिलता है।
2. इनसे ग्रामीण लोगों में स्वतन्त्रता की भावना पैदा होती है तथा उनका आत्म-विश्वास बढ़ता है।
3. इनसे ग्रामीण लोगों की मूल आवश्यकताओं की, उनके अपने सहयोग एवं भागीदारी से पूर्ति हो जाती है।
4. इनके अन्तर्गत सामूहिक मामलों में प्रशासन, जनता एवं राजनीतिज्ञ साथ-साथ कार्य करते हैं।
5. इन संस्थाओं में जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी से नौकरशाही पर नियन्त्रण बना रहता है।
6. इनके माध्यम से सरकार की नीतियाँ सीधे जनता तक पहुँचती हैं, जिससे क्षेत्र का विकास होता है।
7. इनके कारण ग्रामीण क्षेत्रों में आत्म निर्भरता की भावना का विकास होता है।
8. इनके कारण आपसी सहयोग से क्षेत्रीय समस्याएँ सुलझ जाती हैं।
9. इनके द्वारा अनेक प्रकार के छोटे-छोटे झगड़े गाँव के स्तर पर ही निपटा दिए जाते हैं, जिससे मुकदमेबाजी नहीं बढ़ती है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

(IMPORTANT QUESTIONS)

1. 73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा लागू की गयी नई पंचायती राज प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ क्या है? (What are the main features of New Panchayati Raj system imposed by 73rd Constitutional Amendment?)

2. पंचायती राज से सम्बन्धित 73वें संशोधन अधिनियम के मुख्य प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
(Describe the main provisions of the 73rd Amendment Act relating to Panchayati Raj.)

3. 73वें संशोधन अधिनियम की मुख्य विशेषताओं की समीक्षा कीजिए।
(Explain the main features of 73rd Amendment Act.)

4. ग्राम पंचायत के गठन, कार्यों एवं आय के साधनों का वर्णन कीजिए।
(Describe the composition, functions and sources of income of Gram Panchayat.)

5. नए पंचायती राज सम्बन्धी 73वें संशोधन अधिनियम (1992) की विशेषताओं का वर्णन करो।
(Discuss the features of 73rd Amendment Act (1992) relating to new Panchayati Raj System.)

6. पंचायत राज प्रणाली पर एक निबन्ध लिखिए।
(Write an essay on Panchayati Raj System.)

UNIT-4 न्यायपालिका (Judiciary)

न्यायपालिका सरकार के तीन अंगों में एक प्रमुख अंग होता है। लोकतंत्र में तो किसी भी सरकार की श्रेष्ठता उसकी न्यायपालिका से मानी जाती है। भारत एक संघात्मक राज्य है। यहाँ पर भी न्यायपालिका के तहत सुप्रीम कोर्ट के अधीन कई निम्न न्यायालयों की स्थापना की गयी है। भारत की न्यायपालिका का ढांचा एक विशेष प्रकार है। यहाँ की न्यायपालिका स्वतंत्र एक एकीकृत है।

भारत में **न्यायपालिका का एक एकीकृत ढांचा** कुछ इस प्रकार है-

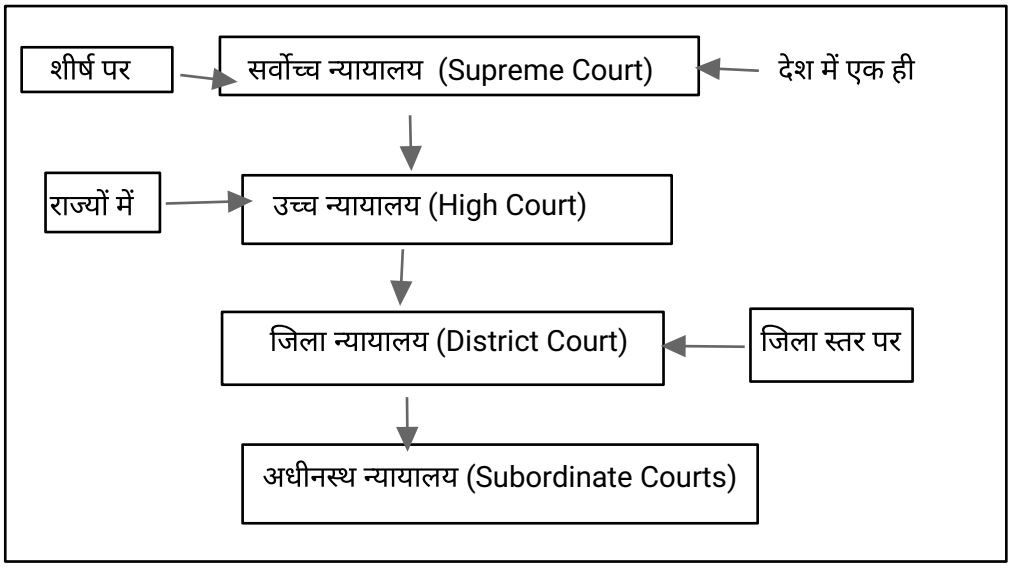

सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court)

रचना / संगठन – संविधान के अनुच्छेद 124 में सर्वोच्च न्यायालय के लिए एक मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायधीशों की व्यवस्था की गई है। आरंभ में सुप्रीम कोर्ट में न्यायधीशों की कुछ संख्या 8 थी (एक मुख्य न्यायाधीश +7 अन्य न्यायाधीश)। समय समय पर इनकी संख्या बढ़ाई गई है। 2019 में इनकी संख्या बढाकर 34 (एक मुख्य न्यायाधीश + 33 अन्य न्यायाधीश) कर दी गई है। वर्तमान में श्री संजीव खन्ना (2024 में) सर्वोच्च न्य न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश (CJI) हैं।

न्यायाधीशों की नियुक्ति– सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। यह परंपरा है कि सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश (Senior Most Judge) को ही मुख्य न्यायधीश नियुक्त किया जाता है। किंतु इस परंपरा का कई बार सरकार द्वारा उल्लंघन किया गया है। अप्रैल 1973 में वरिष्ठता में चौथे नंबर के न्यायाधीश ए. एन. रे (A.N Ray) को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया था। जनवरी 1977 फिर से वरिष्ठता के सिद्धांत का उल्लंघन करते हुए जस्टिस ए. एन. रे की सेवानिवृत्ति होने पर जस्टिस एम. एच बेग को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया था। सरकार के इस प्रकार के फैसलों की कड़ी आलोचना की गई थी।

संविधान के अनुच्छेद 124(1) के अनुसार राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से करेगा। किंतु इस बात को लेकर विवाद था कि क्या राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश के परामर्श को मानने के लिए बाध्य है या नहीं। इस विवाद को समाप्त करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने 1973 में निर्णय दिया था कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में मुख्य न्यायाधीश का परामर्श मानना अनिवार्य है तथा मुख्य न्यायाधीश परामर्श देते समय चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों की राय लेगा। 28 Oct 1998 को सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 143 के तहत एक संदर्भ के जवाब में राष्ट्रपति को जब परामर्श देते हुए स्पष्ट किया कि अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए सिफारिश भेजने से पूर्व मुख्य न्यायाधीश द्वारा चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों

के समूह (Collegium) की लिखित स्वीकृति या राय लेनी होगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

न्यायाधीशों की योग्यताएं— संविधान के अनुच्छेद 124(3) के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए

1. वह भारत का नागरिक होना चाहिए।

2. वह किसी एक या एक से अधिक उच्च न्यायालयों में कम से कम 5 वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो

या

वह किसी एक उच्च न्यायालय या एक से अधिक उच्च न्यायालयों में कम से कम 10 वर्ष तक लगातार वकालत कर चुका हो
3. वह राष्ट्रपति के विचार में एक प्रसिद्ध विधिवेत्ता हो।

न्यायाधीशों का कार्यकाल — भारतीय संविधान में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्यकाल तय नहीं किया गया है । संविधान के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु पूरी होने तक अपने पद पर बने रहते हैं। यदि वे चाहे तो इससे पहले भी त्यागपत्र दे सकते हैं , संविधान के अनुसार अनुच्छेद 124(4) के अंतर्गत यदि यह अपने कर्तव्यों का ठीक से पालन नहीं करते हैं तो संसद द्वारा इन्हें 'प्रमाणित कदाचार अथवा योग्यता' (Proved Misbehaviour or Incapacity) के आधार पर 'महाभियोग प्रस्ताव' पास करके पद से हटाया जा सकता है।

न्यायाधीशों के वेतन एवं भत्ते— सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन एवं भत्ते संसद द्वारा तय किए जाते हैं । 30 जनवरी 2018 को संसद में उनके वेतन, भत्ते आदि बढाए थे। वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को 2,80,000 रुपए और अन्य न्यायाधीशों को 2,50,000 रुपए मासिक वेतन मिलता है, जो भारत की संचित निधि से दिया जाता है । इसके अतिरिक्त अन्य भत्ते एवं निशुल्क निवास स्थान मिलता है। वित्तीय संकट काल को छोड़कर उनके कार्यकाल में उनके वेतन एवं भत्ते कम नहीं किया जा सकते हैं।

न्यायाधीशों की उन्मुक्तियाँ या प्रतिरक्षा (Immunities of the Judges) - न्यायाधीश स्वतन्त्रतापूर्वक अपना कार्य कर सकें इसके लिए इनके न्याय-सम्बन्धी कार्यों एवं निर्णयों को आलोचना से मुक्त रखा गया है। यहां तक कि संसद में भी सर्वोच्च न्यायालय के किसी निर्णय अथवा किसी न्यायाधीश के आचरण पर बहस नहीं की जा सकती है। संसद में ऐसा उसी अवस्था में किया जा सकता है, जब किसी न्यायाधीश को उसके पद से हटाने के लिए 'महाभियोग प्रस्ताव' पर किसी सदन में बहस चल रही हो। न्यायाधीशों के फैसले की आलोचना करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध 'न्यायालय की अवमानना' (contempt of Court) की कार्यवाही की जाती है।

पृथक् स्थापना (Separate Establishment)- संविधान के अनुच्छेद 146 में सर्वोच्च न्यायालय की पृथक् स्थापना की व्यवस्था की गयी है। इसके अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति और इनकी सेवा-सम्बन्धी शर्ते सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्वयं तय की जाती हैं। इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय के प्रशासकीय खर्च देश की संचित निधि से किए जाते हैं। इस कारण भी सर्वोच्च न्यायालय संसद अथवा अन्य किसी संस्था के नियन्त्रण से स्वतन्त्र है।

पद की शपथ (Oath of Office)- संविधान के अनुच्छेद 124(6) के अन्तर्गत प्रत्येक वह व्यक्ति, जो सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अथवा न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है. अपना पद ग्रहण करते समय राष्ट्रपति या उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य अधिकारी के सामने भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा एवं निष्ठा बनाए रखने की शपथ लेता है।

सर्वोच्च न्यायालय का स्थान (Seat of Supreme Court)- सर्वोच्च न्यायालय देश की राजधानी नई दिल्ली में स्थित है, किन्तु अनुच्छेद 130 के अनुसार मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से इसकी बैठक अन्य किसी स्थान पर करने का निर्णय ले सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्रधिकार

(Jurisdiction of the Supreme Court)

सर्वोच्च न्यायालय देश का सबसे बड़ा न्यायालय है। इस नाते इसका क्षेत्राधिकार बहुत व्यापक है। सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है-

1. प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)- भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को कुछ मुकदमों के विषय में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। इसका अर्थ यह है कि ये मुकदमे सीधे सर्वोच्च न्यायालय में प्रारंभ किए जा सकते हैं या ले जाए जा सकते हैं अर्थात् इन्हें पहले किसी निम्न स्तरीय न्यायालय में ले जाने की आवश्यकता नहीं होती है। सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

(i) अनन्य क्षेत्राधिकार (Exclusive Jurisdiction)- इस श्रेणी में वे विवाद आते हैं, जिनको सुनने का अधिकार किसी अन्य न्यायालय को नहीं बल्कि केवल सर्वोच्च न्यायालय को ही है। संविधान के अनुच्छेद 131 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को निम्नलिखित मुकदमों के सम्बन्ध में प्रारंभिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है-

(क) भारत सरकार एवं एक अथवा एक से अधिक राज्यों के बीच उत्पन्न विवाद।

(ख) ऐसे विवाद, जिसमें एक ओर भारत सरकार एवं एक राज्य या एक से अधिक राज्य हों और दूसरी ओर एक या एक से अधिक राज्य हो।

(ग) दो अथवा दो से अधिक राज्यों के बीच विवाद।

टी.एन. कावेरी संगम बनाम भारत संघ मुकद्मे (1990) में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार अन्तर्राज्य जल विवाद भी इस न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार में शामिल हो गए हैं।

(ii) मौलिक अधिकारों की रक्षा के संबंध में क्षेत्राधिकार (Concurrent Original Jurisdiction) — मौलिक अधिकारों की रक्षा का दायित्व सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालयों को भी सौंपा गया है। संविधान के अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus), परमादेश (Mandamus), प्रतिबन्ध (Prohibition), उत्प्रेषण (Certiorari) एवं अधिकार-पृच्छा (Quo-uurranto) के लेख (Writs) जारी कर सकता है।

(iii) संविधान का संरक्षक (Guardian of the Constitution) - भारतीय संविधान देश का सर्वोच्च कानून है। यदि संसद कोई ऐसा कानून बना दे या कार्यपालिका कोई ऐसा आदेश जारी कर दे, जो संविधान का उल्लंघन करता हो, तो सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनर्निरीक्षण की अपनी शक्ति का प्रयोग करके उसे असंवैधानिक (Unconstitutional) घोषित कर सकता है। अपनी इसी शक्ति का प्रयोग करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण-सम्बन्धों अधिनियम, और 1971 में देशी राजाओं के प्रिवी पर्स समाप्त करने वाले अध्यादेश को असंवैधानिक घोषित कर दिया था। 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा संसद को, अनुच्छेद 368 के तहत, संविधान के किसी भी अनुच्छेद में संशोधन करने का अधिकार दे दिया गया था, किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ मुकदमे (1980) में निर्णय दिया कि यह व्यवस्था 'संविधान के मूलभूत ढाँचे' (Basic Structure of the Constitution) का उल्लंघन करती है।

(iv) राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित विवाद (Disputes concerning Elections of President and Vice-President)- 39वें संशोधन अधिनियम, (1975) द्वारा राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित विवादों का निर्णय करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय छीन लिया गया था और यह व्यवस्था की गयी थी कि राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के चुनाव-संबंधी विवादों का निपटारा करने के लिए संसद कानून बनाकर किसी संस्था अथवा सत्ता की स्थापना करेगी। , परंतु इससे पहले इस विषय में उसका निर्णय अन्तिम होता था। 44वें संशोधन अधिनियम (1978) के द्वारा राष्ट्रपति एवं उप-

राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित विवादों एवं सन्देहों को सुनने का अधिकार पुनः सर्वोच्च न्यायालय को दे दिया गया। इस प्रकार अब ये विवाद सीधे सर्वोच्च न्यायालय ले जाए जा सकते हैं।

2. अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)- सर्वोच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार में ऐसे मुकदमे आते हैं, जिनका आरम्भ निचले न्यायालयों से होता है। इस क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनता है। सर्वोच्च न्यायालय के इस क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है-

(i) संवैधानिक मामले (Consitutional)- संविधान के अनुच्छेद 132 के अन्तर्गत यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि इस मुकदमे में संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित कानून का कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न निहित है, तो उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में उक्त मुकद्में की अपील की जा सकती है। यदि उच्च न्यायालय ऐसा न करें, तो अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय स्वयं भी ऐसी अपील करने की विशेष आज्ञा दे सकता है. यदि वह सन्तुष्ट हो कि मुकदमा इस प्रकार का है। इस प्रकार से सर्वोच्च न्यायालय संविधान का अन्तिम व्याख्याकार बन जाता है।

(ii) दीवानी मामले (Civil)-मूल संविधान के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय में किसी उच्च न्यायालय के केवल ऐसे निर्णय के विरुद्ध अपील को जा सकती थी, जिसमें झगड़े की राशि ₹ 20 हजार या इससे अधिक मूल्य की हो। आगे चलकर पहले इस शशि की सीमा को बढ़ाकर ₹ 50,000 और बाद में ₹ 1,00,000 कर दिया गया। किंतु 30वें संशोधन अधिनियम (1972) द्वारा धन-राशि की इस सीमा को हटा दिया गया और निश्चित किया गया कि उच्च न्यायालय से सर्वोच्च न्यायालय में ऐसे दीवानी मुकदमे की अपील की जा सकेगी, जिसमें अनुच्छेद 133 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा यह प्रमाणित कर दिया जाए कि इस विवाद में कानून से सम्बन्धित कोई महत्वपूर्ण प्रश्न निहित है या विवाद सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए जाने योग्य है।

(iii) फौजदारी मामले (Criminal)- संविधान के अनुच्छेद 134 के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध निम्नलिखित दो प्रकार के फौजदारी मुकदमों की अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है-

(क) यदि मुकदमे में किसी अधीनस्थ न्यायालय ने अपराधी को बरी कर दिया हो, किन्तु अपील करने पर उच्य न्यायालय ने उसको मृत्यु दण्ड दिया हो।

(ख) यदि उच्च न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायालय में चल रहे किसी मुकदमे को अपने पास मंगवा लिया हो और अपराधी को मृत्यु दण्ड दिया हो।

इसके अतिरिक्त, यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि मुकदमा सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने योग्य है. तो सर्वोच्च न्यायालय में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील दायर की जा सकती है।

(iv) विशेष अपीलें सुनना (Special Appellate Jurisdiction)- संविधान के अनुच्छेद 136 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय अपनी इच्छानुसार पीड़ित व्यक्ति को उच्च न्यायालय या देश के किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण (सैनिक न्यायालय या न्यायाधिकरण को छोड़कर) के निर्णय, आज्ञा (Decree) दण्ड या आदेश के विरुद्ध अपील करने की विशेष आज्ञा दे सकता है. यदि वह यह अनुभव करे कि मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों (Principles of Natural Justice) का उल्लंघन हुआ है। सर्वोच्च न्यायालय की यह शक्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है।

3. परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार (Advisory Jurisdiction) - संविधान के अनुच्छेद 143 के अन्तर्गत राष्ट्रपति कानून के किसी प्रश्न या सार्वजनिक महत्त्व के मामले में सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श ले सकता है, किन्तु राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने 2 जून, 1974 को राष्ट्रपति को परामर्श देते हुए कहा था कि अनुच्छेद 62 के अनुसार राष्ट्रपति का चुनाव पूर्व राष्ट्रपति के कार्यकाल के समाप्त होने से पहले कराया जाना आवश्यक है. भले ही उस समय कोई विधान सभा भंग हो।

4. अभिलेख न्यायालय (Court of Record) - सर्वोच्च न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय भी है। इसका अर्थ यह है कि इसकी समस्त कार्यवाहियों एवं निर्णयों को रिकार्ड रखने के लिए प्रकाशित किया जाता है। इसके निर्णय न्यायिक दृष्टांत

(Judicial Precedent) के रूप में निचली अदालतों में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ये निर्णय निचली अदालतों के लिए बाध्यकारी होते हैं और निचली अदालतों द्वारा इनको समान किस्म के मुकदमों में लागू किया जाता है।

5. विविध शक्तियाँ (Miscellaneous Powers) - उपर्युक्त शक्तियों के अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय को कुछ विविध शक्तियाँ भी प्राप्त हैं: जैसे-

(i) संविधान के अनुच्छेद 137 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को अपने निर्णयों पर पुनर्विचार (Review) करने की शक्ति प्राप्त है।

(ii) सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक कार्यवाही को नियमित करने के लिए समय-समय पर नियम बनाने का अधिकार है।

(iii) 42वें संशोधन अधिनियम, (1976) द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 139-A जोड़ा गया है. जिसके द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि वह शीघ्र न्याय दिलाने के उद्देश्य से किसी मुकदमे को एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में भेज सकता है।

(iv) सर्वोच्च न्यायालय को अपने पदाधिकारियों की नियुक्तियां एवं सेवा-शर्ते निर्धारित करने का अधिकार है। यह नियुक्तियां वह स्वयं या संघ लोक सेवा आयोग के परामर्श से करता है।

स्थिति (Position)- निसन्देह, भारतीय संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को व्यापक शक्तियों प्रदान की गयी हैं, तब भी यह अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय जितना शक्तिशाली नहीं है, क्योंकि भारत का सर्वोच्च न्यायालय संसद या राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानून को उसी स्थिति में असवैधानिक घोषित कर सकता है, यदि उसने कानून निर्माण करते समय कानून-निर्माण की अपनी शक्ति का उल्लंघन किया हो। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के विपरीत, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय इस आधार पर किसी कानून को असंवैधानिक घोषित नहीं कर सकता है कि यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन करता है. क्योंकि भारतीय संविधान में अमेरिकी संविधान में प्रयुक्त 'कानून की उचित प्रक्रिया' (Due Process of Law) शब्दावली के स्थान पर 'कानून द्वारा स्थापित विधि' (Procedure Established by Late) शब्दावली का प्रयोग किया गया है। फिर भी, जिस तरह भारत में सर्वोच्य न्यायालय को संविधान का रक्षक बनाया गया है और इसे संविधान की व्याख्या करने का अधिकार दिया गया है. उससे स्पष्ट है कि इसकी स्थिति बहुत सुदृढ़ है।

उच्च न्यायालय (High Courts)

भारत में एकीकृत न्याय व्यवस्था मौजूद है. जिसके शिखर पर सर्वोच्च न्यायालय स्थित है। इसके अधीन विभिन उच्च न्यायालय कार्यरत हैं। संविधान के **अनुच्छेद 214** के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय की व्यवस्था को गयी है। इसके अतिरिक्त, **अनुच्छेद 231 में यह भी कहा गया है कि संसद दो या दो से अधिक राज्यों और संघीय क्षेत्र के लिए एक उच्च न्यायालय की व्यवस्था कर सकती है।** इसी दृष्टि से संसद द्वारा पंजाब, हरियाणा एवं संघीय क्षेत्र चण्डीगढ़ के लिए चण्डीगढ़ स्थित एकल उच्च न्यायालय की व्यवस्था की गयी है। 2013 में मणिपुर, मेघालय एवं त्रिपुरा में पृथक उच्च न्यायलयों की स्थापना के बाद देश में उच्च न्यायालयों की संख्या बढ़कर 24 हो गयी है।

रचना (Composition) - संविधान के अनुच्छेद 216 में उच्च न्यायालयों की रचना का उल्लेख किया गया है। प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और कुछ अन्य न्यायाधीश होते हैं। राज्य की आवश्यकता को देखते हुए इनकी संख्या राष्ट्रपति द्वारा तय की जाती है। जैसे पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या 68 तय की गयी है, जब कि हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय में इनकी संख्या 11 रखी गयी है। काम की अधिकता को ध्यान में रखते हुए किसी उच्च न्यायालय में दो वर्ष के लिए अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति भी की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति की स्वीकृति से उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश उच्च न्यायालय के किसी सेवा निवृत्ति न्यायाधीश से भी न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए अनुरोध कर सकता है।

योग्यताएँ (Qualifications) - भारतीय संविधान के अनुच्छेद 217 के अनुसार उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के

लिए व्यक्ति के पास निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिएं-

1. वह भारत का नागरिक हो।

2. वह भारतीय क्षेत्र में कम-से-कम 10 वर्ष तक किसी न्यायिक पद पर कार्य कर चुका हो।

अथवा

वह किसी एक या एक से अधिक उच्च न्यायालयों में लगातार 10 वर्षों तक वकालत कर चुका हो।

न्यायाधीशों की नियुक्ति (Appointment of the Judges) - उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। इन न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, राज्य के राज्यपाल सम्बन्धित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से भी सलाह लेता है। उल्लेखनीय है कि 1993 में दिए एक फैसले में सर्वोच्च न्यायालय की नौ-सदस्य खण्डपीठ ने स्पष्ट किया था कि राष्ट्रपति के लिए उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में न्यायपालिका (अर्थात सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश) की सलाह बाध्यकारी होगी। आगे चलकर 1998 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि इस विषय में राष्ट्रपति को सलाह देने से पूर्व मुख्य न्यायाधीश को सर्वोच्च न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों से लिखित स्वीकृति/राय लेनी होगी।

कार्यकाल (Term of Office) — उच्च न्यायालय के न्यायाधीश 62 वर्ष की आयु पूरी होने तक अपने पद पर काम करते हैं, किन्तु वे इससे पूर्व भी अपने पद से त्याग-पत्र दे सकते हैं। राष्ट्रपति किसी न्यायाधीश को 62 वर्ष की आयु पूरा करने से पहले भी पद से हटा सकता है, यदि संसद के दोनों सदन अलग-अलग कुल सदस्य संख्या के बहुमत से और सदन में उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को प्रमाणित कदाचार (Proved Misbehaviour) या अक्षमता (Incapacity) के अपराध का दोषी ठहराते हुए इस आशय का एक प्रस्ताव पारित करके राष्ट्रपति को भेज दें।

वेतन एवं भत्ते (Salary and Allowances) - उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का वेतन एवं भते संसद द्वारा तय किए जाते हैं। वर्तमान में उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों को क्रमशः ₹ 250,000 एवं ₹225,000 मासिक वेतन मिलता है। वेतन के अतिरिक्त इन्हें कई प्रकार के भत्ते भी मिलते हैं। न्यायाधीशों के कार्यकाल में इनके वेतन एवं भत्तों में किसी प्रकार की कटौती नहीं की जा सकती है, किन्तु अनुच्छेद 360 के अन्तर्गत लागू वित्तीय संकट काल के समय इनके वेतन एवं भत्तों में कटौती की जा सकती है।

शपथ (Oath) - संविधान के अनुच्छेद 219 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को अपना पद ग्रहण करते समय राज्यपाल के समक्ष यह शपथ लेनी होती है कि वह संविधान में आस्था रखेगा; अपने कर्त्तव्यों का ईमानदारी से पालन करेगा और संविधान की रक्षा करेगा।

न्यायाधीशों का स्थानान्तरण (Transfer of the Judges) - राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानान्तरण कर सकता है। अक्टूबर, 1998 में सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रपति को परामर्श देते हुए स्पष्ट किया था कि सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को उच्ब न्यायालय के किसी न्यायाधीश के स्थानान्तरण के विषय में दोनों उच्च न्यायालयों (जिससे स्थानान्तरण किया जा रहा है और जिसको स्थानान्तरण किया जा रहा है) के मुख्य न्यायाधीशों की राय लेनी चाहिए।

वकालत करने पर प्रतिबन्ध (Prohibition on Legal Practice)— सेवा निवृत्त होने के पश्चात् उच्च न्यायालय का न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय या किसी अन्य राज्य के उच्च न्यायालय में वकालत कर सकता है, किन्तु वह उस उच्च न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता, जहाँ से वह सेवा-निवृत्त हुआ है।

उच्च न्यायालयों का क्षेत्रधिकार एवं शक्तियाँ (Jurisdiction and Powers of High Courts)

जब तक संविधान के अनुच्छेद 231 के तहत संसद दो या दो से अधिक राज्यों के लिए साझा उच्च न्यायालय स्थापित न करे अथवा किसी उच्च्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को किसी संघीय क्षेत्र (Union Territory) तक न बढ़ाए, तक तक प्रत्येक राज्य का समस्त क्षेत्र अपने उच्च न्यायालय के भौगोलिक क्षेत्राधिकार में आता है। सविधान के अनुच्छेद 225 के संदर्भ में उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)- संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत वे मामले आते हैं, जो सीधे इस न्यायालय में सुनवाई के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं। उच्च न्यायालय का प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार की अपेक्षा अधिक विस्तृत है, क्योंकि उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों के उल्लंघन सम्बन्धी मामलों के साथ-साथ साधारण कानूनी अधिकार के उल्लंघन सम्बन्धी मामलों की भी सीधे सुनवाई कर सकता है। कोलकाता, मुंबई एवं चेन्नई उच्च न्यायालयों में कुछ दीवानी एवं फौजदारी मुकद्दमे सीधे प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इनके लिए यह आवश्यक नहीं कि ये पहले अधीनस्थ न्यायालयों में दायर किए जाएँ, जैसा कि अन्य राज्यों में व्यवस्था है। नौकाधिकरण (Admiralty), इच्छा-पत्र अर्थात्, वसीयत (Probate), विवाह पद्धति, कम्पनी कानून एवं विवाह-विच्छेद आदि से सम्बन्धित मुकद्दमे भी सीधे उच्च न्यायालयों में दायर किए जा सकते हैं। उच्च न्यायालय भी नागरिकों के मौलिक अधिकारों का रक्षक है। यदि किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों का हनन होता है, तो वह अनुच्छेद 226 के अन्तगर्त सीधे उच्च न्यायालय में याचिका दायर कर सकता है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus), परमादेश (Mandamus), निषेध (Prohibition), उत्प्रेषण (Certiorari) या अधिकार -पृच्छा (Quo-warranto) के लेख (Writs) जारी करके हननकर्ता को ऐसा करने से रोक देता है।

2. अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)- सभी उच्च न्यायालयों को अपने अधीनस्थ न्यायालयों के फैसलों के विरुद्ध अपीलें सुनने का अधिकार है। इनके इस अधिकार को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) दीवानी (Civil)-दीवानी मामलों में उच्च न्यायालयों में पहली अपील (FRA) या दूसरी अपील (SRA) दायर की जा सकती है। पहली अपील का अभिप्रायः यह है कि जिला न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध सोधे उच्च न्यायालय में अपील दायर की जा सकती है। ऐसा तभी होता है, जब उस मुकदमे में कोई कानून एवं तथ्य-सम्बन्धी प्रश्न शामिल हो। दूसरी अपील वह अपील होती है, जब पहली अपील जिला स्तर का न्यायालय सुन चुका हो और जिला स्तरीय न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील दायर की जाए, किन्तु इसमें कोई कानून एवं प्रक्रिया सम्बन्धी प्रश्न निहित होना चाहिए।

यदि पहली या दूसरी अपील उच्च न्यायालय का एक न्यायाधीश सुन चुका है. तो अपीलीय क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत उसके निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय की दो सदस्य खण्डपीठ में भी अपील दायर की जा सकती है।

(ii) फौजदारी (Criminal)- निम्नलिखित फौजदारी मामलों में अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील दायर की जा सकती है-

(क) यदि सेशन जज ने किसी अपराधी को मृत्यु दण्ड दिया हो, तो उसकी पुष्टि उच्च न्यायालय से होनी चाहिए। अपराधी स्वयं भी उच्च न्यायालय में अपील दायर कर सकता है।

(ख) यदि सेशन जज ने किसी अपराधी को सात वर्ष या इसे अधिक की सजा सुनायी हो।

3. अभिलेख न्यायालय (Court of Record) - प्रत्येक उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय के रूप में भी कार्य करता है। इसकी सभी कार्यवाहियों एवं निर्णय प्रमाण के रूप में प्रकाशित किए जाते हैं, जिन्हें राज्य के सभी न्यायालयों द्वारा स्वीकार किया जाता है। इसके अलावा, एक राज्य के उच्च न्यायालय के निर्णय को दूसरे राज्य के उच्च न्यायालय में प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, किन्तु इन्हें दूसरे उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार करना अनिवार्य नहीं होता है। अपनी अवमानना (अपमान) के लिए उच्च न्यायालय किसी भी व्यक्ति को दण्डित कर सकता है। संविधान के अनुच्छेद 215 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है, "प्रत्येक उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय के रूप में कार्य करेगा और इस न्यायालय को अवमानना के लिए दण्डित करने की शक्ति सहित, शक्तियाँ प्राप्त होंगी।"

4. प्रशासनिक शक्तियाँ (Administrative Powers) —प्रत्येक च्च न्यायालय को कुछ प्रशासन सम्बन्धी शक्तियों भी प्राप्त है; जैसे-

(i) वह अपने अधीनस्थ किसी भी न्यायालय से दस्तावेज मंगवाकर उनको जाँच-पड़ताल कर सकता है।

(ii) वह यह भी देखता है कि कोई अधीनस्थ न्यायालय अपनी सीमा का उल्लंघन तो नहीं कर रहा है और अपने कर्तव्यों का कानून के अनुसार ही पालन कर रहा है।

(iii) वह किसी मुकदमे को एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में भेज सकता है।

(iv) यह अधीनस्थ न्यायालयों के अधिकारियों की नियुक्ति, पदोन्नति, अवनति, एवं छुट्टी के बारे में नियम बनाता है।

(v) यदि किसी अधीनस्थ न्यायालय में ऐसा मुकदमा चल रहा हो, जिसमें संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित कोई प्रश्न निहित हो, तो वह उस मुकदमे को अपने पास मंगवाकर उसमें निर्णय दे सकता है।

(vi) वह अपने अधीनस्थ न्यायालयों को कार्य प्रणाली, रिकार्ड, रजिस्टर बना सकता है और इनका हिसाब-किताब देख सकता है।

5. न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति (Power of Judicial Review) भारत में संविधान सर्वोच्च है। इसकी व्याख्या एवं रक्षा करने का दायित्व सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों दोनों को सौंपा गया है। इस लिए उच्च न्यायालय राज्य विधानपालिका द्वारा निर्मित कानूनों एवं कार्यपालिका द्वारा जारी आदेशों को संवैधानिकता की जाँच करता है और संविधान के अनुकूल न होने पर इन्हें अवैध घोषित कर सकता है। उच्च न्यायालय का यह कार्य न्यायिक पुनर्निरीक्षण कहलाता है। 43वें संशोधन अधिनियम (1978) के अन्तर्गत फिर से केन्द्रीय कानून भी इसकी परिधि में आ गए हैं।

उच्च न्यायालय द्वारा जारी किए जाने लेख (Writs to Be Issued by High Courts) — भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय नागरिकों के मूल अधिकारों के प्रवर्तन (Enforcement) और अन्य उद्देश्य के लिए लेख (Writs) जारी कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय भी अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत नागरिकों के मूल अधिकारों के प्रवर्तन के उद्देश्य से लेख जारी कर सकता है। किन्तु लेख जारी करने के विषय में उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार से अधिक विस्तृत है, क्योंकि यह मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए ही नहीं, बल्कि अन्य कानूनी अधिकारों के प्रवर्तन के लिए भी ऐसा कर सकता है, जब कि सर्वोच्च न्यायालय केवल मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए ही ऐसा कर सकता है।

सविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय निम्नलिखित पाँच प्रकार के लेख जारी कर सकता है-

(i) बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख (Writ of Habeas Corpus)- इस लेख के अनुसार उच्च न्यायालय सरकार को आज्ञा दे सकता है कि गैर-कानूनी ढंग से बन्दी बनाए गए व्यक्ति को नियत स्थान एवं नियत समय पर प्रस्तुत किया जाए। उच्च न्यायालय गैर-कानूनी ढंग से गिरफ्तारी की दशा में व्यक्ति को रिहा करने का आदेश दे सकता है।

(ii) परमादेश लेख (Writ of Mandamus)- इस लेख के द्वारा उच्च न्यायालय किसी पदाधिकारी या संस्था को उसके सार्वजनिक दायित्वों को पूरा करने का आदेश देता है। उदाहरण के लिए, अगर कोई कम्पनी किसी घायल मजदूर जिसे श्रमिक कानून के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार है, को क्षतिपूर्ति नहीं देती है, तो वह मजदूर उच्च न्यायालय द्वारा परमादेश लेख जारी करवा सकता है अर्थात् उच्च न्यायालय उस कम्पनी के लिए यह आदेश जारी कर सकता है कि वह उसे क्षतिपूर्ति दे।

(iii) निषेध लेख (Writ of Prohibition)- इस लेख के द्वारा उच्च न्यायालय किसी निम्न न्यायालय को, यह आदेश देता है कि वह अमुक कार्य, जो उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है न करें अथवा एकदम बन्द कर दे।

(iv) उत्प्रेक्षण लेख (Writ of Certiorari)- इस लेख के द्वारा उच्च न्यायालय, किसी निम्न न्यायालय के समक्ष विचारार्थ

किसी मुकदमे को अपने पास मंगा लेता है। यह आदेश तब जारी किया जाता है, जब उच्च न्यायालय यह अनुभव करे कि विवाद निम्न न्यायालय के क्षेत्राधिकार के बाहर है या यह न्यायालय ठीक से न्याय नहीं करने जा रहा है।

(v) अधिकार-पृच्छा लेख (Writ of Quo-warranto)- यह लेख उस समय जारी किया जाता है, जब कोई प्राधिकारी किसी ऐसे कार्य को करने का दावा करता हो, जिसको करने का उसको कानूनी अधिकार न हो। उच्च न्यायालय इस बात की जाँच करता है कि उस प्राधिकारी को ऐसा करने का अधिकार है या नहीं।

न्यायपालिका की स्वतन्त्रता (Independence of Judiciary)

स्वतन्त्र न्यायपालिका से हमारा अभिप्राय: ऐसी न्यायपालिका से है, जिस पर कोई बाहरी नियन्त्रण न हो अर्थात जिस पर विधानपालिका, कार्यपालिका या किसी अन्य संस्था का नियन्त्रण न हो। अन्य शब्दों में, ऐसी न्यायपालिका, जो सभी प्रकार के बाहरी प्रभावों से मुक्त रहते हुए अपना कार्य करती है, स्वतन्त्र न्यायपालिका कहलाती है। भारतीय संविधान निर्माता देश में स्वतन्त्र न्यायपालिका की स्थापना करना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने भारतीय संविधान में ऐसी अनेक व्यवस्थाएँ की है, जो न्यायपालिका की स्वतन्त्रता सुनिश्चित करती है; जैसे-

1. न्यायाधीशों की नियुक्ति का तरीका (Mode of Appointment of Judges)- भारतीय संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति किसी एक व्यक्ति या संस्था को नहीं सौंपी गयी है। संविधान के अनुच्छेद 124 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों को नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, किन्तु नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति के लिए सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श लेना आवश्यक है। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में मुख्य न्यायाधीश के लिए सर्वोच्च न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों से विचार-विमर्श करना जरूरी है।

2. न्यायाधीशों की योग्यताएँ (Qualifications of Judges)- न्यागपालिका की स्वतन्त्रता को सुनिश्चित करने के लिए संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की योग्यताएँ निर्धारित की गयी हैं। स्पष्ट है कि निर्धारित योग्यताएँ रखने वाला व्यक्ति ही सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया जा सकता है। न्यायाधीशों की योग्यताओं में शैक्षणिक योग्यताओं के अतिरिक्त व्यावसायिक योग्यताएँ एवं अनुभव को भी शामिल किया गया है।

3. न्यायाधीशों के वेतन (Salaries of Judges) - न्यायपालिका की स्वतन्त्रता बनाए रखने के लिए यह भी जरूरी है कि न्यायाधीशों को उच्च वेतन दिया जाए, ताकि वे अपने पद की प्रतिष्ठा के अनुरूप जीवन-स्तर बनाए रख सकें। वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को ₹ 2,80,000, और अन्य न्यायाधीशों को ₹ 2,50,000 और उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों को ₹ 2,50,000 एवं अन्य न्यायाधीशों को ₹ 2,25,000 मासिक वेतन मिलता है। इसके अलावा, इन्हें कई प्रकार के भते. सुसन्जित आवास एवं पेंशन भी मिलती है। साथ ही, संविधान में यह भी व्यवस्था की गयी है कि न्यायाधीशों के कार्यकाल के दौरान इनके वेतन, भते एवं अन्य सुविधाओं में कोई कटौती नहीं की जा सकती है।

4. न्यायाधीशों की सेवा-सुरक्षा (Security of Service of Judges)- न्यायपालिका की स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए न्यायाधीशों की सेवा की सुरक्षा होनी चाहिए। इसके लिए न तो न्यायाधीशों की नियुक्ति अल्पकाल के लिए की जानी चाहिए और न ही इन्हें सरकार द्वारा पद से हटाए जाने का भय होना चाहिए। भारत में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु पूरी होने तक और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश 62 वर्ष की आयु पूरी होने तक अपने पद पर आसीन रहते हैं। ये चाहे, तो कभी भी अपने पद से त्याग-पत्र दे सकते हैं। जहाँ तक न्यायाधीशों को कार्यकाल पूरा होने से पहले पद से हटाने का प्रश्न है. इसके लिए संविधान द्वारा कठोर विधि तय की गयी है।

5. वकालत पर प्रतिबन्ध (Prohibition on Legal Practice)- न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को ध्यान में रखते हुए संविधान द्वारा न्यायाधीशों पर सेवा निवृत्ति के बाद वकालत करने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। संविधान में यह व्यवस्था की गयी है कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश सेवा निवृत्त होने के बाद भारतीय संघ के अन्दर किसी भी न्यायालय में वकालत

नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार यह व्यवस्था की गयी है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सेवा निवृत्ति के बाद उस उच्च न्यायालय में वकालत नहीं कर सकते हैं, जिससे वे सेवा निवृत्त हुए है, किन्तु वे सर्वोच्च न्यायालय या अन्य किसी उच्च न्यायालय में वकालत कर सकते हैं।

6. न्यायाधीशों के आचरण पर विधानमण्डल में चर्चा नहीं (No Discussion on the Conduct of Judges in Legislature)- न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को बनाए रखने के लिए भारतीय संविधान में यह व्यवस्था की गयी है कि न्यायाधीशों के आचरण पर किसी भी विधानमण्डल में चर्चा नहीं की जा सकती है। न्यायाधीशों के आचरण के विषय में 'महाभियोग प्रस्ताव' को छोड़कर संसद में भी कभी चर्चा नहीं की जा सकती है।

7. पृथक स्थापना (Separate Establishment)- संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों की स्वतन्त्रता को बनाए रखने के लिए इन्हें अपने कार्मिकों की नियुक्ति करने और उन पर नियन्त्रण स्थापित करने की शक्ति प्रदान की गयी है। अन्य शब्दों में, अपने कार्मिक(कर्मचारी) वर्ग की नियुक्ति, सेवा-शर्तों आदि के विषय में सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों को क्रमशः भारत सरकार एवं राज्य सरकारों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है।

8. न्यायालयों के निर्णय आलोचनाओं से मुक्त (Judgement of Courts Free from Criticism)- भारत में किसी व्यक्ति, संस्था या प्रेस द्वारा किसी न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की आलोचना नहीं की जा सकती है, क्योंकि ऐसा करना 'न्यायालय की अवमानना' माना जाता है, जो कि एक दण्डनीय अपराध है।

9. न्यायाधीशों का स्थानान्तरण (Transfer of Judges)- संविधान द्वारा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के स्थानान्तरण को शक्ति केन्द्र सरकार को न देकर, सर्वोच्च न्यायालय को दी गयी है। सर्वोच्च न्यायालय राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का स्थानांतरण तय प्रक्रिया के अनुसार करता है, इसमें सरकार का हस्तक्षेप नहीं होता है।

स्पष्ट है कि भारतीय संविधान द्वारा स्वतंत्र न्यायपालिका की स्थापना की गयी है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (important questions)

1. भारत के सर्वोच्च न्यायालय की रचना, शक्तियों एवं स्थिति का वर्णन कीजिए। (Discuss the composition, powers and position of Indian Supreme Court.)

2. भारत के सर्वोच्च न्यायालय के संगठन एवं अधिकार क्षेत्र का वर्णन कोजिए। (Discuss the composition and jurisdiction of the Supreme Court of India)

3. भारत के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया एवं क्षेत्राधिकार का वर्णन करें।

(Describe the process of appointment of Judges and jurisdiction of Supreme Court of India.)

4. उच्च न्यायालय के संगठन एवं क्षेत्राधिकार का वर्णन कीजिए।

(Describe the composition and jurisdiction of a High Court.)

5. राज्य के उच्च न्यायालय की संरचना, शक्तियों एवं क्षेत्राधिकार का वर्णन करें।

(Discuss the composition, powers and jurisdiction of the High Court of a state.)

6. भारतीय संविधान में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को बनाए रखने के लिए क्या व्यवस्थाएँ की गयी है? (What provisions have been made in the Constitution of India to ensure the independence of Judiciary?)

न्यायिक पुनर्निरीक्षण एवं न्यायिक सक्रियता [Judicial Review and Judicial Activism]

न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review)

संविधान देश का सर्वोच्च कानून होता है। इसका अभिप्रायः यह हुआ कि किसी व्यक्ति, संस्था या सरकार द्वारा संविधान का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए। विधानपालिका एवं कार्यपालिका द्वारा संविधान का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए अर्थात विधानपालिका को ऐसा कोई कानून नहीं बनाना चाहिए और कार्यपालिका को ऐसा कोई आदेश नहीं देना चाहिए, जो संविधान का उल्लंघन करता हो। इस बात की जाँच करने का कार्य कि विधानपालिका द्वारा निर्मित कोई कानून या कार्यपालिका द्वारा जारी कोई आदेश संविधान का उल्लंघन करता है या नहीं, न्यायपालिका को सौंपा गया है।

सरल शब्दों में, **न्यायिक पुनर्निरीक्षण /पुनरावलोकन का अर्थ** होता है- न्यायिक पुनर्निरीक्षण न्यायपालिका की वह शक्ति है जिसके द्वारा न्यायपालिका कार्यपालिका के आदेश तथा विधान पालिका के बनाए कानून की संवैधानिकता की जांच कर सकती है और संवैधानिक न पाए जाने पर उन्हें निरस्त कर सकती है।

न्यायापालिका द्वारा विधानपालिका द्वारा निर्मित कानूनों और कार्यपालिका द्वारा दिए गए आदेशों की संवैधानिकता की जाँच करना अर्थात न्यायपालिका द्वारा इस बात का परीक्षण करना कि विधानपालिका द्वारा निर्मित कोई कानून या कार्यपालिका द्वारा जारी कोई आदेश संविधान का उल्लंघन करता है या नहीं। यदि न्यायालय की दृष्टि में कोई कानून या कार्यकारी आदेश संविधान का उल्लंघन करता है, तो न्यायपालिका उसे असंवैधानिक घोषित कर देती है, जिसके परिणामस्वरूप वह रद्द हो जाता है।

पिनाँक एवं स्मिथ के शब्दों में, "न्यायिक पुनर्निरीक्षण न्यायालयों की वह शक्ति है, जो संविधान की व्याख्या करती है और वैधानिक, कार्यपालिका एवं प्रशासकीय कार्यों को सर्वोच्य कानून (संविधान) के विरुद्ध होने पर असंवैधानिक घोषित करती है।"

भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review in India)

ब्रिटेन की तरह, भारत में संसदीय शासन प्रणाली लागू की गयी है, लेकिन ब्रिटिश संसद की तरह, भारतीय संसद शक्तिशाली नहीं हैं। ब्रिटेन में ऐसी कोई संस्था नहीं हैं, जो संसद द्वारा निर्मित कानूनों को असंवैधानिक घोषित कर सकें।

इसके विपरीत, भारत में संसद द्वारा निर्मित कानूनों को इस आधार पर न्यायपालिका द्वारा रद्द किया जा सकता है कि ये संविधान का उल्लंघन करते हैं। भारत में यह कार्य सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों द्वारा किया जाता है। वास्तव में भारत में न्यायपालिका को पुनर्निरीक्षण की शक्ति प्रदान करके संविधान निर्माताओं ने संसदीय सर्वोच्चता एवं लिखित संविधान के मध्य ताल-मेल स्थापित किया गया है।

न्यायिक पुनर्निरीक्षण का आधार (Basis of Judicial Review) - यद्यपि भारतीय संविधान के किसी भी अनुच्छेद में सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालयों की न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का स्पष्ट वर्णन नहीं किया गया है, किन्तु संविधान के निम्नलिखित अनुच्छेद सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति अवश्य ही प्रदान करते हैं -

1. अनुच्छेद 13(2)- इस अनुच्छेद में कहा गया है, "राज्य किसी ऐसे कानून का निर्माण नहीं करेगा, जो संविधान के तृतीय भाग में दिए गए मौलिक अधिकारों को समाप्त करता है या कम करता है और इस उपबन्ध का उल्लंघन करने वाला कोई कानून उसी सीमा तक रद्द समझा जाएगा, जिस सीमा तक वह इनका उल्लंघन करता है।"

2. अनुच्छेद 32- इस अनुच्छेद में कहा गया है, "इस भाग (मौलिक अधिकार सम्बन्धी तृतीय भाग) में दिए गए अधिकारों को लागू कराने के लिए उचित कार्यवाही हेतु सर्वोच्च न्यायालय में जाने के अधिकार की गारण्टी दी जाती है। इसके तहत सुप्रीम कोर्ट अपनी पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

3. अनुच्छेद 132- यह अनुच्छेद सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार प्रदान करता है। इसमें कहा गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रमाणित किए जाने पर कि विवाद में संविधान की व्याख्या का आवश्यक प्रश्न निहित है, उसकी अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है।

4. अनुच्छेद 141-इस अनुच्छेद में कहा गया है, "सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून भारत के क्षेत्र में स्थित सभी न्यायालयों के लिए बाध्यकारी होंगे।"

5. अनुच्छेत 226- इस अनुच्छेद के तहत मौलिक अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में पीड़ित व्यक्ति उच्च न्यायालय का सहारा ले सकता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि कोई कानून या कार्यकारी आदेश संविधान के तृतीय भाग में दिए गए व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं कर सकता है।

6. अनुच्छेद 246 -इस अनुच्छेद में कानून बनाने की शक्तियों को तीन सूचियों में विभक्त करते हुए केन्द्र एवं राज्यों की शक्तियाँ निर्धारित की गयी हैं। इसका निहितार्थ यह हुआ कि यदि केन्द्र या राज्य अपनी सीमाओं के बाहर जाकर कोई कानून बनाएँगे, तो वह कानून सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया जाएगा।

7. 43वाँ संशोधन अधिनियम- 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा अनुच्छेद 368 में धारा 4 जोड़कर यह व्यवस्था की गयी है कि न्यायालय संशोधन अधिनियम की संवैधानिकता की जाँच नहीं कर सकते हैं। किन्तु 43वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा फिर से यह व्यवस्था कर दी गयी कि न्यायालय संशोधन अधिनियम की न्यायिक समीक्षा कर सकते हैं।

न्यायिक पुनर्निरीक्षण की सीमाएँ (Limitations on Judicial Review) - न्यायापालिका अर्थात सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय कुछ निश्चित सीमाओं में रहकर ही न्यायिक पुनर्निरीक्षण की अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं; जैसे-

1. न्यायालय इस शक्ति का प्रयोग तब ही कर सकते हैं, जब किसी कानून, कार्यकारी आदेश या संशोधन अधिनियम को किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा चुनौती दी जाती है।

2. **आई. आर. कोइलो *बनाम* तमिलनाडु राज्य** मुकदमें में सर्वोच्च न्यायालय के नौ न्यायाधीशों की खण्डपीठ के 11 जनवरी, 2007 के निर्णय के अनुसार संविधान की नौवीं अनुसूची में 24 अप्रैल, 1973 अर्थात केशवानन्द भारती मुकदमें में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की तिथि से पहले शामिल कानूनों का न्यायिक पुनर्निरीक्षण नहीं किया जा सकता है।

3. न्यायपालिका किसी कानून की उन्हीं धाराओं को असंवैधानिक घोषित कर सकती है, जो संविधान का उल्लघन करती हैं; समस्त कानून को नहीं।

4. न्यायपालिका द्वारा राजनीतिक प्रश्नों या नीतिगत मामलों (Policy Matters) का पुनर्निरीक्षण नहीं किया जा सकता है।

5. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अन्तर्राज्य नदी के जल के बँटवारे अथवा नियन्त्रण सम्बन्धी कानून का न्यायिक पुनर्निरीक्षण नहीं किया जा सकता है।

न्यायिक पुनर्निरीक्षण की प्रकृति (Nature of Judicial Review) - निःसन्देह, भारतीय संविधान द्वारा सर्वोच्च

न्यायालय को न्यायिक पुननिरीक्षण की शक्ति प्रदान की गयी है, किन्तु भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण का क्षेत्र इतना व्यापक नहीं है, जितना कि अमेरिका में, क्योंकि भारतीय संविधान में दिए गए कई उपबन्ध इसके क्षेत्र को सीमित कर देते हैं: जैसे-

1. अमेरिकी संविधान अति संक्षिप्त है, जिसके कारण वहाँ संघीय सरकार एवं राज्य सरकारों के मध्य विवाद उत्पन्न होते रहते हैं। ऐसे में वहाँ सर्वोच्च न्यायालय का न्यायिक पुनर्निरीक्षण का दायरा बढ़ गया है। भारतीय संविधान बहुत विशाल है , जिसमें केन्द्र एवं राज्यों के मध्य कानून निर्माण की शक्तियों का स्पष्ट रूप से विभाजन कर दिया गया है। यहाँ तक कि संविधान में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि अवशेष शक्तियाँ (Residuary Pouers) केन्द्र के पास होगी।

2. अमेरिका के संविधान के विपरीत, भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की संख्या तय कर दी गयी है। इन पर संविधान द्वारा कुछ प्रतिबन्ध लगा दिए गए हैं; जैसे-कानून एवं व्यवस्था, जन स्वास्थ्य, जन कल्याण, कदाचार आदि। इन प्रतिवन्धों के आधार पर सरकार नागरिकों के मौलिक अधिकार स्थगित कर सकती है। ऐसे में सर्वोच्च न्यायालय केवल इस बात की ही जाँच करता है कि सरकार ने अपनी शक्ति का प्रयोग ठीक प्रकार से किया है या नहीं।

3. अमेरिका के संविधान में '**कानून की उचित प्रक्रिया' (Due Process of Law**) शब्दावली का प्रयोग किया गया है। संविधान में प्रयुक्त इस शब्दावली के कारण वहाँ सर्वोच्च न्यायालय किसी कानून की संवैधानिकता का परीक्षण दो आधारों पर कर सकता है-प्रथम, क्या संघीय या राज्य विधानमण्डल, जिसने भी वह कानून बनाया है, को संविधान द्वारा उस कानून के बनाने की शक्ति प्रदान की गयी है या नहीं और द्वितीय, क्या वह कानून प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुकूल है या नहीं अर्थात क्या वह कानून वचित (Just) एवं युक्तियुक्त (Reasonable) है या नहीं।

इसके विपरीत, भारतीय संविधान में '**कानून द्वारा स्थापित विधि' (Procedure Established by Law)** शब्दावली का प्रयोग किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि यहाँ सर्वोच्च न्यायालय किसी कानून की संवैधानिकता की जाँच केवल इस आधार पर कर सकता है कि संसद या राज्य विधानमण्डल, जिसने भी वह कानून बनाया है, को उस कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है या फिर उसने अपनी शक्ति से परे जाकर उस कानून का निर्माण किया है। अन्य शब्दों में, भारत में सर्वोच्च न्यायालय किसी कानून की संवैधानिकता की जाँच इस आधार पर नहीं कर सकता है कि वह कानून प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुकूल है या नहीं अर्थात वह उचित एवं युक्तियुक्त है या नहीं।

स्पष्ट है कि अमेरिका की तरह, भारत में न्यायपालिका की सर्वोच्चता के सिद्धान्त को नहीं अपनाया गया है, बल्कि यहाँ न्यायपालिका की सर्वोच्चता और संसद की सम्प्रभुता के मध्य सन्तुलन स्थापित किया गया है।

न्यायिक पुनर्निरीक्षण की आलोचना (Criticism of Judicial Review)

न्यायिक पुनर्निरीक्षण की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की गयी है; जैसे-

1. लोकतन्त्र-विरोधी (Anti-democratic)— आलोचकों का कहना है कि संसद जन प्रतिनिधि संस्था है और इस जाते यह जनता के प्रति उत्तरदायी है। इसके विपरीत, न्यायाधीश न तो जनता के प्रतिनिधि होते हैं और न ही जनता के प्रति उत्तरदायी। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संसद या राज्य विधानमंडलों द्वारा निर्मित कानून का पुनर्निरीक्षण करना लोकतन्त्र विरोधी कार्य है।

2. दोषपूर्ण विधि (Defective Procedure)- भारत में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बहुमत के आधार पर फैसले दिए जाते हैं। ऐसे में, अकेले एक न्यायाधीश का मत किसी कानून को संवैधानिक या असंवैधानिक घोषित कर देने का कार्य कर सकता है। उदाहरण के लिए ***गोलकनाथ बनाम पंजाब सरकार मुकदमें (1967)*** में छः न्यायाधीशों का मत था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती है, जब कि पाँच न्यायाधीशों का यह मत था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है।

3. न्यायपालिका की तानाशाही की सम्भावना (Possibility of Judicial Despotism)- भारत में न्यायपालिका संसद या राज्य विधानमण्डलों द्वारा निर्मित कानूनों एवं कार्यकारी आदेशों का ही नहीं, बल्कि संशोधन अधिनियमों का भी पुनर्निरीक्षण करती है। ऐसे में न केवल शक्ति-सन्तुलन के सिद्धान्त के भंग होने की सम्भावना है, बल्कि न्यायपालिका की तानाशाही स्थापित होने की सम्भावना भी उत्पन्न हो जाती है।

4. संसद एवं सर्वोच्च न्यायालय में गतिरोध की सम्भावना (Possibility of Deadlock between Parliament and Supreme Court)- न्यायपालिका की पुनर्निरीक्षण की इस शक्ति के कारण संसद एवं सर्वोच्च न्यायालय में गतिरोध उत्पन्न होने की सम्भावना बनी रहती है और कई बार ऐसा हुआ भी है। गोलकनाथ मुकदमे (1967) में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती है। इस निर्णय को बेअसर करने के लिए संसद को संविधान

में 24 वाँ संशोधन करना पड़ा था। जब इस संशोधन को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी, तो सर्वोच्च न्यायालय ने इसका पुनर्निरीक्षण करते हुए निर्णय दिया कि संसद संविधान में तो संशोधन कर सकती हैं. किन्तु 'संविधान के मूलभूत ढाँचे' में संशोधन नहीं कर सकती है।

5. प्रगतिशील कानूनों के मार्ग में अड़चन (Hindrances in the Way of Progressive Laws)- भारत में जिस प्रकार से सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक पुनर्निरीक्षण की अपनी शक्ति का प्रयोग किया है, उससे प्रगतिशील कानूनों के मार्ग में अड़चनें पैदा हुई हैं। उदाहरण के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने ज़मींदारी उन्मूलन कानूनों और भूमि सुधार कानूनों के मार्ग में अडचने पैदा की हैं। सर्वोच्च न्यायालय का यही रवैया बैंकों के राष्ट्रीयकरण एवं प्रिवी पर्स वाले मामलों में भी रहा है।

6. प्रशासनिक समस्याएँ (Administrative Complexities)- कई बार न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति की वजह से कुछ प्रशासनिक समस्याएं सामने आ जाती हैं। उदाहरण के लिए 11 जनवरी, 2007 को अपने समक्ष आए एक मुकदमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह फैसला दिया था कि 24 अप्रैल, 1973 के बाद नौवीं अनुसूची में डाले गए उन कानूनों का पुनर्निरीक्षण किया जा सकता है, जो मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

न्यायिक पुनर्निरीक्षण का महत्व

(Significance of Judicial Review)

इसके महत्व या औचित्य को निम्नलिखित आधारों पर सिद्ध किया जा सकता है-

1. सत्तारूढ़ दल की तानाशाही से संरक्षण (Protection against the Tyranny of Ruling Party) - भारत में सत्तारूढ़ दल अपने हितों की पूर्ति के लिए बेतुके कानूनों का निर्माण करने या बेतुके निर्णय लेने से पीछे नहीं रहते हैं। पीड़ित व्यक्ति ऐसे कानूनों को सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालयों में चुनौती दे सकता है। ऐसे में न्यायपालिका ऐसे ही कानून को रद्द कर सकती है।

2. नागरिकों के मौलिक अधिकारों का संरक्षण (Protection of Fundamental Rights of Citizens) - न्यायिक पुनर्निरीक्षण का प्रमुख महत्व यह है कि इसके कारण नागरिकों के मौलिक अधिकार सुरक्षित रहते हैं। जब कभी संसद अथवा राज्य विधानमण्डल कोई ऐसा कानून बना देते हैं या फिर केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार कोई ऐसा आदेश जारी कर देती है, जिससे नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो पीड़ित व्यक्ति उसको न्यायालय में चुनौती देकर, न्यायालय से राहत (Relief) प्राप्त कर सकते हैं। भारत में अनेक बार ऐसा हुआ है।

3. संविधान का संरक्षण (Protection of the Constitution)— भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की रक्षा करने का कार्य किया है। जब किसी सरकार द्वारा कोई ऐसा कदम उठाया गया, जिससे संविधान का उल्लंघन हुआ, तो चुनौती दिए जाने पर सर्वोच्च न्यायालय ने उसे असंवैधानिक घोषित कर डाला। केशवानन्द भारती मुकदमें (1973) में यह निर्णय देना कि संसद 'संविधान के मूलभूत ढाँचे' में संशोधन नहीं कर सकती है, संविधान की रक्षा की दिशा में उठाया गया उल्लेखनीय कदम है।

4. संविधान की व्याख्या (Interpretation of the Constitution)- भारत का संविधान विश्व का सर्वाधिक विशाल संविधान है, फिर भी, अनेक बातों के विषय में यह या तो मौन है या फिर अस्पष्ट। ऐसे में इसकी व्याख्या करना न्यायपालिका का दायित्व हो जाता है।

5. संघात्मक व्यवस्था के लिए आवश्यक (Necessary for Federal System)- संघात्मक व्यवस्था की सफलता के लिए सविधान में न्यायिक पुनर्निरीक्षण की व्यवस्था करना आवश्यक है, क्योंकि यहाँ क्षेत्राधिकार को लेकर संघ एवं राज्यों के मध्य विवाद उत्पन्न हो सकते हैं। जी. एन, जोशी के शब्दों में, "यह देखना न्यायालयों का सकारात्मक कर्तव्य है कि संघ एवं राज्य

दोनों अपने-अपने निश्चित क्षेत्राधिकार में कार्य करें।

6. संविधान के विकास में सहायक (Helpful in the Evolution of the Constitution)- निरन्तर बदलती घरेलू एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुसार संविधान का विकास होते रहना जरूरी है। संविधान को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ढालने के कार्य में न्यायिक पुनर्निरीक्षण की भी भूमिका होती है। यही कारण है कि अमेरिकी संविधान में बहुत कम संशोधनों के बाद भी इस संविधान को उखाड़ फेंका नहीं गया। भारत में न्यायपालिका ने संविधान को विकसित करने का कार्य किया है। मेनका गाँधी मुकदमे (1978) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ए. के. गोपालन मुकदमे (1950) में दिए फैसले को उलट देना यही सिद्ध करता है।

न्यायिक सक्रियता

(Judicial Activism)

विधानपालिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका सरकार के तीन प्रमुख अंग होते हैं और इन तीनों अंगों की शक्तियाँ एवं क्षेत्राधिकार राज्य के संविधान द्वारा निर्धारित कर दिए जाते हैं। भारत में संसदीय शासन प्रणाली लागू की गयी है और संविधान द्वारा सरकार के इन तीनों अंगों का क्षेत्राधिकार निर्धारित किया गया है। अपने निर्धारित क्षेत्राधिकार के अन्दर रहते हुए अपने कार्य पूरा करना सरकार के इन तीनों अंगों के लिए आवश्यक है, किन्तु पिछले कुछ वर्षों से भारत में न्यायपालिका जिस प्रकार से अपना कार्य कर रही है, उसको देखते हुए संवैधानिक विशेषज्ञों एवं राजनीतिज्ञों ने यह विचार व्यक्त किया कि भारत में न्यायपालिका सक्रिय हो रही है।

न्यायिक सक्रियता का अर्थ (Meaning of Judicial Activism)- न्यायपालिका का कार्य उसके समक्ष प्रस्तुत विवादों का निर्णय करना है। ऐसे निर्णय संविधान एवं कानूनों के द्वारा तय कानूनी प्रक्रिया के अनुसार दिए जाते है। न्यायपालिका के ऐसे निर्णयों को न्यायिक सक्रियता का नाम नहीं दिया जाता है। किन्तु जब न्यायपालिका अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर कार्यपालिका अधवा विधानपालिका के क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप करने लगती है, तो न्यायपालिका की इस कार्रवाई को न्यायिक सक्रियता (न्यायिक क्रियाशीलता) का नाम दिया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश जस्टिस पी. बी. सांवत के मतानुसार, जब न्यायपालिका ऐसी प्राथमिकताएँ, नीतियाँ एवं कार्यक्रम निश्चित करती है. जो विधानपालिका या अन्य सत्ताओं के लिए लागू करना आवश्यक नहीं है और इन्हें लागू करने के सम्बन्ध में निर्णय करना कार्यपालिका अथवा विधानपालिका को इच्छा पर निर्भर करता है, तो न्यायपालिका न्यायिक सक्रियता का प्रकटीकरण और सरकार के अन्य अंगों की शक्तियों का अतिक्रमण कर रही होती है।

स्पष्ट है कि न्यायिक सक्रियता का अर्थ न्यायपालिका द्वारा ऐसे कार्य करने से है, जो उसके क्षेत्राधिकार में नहीं, बल्कि विधानपालिका, कार्यपालिका या किसी अन्य संस्था के क्षेत्राधिकार में आते हैं। जब न्यायपालिका अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर विधानपालिका, कार्यपालिका या किसी अन्य सरकारी संस्था को बाध्यकारी निर्देश जारी करती है, तो न्यायपालिका की ऐसी कार्रवाई न्यायिक सक्रियता को प्रकट करती है। इस प्रकार ***न्यायिक सक्रियता से हमारा अभिप्राय न्यायपालिका द्वारा अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर ऐसे काम करने से है. जो सरकार के अन्य अंगों के क्षेत्राधिकार में आते हैं।***

न्यायिक सक्रियता के उद्भव का कारण (Reasons for the Emergence of Judicial Activism) - सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश **जस्टिस जे.एस. वर्मा** का मत है, **"न्यायिक सक्रियता की आवश्यकता केवल तब ही होती है, जब अन्य (अंग) अक्रियाशील होते हैं। यदि कोई अन्य (अंग) कार्य कर रहा है, तो हमें हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।"** जस्टिस वर्मा के इस कथन से न्यायिक सक्रियता की आवश्यकता या कारण स्पष्ट हो जाते हैं। विधानपालिका, कार्यपालिका, एवं न्यायपालिका, सरकार के तीन महत्त्वपूर्ण अंग हैं और प्रत्येक अंग के लिए सक्रिय होना आवश्यक है, क्योंकि जब सरकार का कोई अंग अपने दायित्वों को पूरा करने में सक्रिय नहीं होता, तो सरकार कुशल शासन नहीं दे पाती। जब विधानपालिका या कार्यपालिका अपने कार्यों के विषय में ढीलापन दिखाती हैं, तो कानून का शासन कायम रखने और

संविधान की रक्षा करने के लिए न्यायपालिका को अधिक सक्रिय होना पड़ता है। जब देश में राजनीतिज्ञों एवं नौकरशाहों द्वारा अनेक घोटाले किए गए और इनके विरुद्ध सरकार द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गयी तो न्यायपालिका को ऐसे निर्णय लेने पड़े, जो उसके क्षेत्राधिकार में नहीं आते थे। यदि सरकार के अन्य अंग अपने-अपने कार्य करते रहें, तो न्यायिक सक्रियता की आवश्यकता नहीं होती।

न्यायिक सक्रियता के साधन (Devices of Judicial Activism)

न्यायालय उन मुकदमों के सम्बन्ध में कार्रवाई करते हैं, जो मुकदमें उनके समक्ष व्यक्तियों, संस्थाओं या सरकार द्वारा लाए जाते हैं। जिन प्रक्रियाओं द्वारा मुकदमें न्यायालयों में पहुँचते है, उन प्रक्रियाओं को ही न्यायिक सक्रियता के साधन कहा जाता है। यदि इन साधनों का सहारा नहीं लिया जाएगा, तो न्यायालयों को मुकदमों का निबटारा करने के अवसर प्राप्त नहीं होंगे। इस दृष्टि से न्यायिक सक्रियता के कुछ प्रमुख साधन निम्नलिखित हैं-

1. न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review) - भारतीय संविधान के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों को न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति प्राप्त है। इस शक्ति के अधीन ये न्यायालय संसद अथवा राज्य विधानमण्डलों द्वारा निर्मित कानूनों और कार्यपालिका द्वारा जारी किए आदेशों की संवैधानिकता को जाँच करते हैं। यदि इन न्यायालयों की दृष्टि में कोई कानून या कार्यकारी आदेश संविधान का उल्लंघन करता है, तो ये न्यायालय न्यायिक पुनर्निरीक्षण की अपनी शक्ति का प्रयोग करके उस कानून या कार्यकारी आदेश को असंवैधानिक घोषित कर देते हैं। न्यायिक पुनर्निरीक्षण के अपने इस अधिकार का प्रयोग करते हुए ये न्यायालय कई बार ऐसे सिद्धान्त तय कर देते हैं, जिनका पालन करना सरकार के अन्य अंगों के लिए बाध्यकारी होता है। उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत ससद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति दी गयी है। इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था नहीं की गयी थी कि संसद की सविधान में संशोधन करने की शक्ति सीमित है. किन्तु केशवानन्द भारती मुकदमे (1973) में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि संसद संविधान में ऐसा कोई संशोधन नहीं कर सकती है, जो 'संविधान के मूलभूत ढांचे' (Basic Structure of the Constitution) का उल्लंघन करता हो। संविधान निर्माताओं ने संसद की संविधान में संशोधन करने की शक्ति पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया था, किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिबन्ध लगा दिया।

2. मौलिक अधिकारों को लागू करवाने सम्बन्धी मुकदमे (Cases concerning Enforcement of Fundamental Rights)- यदि व्यक्ति के किसी मौलिक अधिकार का उल्लंघन होता है, तो वह अपने उस अधिकार को लागू करवाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय या सम्बन्धित उच्च न्यायालय में याचिका (Petition) दायर कर सकता है। जब इन न्यायालयों के समक्ष इस प्रकार के मुकदमे आते हैं, तो ये न्यायालय अपने निर्णयों द्वारा सरकार को ऐसे निर्देश जारी कर देते हैं, जो सीधे तौर पर इनके क्षेत्राधिकार में नहीं आते। सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय नागरिकों के मौलिक अधिकारों के रक्षक हैं। अनेक मुकदमों में इन न्यायालयों ने ऐसे निर्णय दिए हैं, जो न्यायिक सक्रियता के प्रत्यक्ष उदाहरण है; जैसे-4 फरवरी, 1993 को सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि 14 साल की आयु तक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार है और वह इस अधिकार को लागू करवा सकता है।

3. संविधान की व्याख्या-सम्बन्धी मुकदमे (Cases concerning Interpretation of the Constitution)- प्रायः संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित मुकदमे सर्वोच्च न्यायालय में आते रहते हैं। सर्वोच्च न्यायालय इन मुकदमों का निर्णय करते समय नवीन कानूनी धारणाएं, सिद्धान्त, नियम, विधियाँ आदि प्रस्तुत कर देता है। उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 124 के अनुसार राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करने से पहले सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीशों से परामर्श लेगा। इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था बिल्कुल नहीं की गयी थी कि मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीशों द्वारा दिया गया परामर्श राष्ट्रपति के लिए मानना आवश्यक है, किन्तु 6 अक्तूबर, 1993 को सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक फैसले में यह कहा कि सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में कार्यपालिका की अपेक्षा मुख्य न्यायाधीश के परामर्श को प्रमुखता प्राप्त होगी। सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय ने व्यावहारिक रूप से न्यायाधीशों की नियुक्ति की शक्ति सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को सौंप दी।

4. न्यायसंगत मुकदमे (Equity Cases)- कई बार न्यायालयों के समक्ष ऐसे मुकदमे भी आ जाते हैं, जिनके विषय में निर्णय करने के लिए किसी प्रकार का कोई कानून मौजूद नहीं होता है। कानूनों का निर्माण संसद द्वारा किया जाता है, किन्तु व्यवहारिक रूप से प्रत्येक प्रकार की परिस्थिति के लिए संसद द्वारा दृष्टान्त कानून का निर्माण करना सम्भव नहीं है। इसलिए जब न्यायालय के समक्ष ऐसे मुकदमे आते हैं. जिनका निर्णय करने के लिए किसी प्रकार का कानून मौजूद नहीं होता, तो न्यायाधीश ऐसे मुकदमों का निर्णय अपने विवेक एवं न्यायिक अनुभव के आधार पर करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के ऐसे निर्णय दृष्टांत (Precedent) बन जाते हैं अर्थात् ये निर्णय अधीनस्थ न्यायालयों के लिए बाध्यकारी होते हैं। ऐसे निर्णयों के द्वारा भी न्यायाधीश न्यायिक सक्रियता प्रकट करते हैं।

5. जन हित-सम्बन्धी मुकदमे (Public Interest Litigation)- न्यायिक सक्रियता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन जन हित-सम्बन्धी मुकदमे हैं। कानून के अनुसार केवल वही व्यक्ति न्यायालय में मुकदमा दायर कर सकता है, जिसका उस मुकदमे से सम्बन्ध होता है। अन्य शब्दों में, जिस व्यक्ति का मुकदमे के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता, वह व्यक्ति मुकदमे को न्यायालय में नहीं ले जा सकता है। इस कानूनी व्यवस्था के कारण निर्धन एवं साधनहीन व्यक्ति अपने साथ हो रहे अन्याय के सम्बन्ध में न्यायालय की शरण नहीं ले सकते हैं, क्योंकि ये लोग मुकदमेबाजी का खर्च उठाने की हालत में नहीं होते। जन हित-सम्बन्धी मुकदमा कोई भी सामाजिक कार्यकर्ता दायर कर सकता है। ऐसा मुकदमा दायर करने के लिए निश्चित कानूनी प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक नहीं होता है। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को डाक द्वारा भेजे गए साधारण-पत्र द्वारा भी मुकदमा दायर हो सकता है। उल्लेखनीय है कि जन हित सम्बन्धी मुकदमे किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं, बल्कि सरकार के किसी विभाग या अधिकारी अथवा किसी संस्था के विरुद्ध दायर किए जाते हैं। शर्त केवल यह है कि ऐसे मुकदमों का सम्बन्ध जन हित से होना चाहिए।

भारत में न्यायिक सक्रियता का प्रभावी साधन जन हित सम्बन्धी मुकदमे ही हैं। ऐसे मुकदमों में निश्चित न्यायिक नियमों का पालन करना आवश्यक नहीं होता है। जब सर्वोच्च न्यायालय ऐसे मुकदमों की सुनवायी करता है, तो उसे सरकार को कई तरह के निर्देश जारी करने का अवसर मिल जाता है और सरकार के लिए इन निर्देशों का पालन करना आवश्यक होता है।

न्यायिक सक्रियता के पक्ष में तर्क

(Arguments in Favour of Judicial Activism)

न्यायिक सक्रियता या न्यायिक क्रियाशीलता के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं-

1. अन्य अंगों की निष्क्रियता को समाप्त करने के लिए आवश्यक (Essential for the End of Inertia of Other Organs) - पिछले अनेक वर्षों से न्यायपालिका ने सक्रिय होकर सरकार के अन्य अंगों की निष्क्रियता को लोगों के समक्ष प्रकट किया है। न्यायिक सक्रियता के परिणामस्वरूप ही बैंक घोटाला, चारा घोटाला, हवाला घोटाला, 2-जी स्पेक्ट्रम घोटाला और अन्य अनेक घोटालों पर से पर्दा उठा है और दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध कार्रवाई की गयी है। यदि न्यायपालिका सक्रिय न होती, तो ऐसे घोटाले जनता के समक्ष न आ पाते और न ही भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के विरुद्ध मुकदमे दर्ज किए जाते। भारत में विधानपालिका एवं कार्यपालिका के सदस्य राजनीतिक कारणों से अपने उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं करते हैं। अतः सरकार के इन अंगों की निष्क्रियता को समाप्त करने के लिए न्यायिक सक्रियता का होना आवश्यक है।

2. शासन की कार्य-प्रणाली की वास्तविक जानकारी के लिए आवश्यक (Essential for the Actual Knowledge of the Working of Regime)- न्यायिक सक्रियता शासन की कार्य प्रणाली की वास्तविक तस्वीर लोगों के समक्ष प्रस्तुत करने में सहायक है। न्यायाधीशों को चुनाव नहीं लड़ने होते हैं और न ही इनका कार्यकाल जन-समर्थन पर निर्भर करता है। भारत में न्यायपालिका, विधानपालिका एवं कार्यपालिका के नियन्त्रण से स्वतंत्र है। इस स्वतन्त्रता के कारण न्यायाधीश सरकार के दोनों अंगों को बाध्यकारी निर्देश जारी करते हैं। ऐसे निर्देशों को जारी करने से कार्यपालिका एवं विधानपालिका की अनियमितताएँ उजागर होती हैं और लोगों को शासन की कार्य प्रणाली की वास्तविक जानकारी मिलती है।

3. कानून का शासन बनाए रखने के लिए आवश्यक (Essential for Upholding the Rule of Law) - कानून का शासन

यह मांग करता है कि किसी भी नागरिक के विरुद्ध किसी भी तरह की गैर-कानूनी कार्रवाई न की जाए। यदि कभी सरकार कानून के शासन का उल्लंघन करती है, तो न्यायपालिका कानून के शासन का उल्लंघन करने वाली कार्रवाई को रद्द करके कानून के शासन को बनाए रखती है। इसीलिए कहा जाता है कि कानून के शासन को स्थापित रखने के लिए न्यायिक सक्रियता आवश्यक है।

4. कानून की कमियों को पूरा करने के लिए आवश्यक (Essential to Make-up Deficiencies in Legislation)- यद्यपि कानूनों का प्रारूप विशेषज्ञों द्वारा तैयार किया जाता है, फिर भी कानूनों में कुछ कमियाँ अवश्य रह जाती हैं। कानूनों की व्याख्या करने का अधिकार न्यायालयों को होता है, इसलिए केवल सक्रिय न्यायपालिका हो कानून को त्रुटियों को ठीक प्रकार से दूर कर सकती है। न्यायाधीश कानूनों की व्याख्या करते समय कानूनों के वास्तविक उद्देश्यों का विश्लेषण कर सकते हैं, क्योंकि ये कानून के विशेषज्ञ होते हैं और इनके पास कानूनों के वास्तविक उद्देश्यों की सही जानकारी प्राप्त करने की योग्यता होती है।

5. भविष्य की समस्त स्थितियों का पूर्ण अनुमान लगाना प्रायः असम्भव (Anticipation of All Future Situations is Almost Impossible)- मानवीय व्यवहार के कारण पैदा होने वाली समस्त भविष्यवाणियों का कानून-निर्माताओं द्वारा पूर्व अनुमान लगाना असम्भव है, इसलिए न्यायिक सक्रियता आवश्यक मानी जाती है। जब न्यायाधीशों के समक्ष ऐसे मुकदमे आते हैं. जिनका समाधान करने के लिए समुचित कानून मौजूद नहीं होता, तो न्यायाधीश अपने विवेक एवं अनुभव और बुद्धि के आधार पर इन मामलों का निपटारा करते हैं। किसी ऐसे मामले को न्यायाधीश यह कंह कर खारिज नहीं कर सकते हैं कि उस मामले का निपटारा करने से पहले विधानपालिका द्वारा आवश्यक कानूनों का निर्माण किया जाना चाहिए। इस प्रकार जिन मामलों के विषय में मौजूदा कानूनों की कोई व्यवस्था नहीं होती है, उनसे सम्बन्धित निर्णयों के लिए न्यायिक सक्रियता सर्वोत्तम साधन है।

6. सृजनता एवं नवाचार न्यायिक प्रक्रिया के लिए आवश्यक (Creativity and Innovation are Essential for Judicial Process)- न्यायाधीश कोई यान्त्रिक मानव नहीं है कि वे मशीन के समान न्यायिक प्रक्रिया का संचालन करें। ये सजीव प्राणी होते हैं और सजीव प्राणियों से सम्बन्धित मुकदमों का निबटारा करते हैं। न्यायाधीशों को तरह-तरह के अपराधियों एवं मुक़दमों का सामना करना पड़ता है। वकीलों के रूप में कानून-विशेषज्ञों के साथ न्यायाधीशों का निरन्तर सम्पर्क रहता है। जब न्याय करने में मौजूदा कानून सहायक सिद्ध नहीं होते, तो न्यायाधीशों को अपनी न्याय-भावना के आधार पर नवीन कानूनों एवं नियमों का निर्माण करना पड़ता है अथवा किसी कानूनी नवाचार का सहारा लेना पड़ता है। ऐसे में न्यायिक सक्रियता के कारण ही नवीन विचार एवं अवधारणाएं स्थापित होती है।

7. मानव अधिकारों का घोर उल्लंघन रोकने के लिए आवश्यक (Essential to Check the Blatant Violation of Human Rights)-यदि भारत में न्यायपालिका सक्रिय न होती, तो सजा पूरी करने के बाद भी अनेक वर्षों से जेलों में बन्द असंख्य व्यक्तियों को गैर-कानूनी नजरबन्दों से मुक्ति नहीं मिलती; न हो बच्चों के अनैतिक शोषण पर पाबन्दी लगती और न ही स्त्रियों के अनैतिक व्यापार करने वाले अपराधियों के विरुद्ध कोई कानूनी कार्रवाई होती। ऐसे में व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन को रोकने के लिए न्यायिक सक्रियता आवश्यक है।

8. न्यायिक सक्रियता को लोगों का समर्थन (People's Support to Judicial Activism)- भारत की जनता को न्यायपालिका की निष्पक्षता पर बहुत विश्वास है और वह अपने साथ हुए अन्याय को दूर करते के लिए या अपने अधिकारों को लागू कराने के लिए न्यायालयों का सहारा लेती है। जनता ने न्यायिक सक्रियता को सराहा है। न्यायिक सक्रियता को जनता का समर्थन मिलना इस बात की पुष्टि करता है कि जनता विधानपालिका, कार्यपालिका एवं नौकरशाही की कार्य प्रणाली से खुश नहीं है और वह न्यायिक सक्रियता को आवश्यक मानती है।

न्यायिक सक्रियता के विरुद्ध तर्क

(Arguments against Judicial Activism)

न्यायिक सक्रियता या न्यायिक क्रियाशीलता के पक्ष में अनेक तर्क या युक्तियाँ होने के बाद भी, इसकी निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की गयी है-

1. विधानपालिका एवं कार्यपालिका के क्षेत्रों में हस्तक्षेप (Interference in the Spheres of Legislature and Executive) - संवैधानिक दृष्टि से न्यायिक सक्रियता विधानपालिका एवं कार्यपालिका के क्षेत्र में हस्तक्षेप है। भारतीय संविधान द्वारा सरकार के इन तीनों अंगों की शक्तियाँ एवं कार्य निर्धारित किए गए हैं, अतः किसी भी अंग के लिए अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाना असंवैधानिक कार्य कहलाएगा। न्यायिक सक्रियता को शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त के विरुद्ध माना गया है। न्यायपालिका को सरकार के अन्य अंगों के क्षेत्राधिकार में केवल उस सीमा तक ही हस्तक्षेप करना बाहिए, जिस सीमा तक संविधान ऐसा करने के लिए न्यायपालिका को आज्ञा देता है।

2. न्यायपालिका नहीं, कार्यपालिका लोगों के प्रति उत्तरदायी (Executive, Not Judiciary, is Accountable to People) - न्यायपालिका का प्रत्यक्ष रूप से जनता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता है। न्यायाधीश न तो जनता के द्वारा चुने जाते हैं ओर न ही में जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। न्यायाधीशों का कार्यकाल भी जनता की इच्छा पर निर्भर नहीं करता है। इसके विपरीत, शासन संचालन की जिम्मेदारी कार्यपालिका की होती है, जो जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। जनता ही कार्यपालिका के कार्यों का मूल्यांकन करती हैं। जनता के प्रति गैर-उत्तरदायी न्यायपालिका के लिए अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर कार्यपालिका को शासन संचालन के सम्बन्ध में निर्देश देना उचित नहीं है।

3. शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त के विरुद्ध (Against the Theory of Separation of Powers)- भारत की संसदीय प्रणाली इस सिद्धान्त पर आधारित है कि शासन का संचालन संसद के प्रति उत्तरदायी मन्त्रि-परिषद् द्वारा और कानूनों का निर्माण संसद द्वारा किया जाएगा। भारत में संविधान के द्वारा कानूनों की व्याख्या और कानूनों के अनुसार न्याय करने का कार्य न्यायपालिका को सौंपा गया है। न्यायिक सक्रियता शक्तियों के पृथक्करण के इस सिद्धान्त का उल्लंघन करती है, क्योंकि यह सरकार के अन्य दो अंगों के क्षेत्राधिकार में न्यायपालिका को अनुचित हस्तक्षेप करने की आज्ञा देती है। शासन के कुशल संचालन के लिए आवश्यक है कि सरकार का प्रत्येक अंग अपने निर्धारित क्षेत्राधिकार के अन्दर काम करते हुए दूसरे अंगों के क्षेत्राधिकार का सम्मान करें।

4. न्यायपालिका द्वारा शासन अलोकतान्त्रिक (Governance by Judiciary is Undemocratic)-शासन करना न्यायपालिका का कार्य नहीं है, क्योंकि लोकतन्त्र के सिद्धान्त के अनुसार शासन संचालन का कार्य जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। लोकतंत्र में सरकार लोगों के प्रति उत्तरदायी होती है। यदि सरकार लोगों के प्रति उत्तरदायी नहीं है, तो ऐसी सरकार को लोकतान्त्रिक सरकार नहीं कहा जा सकता है। जय न्यायाधीश शासन संचालन के सम्बन्ध में कार्यपालिका को अथवा कानूनों के निर्माण के सम्बन्ध में विधानपालिका को बाध्यकारी निर्देश देते हैं, तो तब वे शासन संचालन का कार्य अपने हाथों में ले रहे होते हैं। न्यायपालिका को शासन संचालन के सम्बन्ध में निर्देश नहीं देना चाहिए।

5. न्यायिक निरंकुशता स्थापित होने की सम्भावना (Possibility of Establishing Judicial Despotism)- प्रायः यह कहा जाता है कि जब सरकार के दूसरे अंग निष्क्रिय होते हैं, तो न्यायिक सक्रियता अनिवार्य हो जाती है। न्यायिक सक्रियता के समर्थकों की यह धारणा है कि जब कानूनों का निर्माण करने वाले और कानूनों को लागू करने वाले व्यक्ति अपने निर्धारित दायित्व पूरा नहीं करते, तो न्यायिक सक्रियता के द्वारा न्यायपालिका उनसे उनके दायित्व पूरा कराती है। ऐसे में यह प्रश्न पैदा होता है कि यदि न्यायपालिका ही अपनी सीमाएँ लाँघकर अन्य अंगों के कार्यों में हस्तक्षेप करने लगेगी, तो न्यायपालिका को ऐसा करने से कौन रोकेगा। न्यायपालिका प्रत्यक्ष रूप से किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं होती है। ऐसे में न्यायपालिका की यह भूमिका न्यायिक निरंकुशता स्थापित कर सकती है।

6. न्यायालयों के दैनिक काम-काज पर दुष्प्रभाव (Adverse Impact on the Routine Work of Courts)- न्यायिक सक्रियता के विरुद्ध यह तर्क भी दिया जाता है कि इसके कारण न्यायालयों के दैनिक काम-काज पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जब जन-हित-संबंधी के मामले न्यायालयों में आने लगते हैं. तो न्यायालयों का काम-काज बढ़ जाता है। व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालयों में जन हित से सम्बन्धित मुकदमे दायर करने के लिए किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है। इस कार्य के लिए वकील की फीस एवं निश्चित कानूनी प्रक्रिया का पालन करने की भी आवश्यकता नहीं होती

है। यहां तक कि न्यायालय की फीस भी जमा करने की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसी स्थिति में, जन हित-सम्बन्धी असंख्य मुकदमों का न्यायालयों में आना स्वाभाविक है। भारत में पहले हो लाखों मुकदमे न्यायालयों में लम्बित हैं और न्यायालय इन मुकदमों को निबटाने में स्वयं को असहाय महसूस कर रहे हैं। न्यायिक सक्रियता के कारण जन हित के मुकदमों में वृद्धि होती है, जिसका न्यायालयों के दैनिक काम-काज पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

7. लोकवाद के प्रति आकर्षण का न्यायिक निष्पक्षता पर दुष्प्रभाव (Adverse Impact of Temptation towards Populism on Judicial Impartiality)- न्यायिक सक्रियता को भारतीय जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ है। न्यायिक सक्रियता के फलस्वरूप बड़े-बड़े भ्रष्ट राजनीतिज्ञों, मन्त्रियों एवं अधिकारियों के विरुद्ध सरकार को कार्रवाई करनी पड़ी है। न्यायिक सक्रियता के कारण हो अनेक घोटालों के सम्बन्ध में लोगों को जानकारी मिली है और अनेक नेताओं की असली तस्वीर लोगों के सामने आयी है। ऐसे में लोगों का भारी समर्थन न्यायाधीशों को लोकवाद के प्रति आकर्षित कर सकता है। जब समाचार-पत्र और संचार के अन्य माध्यम जन हित के मुकदमों के सम्बन्ध में न्यायाधीशों के निर्णयों को प्रकाशित करते हैं, तो ये साथ में निर्णय देने वाले न्यायाधीशों के नाम भी प्रकाशित कर देते हैं। ऐसी स्थिति में न्यायाधीशों को बहुत लोकप्रियता मिलती है। न्यायिक सक्रियता के आलोचक कहते हैं कि न्यायाधीश भी अन्य व्यक्तियों की तरह ख्याति पाने के इच्छुक हो सकते हैं। न्यायाधीशों की ऐसी इच्छा उन्हें लोकवादी निर्णय देने के लिए प्रेरित कर सकती है। ऐसी स्थिति में न्यायिक निष्पक्षता पर बुरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

निष्कर्ष (Conclusion)- भारत की वर्तमान सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में न्यायिक सक्रियता एक आवश्यकता है, किन्तु इसके साथ यह भी आवश्यक है कि न्यायिक सक्रियता का उद्देश्य सरकार के अन्य अंगों को सक्रिय बनाना होना चाहिए। भारत के लिए ऐसी न्यायिक सक्रियता हानिकारक है, जो देश में न्यायिक निरंकुशता स्थापित करे। इस विषय में जस्टिस एच.आर. खन्ना का कहना है, "न्यायाधीशों का यह विशेष दायित्व है कि वे अधिक सक्रिय भूमिका से बचें और इस बात को विश्वसनीय बनाएँ कि सरकार के दूसरे अंगों के निर्धारित क्षेत्राधिकार में अनुचित हस्तक्षेप न हो।"

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. न्यायिक पुनर्निरीक्षण से आपका क्या अभिप्राय: है? भारत में इसके स्वरूप का वर्णन कीजिए।

   (What do you mean by Judicial Review? Discuss its nature in India)

2. न्यायिक पुनर्निरीक्षण से आपका क्या अभिप्राय है? न्यायिक पुनर्निरीक्षण की आलोचनात्मक व्याख्या करें।

   (What is Judicial Review? Critically examine judicial review in India?)

3. न्यायिक पुनर्निरीक्षण से आपका क्या अभिप्राय है? इसके पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दीजिए।

   (What do you mean by Judicial Review! Make a case for and against it.)

4. न्यायिक पुनर्निरीक्षण के स्वरूप एवं महत्व का वर्णन करो।

   (Explain the nature and significance of Judicial Review)

5. न्यायिक सक्रियता क्या है ? इसके पक्ष एवं पक्ष में तर्क दीजिए।